॥ ओ३म् ॥

श्रीपाणिनिमुनि प्रणीता

अष्टाध्यायी।

पाणिनि सूत्रवृत्तिः

सेयम्

मुरादाबादनगरस्थ बलदेवार्य्य संस्कृतपाठशालायाः
प्रथमाऽध्यापकेन जीवारामेण शर्मणा विरचितया
व्याख्यया समलङ्कृता तेनैव संस्कृता.

मुरादाबादनगरे
लक्ष्मीनारायणनाम्नि मुद्रणयन्त्रे
मुद्रापयित्वा
रहबर कार्य्यालयाधिपतिना च
प्रकाशिता.

ASHTADHYAEE

WITH
ALL THE NECESSARY NOTES
BY

P. JIVA RAM SHARMA
HEAD PANDIT
Baldeo Arya Sanskrit Pathshala Moradabad

PUBLISHED BY THE PROPRIETORS
RAHBER BOOK AGENCY
MORADABAD.

प्रथमावृत्तौ ११००] सन् १९०५ [प्रतिपुस्तकमूल्यम् ३)

॥ ओ३म् ॥

अथ पाणिनि सूत्रवृत्तिः

मरणजन्म जराभयवर्जितम्, पतितपावन विश्वविनोदकम् ।
सकल धर्मसुशिक्षकरक्षकम्, निखिलतापहरं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥

अथ शब्दानुशासनम् ।

अइउण् ॥ १ ॥ ऋऌक् ॥२॥ एओङ् ॥ ३ ॥ ऐऔच् ॥ ४ ॥
हयवरट् ॥ ५ ॥ लण् ॥ ६ ॥ ञमङणनम् ॥ ७ ॥ झभञ् ॥ ८ ॥
घढधष् ॥ ९ ॥ जबगडदश् ॥ १० ॥ खफछठथचटतव् ॥ ११ ॥
कपय् ॥ १२ ॥ शषसर् ॥ १३ ॥ हल् ॥ १४ ॥

इति प्रत्याहारसूत्राणि ।

१-अण् । २-अक्, इक्, उक् । ३-एङ् । ४-अच् ,इच्, एच् ऐच् । ५-अट् ।
६-अण इण् यण् । ७-अम् यम्, ङम् । ८-यञ् । ९-झष् भश् । १०-अश्, हश् वश्
भष् जश् बश् । ११-छव् । १२-यय् मय्, झय्, खय्, चय् । १३-यर् झर् खर्, चर्, शर्
१४-अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्, । इतने प्रत्याहार जानने चाहिये ।

॥ प्रत्याहार के प्रत्येक वर्ण का ज्ञान ॥

१ अण्-अ इ उ । २ अक्-अइ उ ऋऌ । ३ अच्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ॥ ४ ॥ अट् अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ॥ ५ अण्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ॥ ६ अम्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न ॥ ७ अश्--अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ॥ ८ अल्--अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ॥ ९ इक्--इ उ ऋ ऌ ॥ १० इच्--इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ॥ ११ इण्-इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ ओ ह य व र ल ॥ १२ उक्--उ ऋ ऌ ॥ १३ एङ्-ए ओ ॥

॥ वृत्तिप्रयुक्तसङ्केतों की व्याख्या ॥

(१) सूत्र तथा पदच्छेद में ऊपर जो "१-२-३-४-५-६-७" के अङ्क तथा "अ" और "ल" तथा क्रि० अक्षर हैं. उनमें से प्रत्येक अङ्क अपने पदकी विभक्ति को प्रकाशित करता है तथा "अ" अव्यय के लिये क्रि०क्रिया के लिये और "ल"लुप्त विभक्ति के लिये प्रयुक्त है।

(२) उदाहरण में "यथा" शब्दसे आगे जहां कहीं १--१ इत्यादि अङ्क किसी पद के ऊपर लिखा गया है, वह टिप्पणी का बोधक है जो पृष्ठ के अधोभाग में "सूक्ष्माक्षरों में विवृत्त है" ॥

१४ एच्-ए ओ ऐ औ॥ १५ऐच्-ऐ औ ॥ १६ हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ॥ १७ हल्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह॥ १८यण्-य व र ल॥ १९ यम्-य व र ल ञ म ङ ण न ॥ २० यञ्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ ॥ २१ यय्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ॥ २२ यर्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ॥ २३ वश्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ॥ २४ वल्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ॥ २५॥ रल्=र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह॥२६मय्--म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ॥ २७ ङम्--ङ ण न॥ २८ झष् झ भ घ ढ ध ॥ २९ झश्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ॥ ३० झय्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ॥ ३१ झर्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ घ ट त क प श ष स ॥ ३२ झल्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह ॥ ३३ भष्-भ घ ढ ध ॥ ३४ जश्-ज ब ग ड द ॥ ३५ बश्-ब ग ड द ॥ ३६ खय्-ख फ छ ठ थ च ट त क प॥३७खर्-ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ॥ ३८ छव्-छ ठ थ च ट त॥ ३९ चय् च ट त क प ॥४० चर्-च ट त क प श ष स॥ ४१ शर्-श ष स ॥ ४२ शल्-श ष स ह॥

पाणिनिसूत्रवृत्तिः

अथ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः

वृद्धिरादैच् ॥ १ ॥

वृद्धि[1]:, आत्[1], ऐच्[1]। आदैचां वृद्धिसञ्ज्ञास्यात्। यथा—शालायांभवः—शा[1]लीयः। इतिकस्याऽपत्यम्—ऐतिका[2]यनः। उपगोरपत्यम्-औपग[3]वः।

शालाका। इतिक का लड़का। उपगुकापुत्र। (आत्) आ और (ऐच्) ऐ औ की वृद्धि संज्ञा हो ॥ १ ॥

अदेङ् गुणः ॥ २ ॥

अत्[1], एङ्[1], गुणः[1]। अदेङां गुणसंज्ञा स्यात्। यथा—आर्य्योदर्[4]यः। एति। तरिता। चेता। स्तोता। पचे।

आर्यों का उदय। जाता है। तैरने वाला। इकट्ठा करने वाला। स्तुतिकरने वाला। मैं पकाता हूं। (अत्) अ और (एङ्) ए ओ की गुण संज्ञा (नाम) हो। २।

इको गुणवृद्धी ॥ ३ ॥

इकः[6], गुणवृद्धी[1]। गुणवृद्धिशब्दाभ्यां यत्र गुणवृद्धी विधीयेते तत्रेक एव स्थानेस्याताम्। यथा—नय[5]ति। अका[6]र्षीत् ॥

गुण वृद्धि शब्दों से जहां गुण वृद्धि विधान की जायें वहां इक् ही के स्थान में हों ॥ ३ ॥

१-(१।१;७२) इति सङ्ख्यात्मकेन सूत्रेण वृद्धसंज्ञा। (४।२।११३) इति छः। (७-१-२) इतिछस्येया देशः। (६।४।१४८) इति शालास्थ लकारस्याऽकारलोपः। शालीय इति साधुः॥ २-(४।१।९९) इतिफक्। ३-(४।१।९२) इत्यग्॥ ४(६।१, ८७) इति गुणैकादेशः। ५-[६, १, ७८] इत्यवादेशः॥ ६-[७।२।१] इति वृद्ध्यादेशः॥

न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ ४ ॥

न, धातुलोपे, आर्द्धधातुके । धात्ववयवलोपनिमित्ते आर्द्धधातुके परे तन्निमित्तके, इको गुणवृद्धी नस्याताम् । यथा-लोलुवः[1] । मरीमृजः[2] ॥

बार बार काटने वाला । बार २ पवित्र करने वाला । धात्ववयव लोप निमित्तक आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो उसको मान के इक् को गुण वृद्धि नहीं ॥ ४ ॥

क्ङिति च ॥ ५ ॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न स्याताम् । यथा-कृतम्[3] । जिष्णुः[4] । चिनुतः ॥

किया । ठहरने वाला । वे दोनों बीनते हैं । गित् कित् ङित् प्रत्यय को मानके इक् को गुण वृद्धि नहीं ॥ ५ ॥

दीधीवेवीटाम्[6] ॥ ६ ॥

दीधीवेव्योरिटश्च गुणवृद्धी न स्याताम् । यथा-आदीध्यनम् । आवेव्यनम् । भविष्यति ॥

प्रकाश । गमन । होगा । दीधी, वेवी और इट् को गुण वृद्धि न हों ॥ ६ ॥

हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ ७ ॥

हलः, अनन्तराः, संयोगः । अज्भिरव्यवहिताहलः संयोगसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-अग्निः । इन्द्रश्चन्द्रोमन्द्रइति ॥

अच् जिन के अन्तर (मध्य में) न हों ऐसे दो वा अधिक हल् संयोग संज्ञक हों ॥ ७ ॥

१-(३ । १. २२) इतियङ् । (६ । १ । ९) इति द्वित्वम् । [३।१।१३४] इत्यच् । (२ । ४ ।७४) इति यङ्लुक् । ७। ४। ८२ । इत्यभ्यास गुणः । ६ । ४ , ७७ इत्युवङादेशः , लोलुवइति साधुः ॥ २-७,४, ९० इति रीगागमः ॥ ३--३ । ३ ११४ इतिक्तः ॥ ४-३ । २ , १३९ इतिग्स्नुप्रत्ययः, क्ङिति चेत्यत्र गकारोऽपि चर्त्वभूतो निर्दिश्यते तेन गुणो न भवतीति ॥ ५-,३,३, ११५, इति ल्युट् ७, १,१ इत्यनादेशः ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ ८ ॥

मुखनासिकावचनः, अनुनासिकः । मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणोवर्णोऽनुनासिकसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—सँस्कर्त्ता ॥

संस्कारकरने वाला । मुख सहित नासिका से जिस का उच्चारण हो वह वर्ण अनुनासिक संज्ञक हो ॥ ८ ॥

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ ९ ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयंयस्ययेनतुल्यं तन्मिथः सवर्णसञ्ज्ञः स्यात् । यथा--दण्डाग्रम् ।
(ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) । होतृ+लृकारः = होतॄकारः॥

दण्ड का अग्रभाग । तालु आदिस्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिस वर्णका जिस वर्ण के साथ तुल्य हो वह उसके साथ सवर्ण संज्ञक हो ॥ ९ ॥

नाज्झलौ ॥ १० ॥

न, अच्हलौ । तुल्यस्थानप्रयत्नावप्यज्झलौमिथः सवर्णसञ्ज्ञकौ नस्याताम् । यथा--दधिशीतलम् ॥

दण्डा दही । तुल्य स्थान और प्रयत्न वाले भी अच् और हल् परस्पर सवर्ण संज्ञक न हों ॥ १० ॥

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ११ ॥

ईदूदेत्, द्विवचनम्, प्रगृह्यम् । ईत्, ऊत्, एत्, इत्येवमन्तं द्विवचनं शब्दरूपं प्रगृह्यसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--कवी[२] आस्ताम् । साधू उपदिशतः । बालिके इमे ॥

दो शायर थे । दो साधु उपदेश करते हैं । ये दो लड़कियां । ईदन्त ऊदन्त और एदन्त जो द्विवचनान्त शब्द रूप वह प्रगृह्य संज्ञक (ज्यों का त्यों) हों ॥ ११ ॥

१—(६ । १ । १०१) इति दीर्घः ॥ २—(६, २, १२५) इति प्रकृति भावः ॥

अदसोमात् ॥ १२ ॥

अदसः, मात् । अस्मात्परावीदूतौप्रगृह्यसञ्ज्ञकौस्याताम् । यथा–अमी अधीयते । अमू आर्य्यौ ॥

वे पढ़ते हैं। वे दोनों आर्य हैं। अदस् शब्द के मकार से परे ईकार और ऊकार प्रगृह्यसञ्ज्ञक हों ॥ १२ ॥

शे ॥ १३ ॥

शयेतच्छब्द रूप प्रगृह्य संज्ञंस्यात्। यथा--अस्मेइन्द्रा बृहस्पतिः ॥

हमारे लिये इन्द्र (बिजुली) और बृहस्पति (सूर्य)। वेद में सुबादेश शे प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १३ ॥

निपातएकाजनाङ् ॥ १४ ॥

निपातः, एकाच्, अनाङ् । आङ् वर्जितएकाज्निपातः प्रगृह्य-सञ्ज्ञकः स्यात् । यथा–उ उत्तिष्ठ ॥

अरे उठ। आङ् वर्जित एकाच्निपात प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १४ ॥

ओत् ॥ १५ ॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा--उताहो इदम् ॥

अथवा यह। ओदन्त निपात प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १५ ॥

सम्बुद्धौशाकल्यस्येतावनार्षे ॥ १६ ॥

सम्बुद्धौ । शाकल्यस्य । इतौ । अनार्षे । सम्बुद्धिनिमित्त ओकारो वा प्रगृह्य संज्ञकः स्यादवैदिक इतौ परे। यथा--प्रभो इति प्रभविति । प्रभ इति ।

हे स्वामिन् यह। अवैदिक इति शब्द परे हो तो सम्बुद्धि निमित्त ओकार शाकल्य जी के मत में प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १६ ॥

१-(६ । १ । ७८) अवादेशः । २-(८--३--१९,इति वावलोपः ॥

उञः ॥ १७ ॥

अवैदिक इतौ परे उञो वा प्रगृह्य संज्ञा स्यात्।यथा--उइति,विति

उञ् यह । अवैदिक इति शब्द परे हो तो शाकल्य के मत में उञ् प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १७ ॥

ऊँ ॥ १८ ॥

उञइतौदीर्घोऽनुनासिकःप्रगृह्यश्चऊँइत्ययमादेशोवा स्यात् । यथा--उ इति, विति, ऊँ इति ॥

ऊँ यह । अवैदिक इति शब्द परे हो तो शाकल्य के मत में उञ् के स्थान में हुआ ऊँ प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १८ ॥

ईदूतौच सप्तम्यर्थे ॥ १९ ॥

सप्तम्यर्थेवर्त्तमानमीदूदन्तंशब्दरूपंप्रगृह्यसंज्ञं स्यात् । यथा--सोमोगौरी अधिश्रितः । मामकी, तनूइति ॥

चन्द्र सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है। यह मेरे शरीर में। सप्तमी के अर्थ में वर्त्तमान जो ईदन्त और ऊदन्त शब्द रूप वह प्रगृह्य संज्ञक हो ॥ १९ ॥

दाधाघ्वदाप् ॥ २० ॥

दाधा । घु । अदाप् । दाब्दैपौविहायदाधारूपाधातवो घुसंज्ञकास्स्युः । यथा--दीयते । धीयते ॥

दिया जाता है। धारण किया जाता। दाप् और दैप् को छोड़कर दाधा रूप धातु संज्ञक हों ॥ २० ॥

आद्यन्तवदेकस्मिन् ॥ २१ ॥

आद्यन्तवत् । एकस्मिन् । एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमाद्यन्त वत् स्यात् । यथा--आभ्याम् ।

इन दोनों नें। एक में किया हुवा कार्य आदि और अन्त के तुल्य (नाईं) हो ॥ २१ ॥

१-[७ । १ । ३९] इतिसुपां सुलुक्. २ [६, ४, ६६] इतीत्वम् ॥

तरप्तमपौ घः ॥ २२ ॥

इमौ घसंज्ञकौ स्याताम् । यथा—कुमारितरा[1] । कुमारितमा[2] ॥

दोनों में से यह अधिक तर बालिका है । सब में यह अधिक ही बालिका है । तरप् और तमप् प्रत्यय घ संज्ञक हों ॥ २२ ॥

बहुगणवतुडतिसङ्ख्या ॥ २३ ॥

इमे सङ्ख्या सञ्ज्ञकाः स्युः।यथा--बहुकृत्वः[3]।गणधा[4]।तावच्छः[5]।कतिकः[6]।

बहुतवार करके । सङ्ख्या की तरह । तबतक । कितने से लिया गया ॥ बहु, गण, वतु और डति संख्या संज्ञक हों ॥ २३ ॥

ष्णान्ता षट् ॥ २४ ॥

षान्ता नान्ता च सङ्ख्या षट्सञ्ज्ञिका स्यात् । यथा—षट्तिष्ठन्ति । षट्पश्य । पञ्च पठन्ति । पञ्चपश्य ॥

छः पढ़ते हैं । छः को देख । पांच पढ़ते हैं । पांचकोदेख । षकारान्त और नकारान्त सङ्ख्याषट्संज्ञक हो ॥ २४ ॥

डति च ॥ २५ ॥

डत्यन्ता सङ्ख्या षट् सञ्ज्ञिका स्यात् । यथा-कति गच्छन्ति कति छात्रानध्यापयानि ॥

कितने जाते हैं।कितने विद्यार्थियोंको पढ़ाऊं॥डति प्रत्ययान्त सङ्ख्या षट्संज्ञकहो २४

क्तक्तवतू निष्ठा ॥ २६ ॥

इमौ निष्ठा सञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा--स्तुतस्तेन विष्णुः[7] । स्नातं मयका[8] । विष्णुर्विश्वं कृतवान्[9] ॥

मैंने स्नान किया । उसने विष्णु की स्तुति की । ईश्वर ने संसार रचा । क्तऔर क्तवतु प्रत्यय निष्ठा संज्ञक हों ॥ २६ ॥

---

१ [५, ३, ५७] तरप् (६, ३, ४३) २ (५, ३, ५५) इति तमप् ॥ ३--(५·४-१७) इतिकृत्वसुच् ४ [५, ३, ४२] इतिधा. ५ (५, ४, ४२]इति शसु. ६ (५, २, ४१)इति डति. (५ १ २२) इति कन्. ७ (७, १, २२) इति जश्शसोर्लुक ८ [३, ४, ७१] इति कतीरक्तवर्जः. ९ [३, ३, ११४]इति नपुंसकेभावेक्तः ॥

सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ २७ ॥

सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसञ्ज्ञानि स्युः । यथा-सर्वे । सर्वस्मै । सर्वस्मात् । सर्वेषाम् ॥

सब । सबकेलिये । सबसे । सबका, के. की ॥ सर्व आदि शब्द सर्वनाम संज्ञक हों ॥ (गण पठित शब्द सर्वत्र पृष्ठके अधोभागमें अङ्कित हैं)

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ॥२८॥

दिगुपदिष्टे बहुव्रीहौ समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि वा सर्वनाम सञ्ज्ञानिस्युः । यथा-उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै ॥

उत्तर पूर्व (ईशान) दिशाके लिये ॥ दिशा वाचीय शब्दों के बहुव्रीहि समास में सर्वादि शब्दरूप सर्वनाम संज्ञक विकल्पसे हों ॥ २८ ॥

न बहुव्रीहौ ॥ २९ ॥

बहुव्रीहौ समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनाम सञ्ज्ञानि न स्युः। यथा-प्रियविश्वाय ॥

सब संसारको प्यारकरनेवाले के लिये ॥ बहुव्रीहि समास में सर्वादि शब्द सर्वनाम संज्ञक न हों ॥ २९ ॥

तृतीयासमासे ॥ ३० ॥

तृतीयासमासेवाक्ये च सर्वनामत्वं नो स्यात्। यथा-मास पूर्वाय--मासेन पूर्वाय ॥

एक मास पूर्वको ॥ तृतीया के समास और वाक्य में सर्वादि शब्द रूप सर्वनाम संज्ञक न हों ॥ ३० ॥

१-(७ । १ । १७) इति शी ॥ २-(७ । १ । १४) इति स्मै ॥ ३-(७ । १ । १५) इति स्मात् ४-(७ । १ । ५२) इति सुट् ॥ ५-(७ । ३ । ११४) इति स्याट् । ६-(७ । ३ । ११३) इति याट् ॥

+ सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, (पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्) (स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्) (अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः, त्यद्, तद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ॥

द्वन्द्वे च ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वे च समासे सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसञ्ज्ञानि न स्युः। यथा--वर्णाश्रमेतराणाम् ॥

वर्ण और आश्रम से भिन्नों का ॥ द्वन्द्व समास में सर्वादिशब्द रूप सर्वनाम संज्ञक न हों ॥ ३१ ॥

विभाषा जसि ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वे समासे जसि सर्वादीनि शब्दरूपाणि वा सर्वनामसञ्ज्ञानि स्युः । यथा--वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतराः ॥

द्वन्द्व समास में जस्विभक्ति परे हो तो सर्वादि शब्द रूप विकल्पसे सर्वनामसंज्ञक हों ३२

प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च ३३

प्रथम चरमतयाल्पार्द्ध कतिपयनेमाः, च। इमे जसि वा सर्वनाम सञ्ज्ञकाः स्युः। यथा-प्रथमे, प्रथमाः। चरमे, चरमाः। द्वितये, द्वितयाः। अल्पे, अल्पाः। अर्द्धे, अर्द्धाः। कतिपये, कतिपयाः। नेमे, नेमाः।(तीयस्य ङित्सुवा) यथा-द्वितीयस्मै, द्वितीयाय। इत्यादि॥

पहिले सब। पिछले सब। दूसरे। थोड़े। आधे। कुछ, कितने। आधे॥ प्रथम, चरम, तयप्रत्यान्त, अल्प, अर्द्ध, कतिपय और नेम शब्द जस् में विकल्प से सर्वनाम संज्ञक हों ॥ ३३ ॥

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम ॥ ३४ ॥

पू० णि०। व्य० याम्। अ० याम्। एषांव्यवस्थायामसञ्ज्ञायां जसि वा सर्वनामसञ्ज्ञा स्यात्। यथा--पूर्वे, पूर्वाः। परे, पराः। अवरे, अवराः। दक्षिणे, दक्षिणाः।उत्तरे, उत्तराः। अपरे, अपराः। अधरे, अधराः॥

पहिले (सब)। अगले। पिछले। दाहिने। बायें। दूसरे। नीचे के ॥ पूर्व,

पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर और अधर ये असञ्ज्ञावाचक शब्द जस् परे होतो विकल्पसे व्यवस्था अर्थ में सर्वनाम संज्ञक हों ॥ ३४ ॥

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ ३५ ॥

स्वम् । अज्ञातिधनाख्यायाम् । ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य जसि वा सर्वनाम संज्ञा स्यात् । यथा--स्वेबालाः । स्वाबालाः ॥

अपने लड़के ॥ ज्ञातिऔरधनसेभिन्नअर्थकावाचीस्व शब्दजस् में विकल्पसे सर्वनामसंज्ञक हों ॥ ३५ ॥

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥३६॥

बहिर्योगोपसंव्यान गम्यमानेऽन्तरमित्येतच्छब्दरूपंजसि वा सर्वनामसञ्ज्ञंस्यात् ॥ यथा–अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः ।
अन्तरे, अन्तरा वा शाटकाः ॥

बाहिरी घर पहिनने योग्य धोतीं ॥ बहिर्योग और उपसंव्यान गम्यमान होतो अन्तर शब्द जस् में विकल्प से सर्व नाम संज्ञक हो ॥ ३६ ॥

*स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ ३७॥

स्वरादिनिपातम्, अव्ययम् । स्वरादयोनिपाताश्चाऽव्ययसंज्ञकास्स्युः । यथा–स्वर् ॥

स्वरादि और निपात शब्द अव्ययसंज्ञक हों ॥ ३७ ॥

---

* स्वर्, अन्तर्, प्रातर्, पुनर्, सनुतर्, उच्चैस्, नीचैस्, शनैस्, ऋधक्, ऋते, युगपत्, आरात्, पृथक्, ह्यस्, श्वस्, दिवा, रात्रौ, सायम्, चिरम्, मनाक्, ईषत्, जोषम्, तूष्णीम्, बहिस्, अवस्, समया, निकषा, स्वयम्, वृथा, नक्तम्, नञ्, हेतौ, इद्धा, अद्धा, सामि, वत्, ब्राह्मणवत्, क्षत्रियवत्, सना, उपधा, सनत्, सनात्, तिरस्, अन्तरा, अन्तरेण, ज्योक्, कम्, शम्, सहसा, विना, नाना, स्वस्ति, स्वधा, अलम् वषट्, श्रौषट्, वौषट्, अन्यत्, अस्ति, उपांशु, क्षमा, विहायसा, दोषा, मृषा, मिथ्या, मुधा, पुरा, मिथो, मिथस्, प्रायस्, मुहुस्, प्रवाहुकम्, प्रवाहिका, आर्यहलम्, अभीक्ष्णम्, साकम्, सार्धम्, नमस्, हिरुक्, धिक्, अथ, अम्, आम्, प्रताम्, प्रशान्, मा, माङ्, आकृति गणोऽयम् । च, वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम् शश्वत्, युगपत्, भूयस्, कूपत्, सूपत्, कुवित्, चेत्, चण्, यत्र, कच्चित्, नह, हन्त माकि, माकिम्, नकि, नकिम्, नकिर्, माङ्, नञ्, यावत्, तावत्, त्वै, न्वै, द्वै, रै,

तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः ॥ ३८ ॥

तद्धितः, च, असर्वविभक्तिः । यस्मात्सर्वाविभक्तिर्नोत्पद्यते ऽसौतद्धितान्तोऽव्ययसंज्ञकः स्यात् । यथा--यतः, ततः । यत्र[2], तत्र ।

चूंकि । तब, पश्चात् । जहां । वहां ॥ असर्वविभक्ति (जिस से कि सर्व विभक्ति न हों) ऐसा तद्धित प्रत्यान्त शब्द अव्यय संज्ञक हो ॥ ३८ ॥

कृन्मेजन्तः ॥ ३९ ॥

कृत्, मेजन्तः । कृद्योमान्तः, एजन्तश्च तदन्तशब्दरूपमव्यय संज्ञंस्यात् । यथा--स्मारंस्मारम्[3] । वक्षे[4] ॥

याद कर २ के । कहने को ॥ मकारान्त और एजन्त कृत् प्रत्यय अव्यय संज्ञक हों ॥ ३९ ॥

क्त्वातोसुन्कसुनः ॥ ४० ॥

एतदन्तंशब्दरूपमव्ययसंज्ञंस्यात् । यथा—कृत्वा[5] । उदेतोः[6] । पुरा क्रूरस्य विसृपः[7] ॥

करके । प्राप्त करना चाहिये । चारों ओर से शत्रुओं के जीतने में विजयी । क्त्वा तोसुन् और कसुन् जिनके अन्त में हों ऐसे शब्द अव्यय संज्ञक हों ॥ ४० ॥

अव्ययीभावश्च ॥४१॥

अव्ययीभावः च । अव्ययी भावसमासोऽव्ययसञ्ज्ञः स्यात् । यथा--उपाऽग्नि ॥

अग्नि के पास ॥ अव्ययीभाव समासअव्यय संज्ञक हो ॥ ४१ ॥

श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा, स्वधा, वषट्, तुम्, तथाहि, खलु, किल, अथ, सुष्ठु, स्म, आदह । उपसर्गविभक्तिप्रतिरूपकाश्च । अवदत्तम्, अहंयुः, अस्तिक्षीरा, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, पशु, शुकम्, यथा, कथा, च, पाट, प्याट्, अङ्ग, है, हे, भोः, अये, द्य, विषु, एकपदे, युत्, आतः । चादिरप्याकृतिगणः ॥

१-(५ । ३ । ७) इति तसिल् । २-[५।३।१०] इति त्रल् । ३-[३ । ४ । २२] इति णमुल् । ४-(३।४।८) इति से । ५ [३ । ४ । २१] इति क्त्वा । ६-(३ । ४ । १६) इति तोसुन् । ७-[३।४।१७] इति कसुन् ।

शि सर्वनामस्थानम् ॥४२॥

शि इत्येतच्छब्दरूपं सर्वनामस्थानसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--पुस्तकानिसन्ति । पुस्तकानिपश्य ॥

पुस्तकें हैं । पुस्तकें देख ॥ जस् और शस् के स्थान में हुआजो शि आदेश वह सर्वनामस्थान संज्ञक हो ॥ ४२ ॥

सुडनपुंसकस्य ॥ ४३ ॥

सुट्, अनपुंसकस्य । सुट्प्रत्याहारः स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थान सञ्ज्ञानिस्युरनपुंसकस्य । यथा–राजा, राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ ॥

बादशाह ॥ नपुंसक से इतर लिङ्ग का सुट् सर्वनाम स्थान संज्ञक हो ॥४३॥

नवेतिविभाषा ॥४४॥

नवा, इति, विभाषा । निषेधविकल्पयोर्विभाषा सञ्ज्ञास्यात् । यथा–शुशाव, शिश्वाय ॥

गया ॥ नवाशब्दके अर्थकी विभाषा संज्ञाहो ॥ ४४ ॥

इग्यणः संप्रसारणम् ॥४५॥

इक्, यणः, सम्प्रसारणम् । यणःस्थानेप्रयुज्यमानोयइक्स सम्प्रसारणसञ्ज्ञः स्यात् । यथा–इष्टम् । उप्तम् । गृहीतम् ॥

यज्ञकिया । बोया । लिया ॥ यणके स्थान में प्रयुक्त इक सम्प्रसारण संज्ञक हो ४५

आद्यन्तौटकितौ ॥ ४६ ॥

टित्कितौयस्योक्तौतस्यक्रमादाद्यन्ताऽवयवौस्याताम् । यथा–लविता । भीषयते ॥

१-(७ । १ । ७२) इतिनुमागमः; २-(६ । ४ । ८) इतिदीर्घत्वम् (८ । २ । ७) इति नकारलोपः । ३-६ । १.३० इति वा सम्प्रसारणम् । ४-(६ । १ । १५) इति सम्प्रसारणम्. ५-(७ । २ । ३७) इतोटोर्दीर्घः ॥ ६-७.३.४० इति षुक्.

काटनेवाला । डराता है ॥ टित् और कित् जिसको कहे हों उसके आदि और अन्तके अवयवक्रमसे हों । अर्थात् टित् आगम आदिमें और कित् अन्तमें हो) ॥ ४६ ॥

मिदचोऽन्त्यात्परः ॥ ४७ ॥

मित्, अचः, अन्त्यात्, परः । अचांमध्येयोऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवाऽन्तावयवोमित्स्यात् । यथा–धनानि[३] । वनानि ॥

धन । वन । मित् आगम अन्त्य अच् से परे उसका अवयवरूप हो ॥ ४७ ॥

एच इग्घ्रस्वादेशे ॥ ४८ ॥

एचः इक्, ह्रस्वादेशे । ह्रस्वादेशेकर्त्तव्येएचःस्थाने इगेव स्यात् । यथा–अतिरि । अतिनु । उपगु ॥

निर्धन (कुल) विना नाव वाला । गौकेपास ॥ एच्को ह्रस्वादेश करनेमें इक्ही हो ॥ ४८ ॥

षष्ठीस्थानेयोगा ॥ ४९ ॥

अनिर्धारितसम्बन्धविशेषाषष्ठीस्थानेयोगाबोध्या । स्थानंचप्रसंगः । यथा–वक्ता[४] ॥

कहने वाला । जिस षष्ठी का कोई सम्बन्ध नियत नहीं उसका स्थानमें योग हो ॥ ४९ ॥

स्थानेऽन्तरतमः ॥ ५० ॥

प्रसंगेसतिसदृशतम,आदेशःस्यात् । यथा--कार्यालयः ॥

दफ्तर । स्थानमेंप्राप्तआदेशअत्यन्तसदृशतमहो ॥ ५० ॥

उरण्रपरः ॥ ५१ ॥

१-[७, २, ३५] इतीडागमः, २-(७, ३, ४०) इति षुगागमः । ३-(७, १, ७२) इति नुमागमः ४-[२, ४, ५३] इति वचादेशः,

उः, अण्, रपरः । उःस्थानेजायमानोयोऽण् स रपरःसन्नेवप्रवर्त्तते ॥ यथा–कर्त्ता । हर्त्ता ॥

करने वाला । हरने वाला ॥ ऋकेस्थानमेंप्राप्तहुआ अण् तत्काल रपरहुआ ही प्रवृत्तहो ॥ ५१ ॥

अलोऽन्त्यस्य ॥ ५२ ॥

अल् अन्त्यस्य । षष्ठीनिर्दिष्टस्याऽन्त्यस्यालआदेशःस्यात् । यथा–दशगोणिः ॥

दशगोनोंसेलियाहुआ ॥ षष्ठीनिर्दिष्टआदेशअन्त्यअल्केस्थानमेंहो ॥ ५२ ॥

ङिच्च ॥ ५३ ॥

ङित्, च । अनेकालोऽपिङिच्चादेशोऽलोन्त्यस्यस्यात् । यथा–मातापितरौ ॥

मा बाप ॥ अनेकाल भी ङित् आदेश अन्त्यअल् के स्थानमें हो ॥ ५३ ॥

आदेः परस्य ॥ ५४ ॥

परस्ययत्कार्यंविहितंतत्तस्यादेर्बोध्यम् । यथा–आसीनः ॥

बैठाहुआ । परकोकहाकार्यउसकेआदिअल्कोहो ॥ ५४ ॥

अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥ ५५ ॥

अनेकालादेशःशिच्चषष्ठीनिर्दिष्टस्यसर्वस्यस्थानेस्यात् । यथा–वक्ता । वनानि ॥

अनेकाल्औरशित्आदेशसम्पूर्णषष्ठीनिर्दिष्टकेस्थानमेंहो ॥ ५५ ॥

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ ५६ ॥

१–(३ । १ । १३३) इति तृच् । (७. १. ९४.) इत्यनङादेशः । [८. ४. ४६] इतिद्वित्वम्. २–(१. २. ५०) इतीदादेशः. ३–(६. ३. २५) इत्यनङादेशः ॥

४–आस उपवेशने, अनुदात्तेत् ईदासः । परस्य यदिति । तस्मादित्युत्तरस्यादेः, इति न सूत्रितम्, आदेरित्यंशस्य सर्वादेशबाधकत्वापत्तेः । सिद्धान्ते तु परत्वात्सर्वादेशत्वं बाधकमित्यनुपदमेव वक्ष्यति । आदेर्बोध्यमिति । आदेरलोबोध्यमित्यर्थः ॥ इति त० बो० ॥

स्थानिवत्, आदेशः, अनल्विधौ । अनल्विधावादेशःस्थानिवत् स्यात् । यथा—बालकाय ॥

बालक के लिये । अल् (एकवर्ण) आश्रित कार्य्य को छोड़कर इतरकार्य्य करने में आदेश स्थानिवत् हो ॥ ५६ ॥

अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ ५७ ॥

पूर्वविधौ कर्त्तव्ये परनिमित्तोऽजादेशःस्थानिवत्स्यात्।यथा—अवधीत् उसने मारा ॥ पूर्व को विधि करने में पर निमित्तक अच् के स्थानमें जो आदेश वह स्थानिवत् हो ॥ ५७ ॥

नपदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णाऽनुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ॥ ५८ ॥

एषु विधिषु परनिमित्तोऽजादेशो नस्थानिवत् । यथा—कानि सन्ति । दद्ध्यत्र । यायावरः । कण्डूतिः । चिकीर्षकः । पिण्ढि । पिंसन्ति । प्रतिदीव्नां । संग्धिः । जक्षतुः ॥

कौन हैं । यहां दही । पूजनीय । खुजली । करने की इच्छा करने वाला । पीस । पीसते हैं । प्रकाश से । समान भोजन । उन दोनों ने खाया ॥ पदान्त द्विर्वचन, वरे, यलोप, स्वर, सवर्ण, अनुसार, दीर्घ, जस्. और चर्, विधि के करने में पर निमित्त जो अच् के स्थान में आदेश वह स्थानिवत् न हो ॥ ५८ ॥

१-"७-१-१३" इति यकारादेशः "७-३-१०२" इति दीर्घः. २-"६-४-४८' इति धकारेऽकार लोपः' स्थानिभावत्वा "७-२-७" दिति न वृद्धिः ३-"६-४-१११" इत्यसाकारलोपः स्थानिवत्वा "६-१-७७" दिति यण् प्राप्तिः सानो ४-"८-४-४६" इति द्वित्वम्. स्थानित्वान्न. ५-"३-२-१७६" इति वरच्. "६-४-४८" इति यङ्कार लोपः स्थानित्वात् "६-४-६४" इति द्वितीय यकारे अकारलोपः सन. ६—"३-३-१७४"इति क्तिच् "६-४-४८" इति यकारलोपः; स्थानित्वा "६ १-६६" दिति यकारलोपः सन. ७--"३-१-१३३" इति ण्वुलि कृतेऽतोलोपो न स्थानिवत् "६ १-१९०" इति प्रत्ययात् पूर्व मुदात्तम्. ८-"३ १-७८" इतिश्नम् "३-४ ८७" इति ह्यादेशः "१-१.४७" इति मिदागमः"६-४ १०१" इति ध्यादेशः"८-४-४०" इति ष्टुत्वम्. "८-२-३९"इतिजस्त्वम्. "६-४-१९१" इत्यकारलोपः. "८-२-२३" इति षकार लोपे कृते साते स्थानित्वा "८-४-५८" दिति पर सवर्णो न. ९-"८ ३ २४" इत्यनुस्वारे कृते "६-४,१११" इत्याकारलोपो न स्थानिवत्. १०-"६,४,१३४" इत्यकारलोपः स्थानित्वा ' ८-२. ७७, दिति दीर्घत्वं न. ११-' २-४ ३९ ' घस्लादेश ' ६-४-१०० ' इत्युपधा लोपः ' ८-२-२६ इति सकार लोपः ' ८,२, ४० ' इति धत्वम् उपधालोपस्य स्थानित्वा ' ८,४,५२ ' दिति धकारस्य जश्त्वं न. १२—'२,४,४० ' इति घस्लादेशः ' ६,४,९८, इत्युपधालोपः, अत्रोपधा लोपस्य स्थानित्वा ' ८,४,५४ ' दिति चर्त्वं न स्यादस्माद् वचनाद् भवति ८' ,३,६० ,इति षत्वम्॥

द्विर्वचनेऽचि ॥ ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचिपरे ऽजादेशः स्थानिवत् स्यात्-द्वित्वे कर्त्तव्ये । यथा-पपतुः[1] । पपुः ॥

उन दोनों ने पिआ । उन्हों ने पिआ ॥ द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो परनिमित्त अच्के स्थान में जो आदेश वह स्थानिवत् हो द्वित्व करने में ।५९।

अदर्शनं[1] लोपः[1] ॥ ६० ॥

प्रसक्तस्या ऽदर्शनं लोपसञ्ज्ञंस्यात् । यथा-गौधेरः[2] ॥

गोह का बच्चा ॥ विद्यमान का अदर्शन लोप संज्ञक हो ॥ ६० ॥

प्रत्ययस्य[6] लुकश्लुलुपः[1] ॥ ६१ ॥

प्रत्यस्याऽदर्शनस्य लुक्श्लु लुप इत्येताः संज्ञाः स्युः । यथा-अत्ति[3] । जुहोति[4] । वरणाः[5] ।

वह खाता है । वह होम करता है । प्रत्यय के अदर्शन की लुक् श्लु और लुप् संज्ञा हो ॥ ६१ ॥

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ ६२ ॥

प्रत्ययलुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्य्यं स्यात् । यथा-अग्निचित् ।

अग्नि का चुनने वाला ॥ प्रत्यय के लोप होने पर भी उस प्रत्यय को मान के तदाश्रित कार्य हो ॥ ६२ ॥

न लुमताऽङ्गस्य ॥ ६३ ॥

न[अ], लुमता[3], अङ्गस्य[6] । लुक्, श्लु, लुप् इमे लुमन्तः । लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्य्यं न स्यात् । यथा-कति[6] ॥

कितने । लु वाले शब्द से प्रत्यय का लोप हो तो उस के परे जिस की अङ्गसञ्ज्ञाकी है, उसको प्रत्यय लक्षण कार्य न हो ॥ ६२ ॥

१-(६-४-६४) इत्याकार लोपः २-(४-१-१२९) इति ढ्रक् । (७ । १ , २) इत्ययादेशः । ३-(२-४-७२) इति शपोलुक् ४-(२-४-७५) इति शपः श्लुः ५-(४-२-८१) इति लुप् ६-(७, ३-१०९ इतिगुणो न ॥

अचोऽन्त्यादि टि ॥ ६४ ॥

अचः, अन्त्यादि, टि । अचांमध्येयोऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—सोमसुत् ॥ ६४ ॥

सोम के रसको खींचने वाला । अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् वह है आदि में जिस समुदाय के वह समुदाय टि संज्ञक हो ॥ ६४ ॥

अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा ॥ ६५ ॥

अलः, अन्त्यात्, पूर्वः, उपधा । अन्त्यादलः पूर्वोवर्ण उपधा सञ्ज्ञः स्यात् । यथा—पठ् । पच् ॥

यहां ठ तथा च से पूर्व पकार में अकार की उपधा संज्ञा है । अन्त्य अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा हो ॥ ६५ ॥

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥ ६६ ॥

तस्मिन्, इति, निर्दिष्टे, पूर्वस्य। सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्य्यं वर्णान्तारेणऽव्यवहितस्य पूर्वस्यज्ञेयम् । यथा—दध्यानय ॥

दही ला। सप्तमी विभक्ति से विधान किया हुआ कार्य्य व्यवधानरहित पूर्वको हो ॥

तस्मादित्युत्तरस्य ॥ ६७ ॥

तस्मात्, इति उत्तरस्य । पञ्चमी निर्देशेन विधीयमानं कार्य्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य बोध्यम् । यथा—उत्तम्भनम् ॥

ठहरना । पञ्चमी विभक्ति से परे कहा कार्य्य व्यवधान रहित उत्तरको हो ६७॥

स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसञ्ज्ञा ॥ ६८ ॥

१–(३ । २ । ६०) इति क्विप् । (६ । १ । ७१) इति तुक् ।

स्वम्, रूपम्, शब्दस्य, अशब्दसञ्ज्ञा । शब्दसञ्ज्ञां विहायेह शास्त्रे स्वमेवरूपं शब्दस्य ग्राह्यं (प्रत्याय्यं) स्यात् । यथा–अग्नेर्ढक्, वह्नेर्नस्यात् ॥

अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय हो परन्तु उसके पर्याय वाचीय वह्नि आदिकों से नहो। शब्दसञ्ज्ञा को छोड़कर व्याकरण में शब्द के स्वरूप का ही ग्रहण हो ॥ ६८ ॥

अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः ॥ ६९ ॥

अणुदित्, सवर्णस्य, च, अप्रत्ययः । प्रत्ययं विहाय, अण्, उदिच्च सवर्णानां ग्राहकः स्यात् । अत्राण् परेण णकारेण । यथा–अण् । कु, चु, टु, तु, पु, एते उदितः ॥ ६९ ॥

प्रत्यय रहित अण और उदित् सवर्ण के और स्वीयरूपके भी ग्राहक हों ॥ ६९ ॥

तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥

तपरः, तत्कालस्य । तः परोयस्मात्सच, तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैवग्राहकः स्यात् । यथा–वेदैः ॥

वेदों से । तकार जिससे परे हो अथवा तकार से जो परे हो वह अपने काल का ग्राहक हो ॥ ७० ॥

आदिरन्त्येन सहेता ॥ ७१ ॥

आदिः, अन्त्येन, सह, इता । अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां वर्णानां स्वस्यच ग्राहकः स्यात् । यथा–अण् । अक् । अच् । हल् ॥

आदिवर्ण अन्त्य इत् के साथ मिलकर मध्यस्थ और स्वीय स्वरूपका ग्राहक हो ७१

येन विधिस्तदन्तस्य ॥ ७२ ॥

येन, विधिः, तदन्तस्य । येन विशेषणेन विधिर्विधीयते तदन्तस्य

स्यात्, स्वस्य च रूपस्य । यथा—चयः । जयः ॥ ७२ ॥

इकट्ठाकरना । जीत । जहां जिस विशेषण से विधि विधान किया जावे वहां तदन्त को कार्य्यहो ॥ ७२ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ७३ ॥

वृद्धिः, यस्य, अचाम्, आदिः, तत्, वृद्धम् । यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिः, तद्वृद्धसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--शालीयः ॥

जिस समुदाय के अचों का आदि अच्वृद्धिहो वह वृद्धसञ्ज्ञकहो ॥ ७२ ॥

त्यदादीनि च ॥ ७४ ॥

त्यदादीनि वृद्धसञ्ज्ञानि स्युः । यथा—त्यदीयम् । मदीयम् ॥

उसका, के, की । मेरा, रे, री । त्यदादिशब्दरूप वृद्धसञ्ज्ञकहों ॥ ७४ ॥

एङ् प्राचां देशे ॥ ७५ ॥

एङ् यस्याचामादिः-त द्वृद्धसञ्ज्ञं वा स्याद्देशाभिधाने । यथा-एणीपचनीयः । भोजकटीयः ॥

एणीपचनका रहनेवाला । भोजकटकारहनेवाला । जिस समुदायके अचोंकाआदि अच् एङ्हो वह पूर्वियों के देश में वृद्धसंज्ञकहो ॥ ७१ ॥

इतिप्रथमाऽध्यायस्य प्रथमःपादः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् ॥ १ ॥

गाङ्कुटादिभ्यः, अञ्णित्, ङित् । गाङादेशात्कुटादिभ्यश्चपरेऽञ्-

१—(३ । ३ । ५६) इलच् ।

णितःप्रत्ययाङितःस्युः । यथा—अध्यगीष्ट । कुटितुम् ॥

वहपढ़ा । कुटिलताकरनेको । गाङ्आदेश और कुटादि धातुओंसे परे जोञित् और णित् से भिन्न प्रत्यय वे ङित्वत्हों ॥ १ ॥

विजइट् ॥ २ ॥

विजः, इट् । विजः परे, इडादिः प्रत्ययो ङिद्वत्स्यात् । यथा—उद्विजितुम् ॥

डरनेको । विज (ओविजी) धातुसे परे इडादि प्रत्यय ङित् वत् हो ॥ २ ॥

विभाषोर्णोः ॥ ३ ॥

विभाषा, ऊर्णोः । ऊर्णोर्धातोः परे, इडादिप्रत्ययो वा ङिद्वत् स्यात् । यथा—प्रोर्णुविता, प्रोर्णविता ॥

ढांकनेवाला । ऊर्णुञ् धातु से परे इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् वत् हो ॥ ३ ॥

सार्वधातुकमपित् ॥ ४ ॥

सार्वधातुकम्, अपित् । अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत् स्यात् । यथा कुरुतः । कुर्वन्ति ॥

वेदोनो करते हैं । वे करते हैं । अपित् (प जिसका इत् गया हो) सार्वधातुक प्रत्यय ङित् वत हो ॥ ४ ॥

असंयोगाल्लिट्कित ॥ ५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । यथा--बिभिदतुः ॥

उनदोनोंने फाड़ा । असंयोगान्त धातुसे परे अपित् लिट् प्रत्यय कित्वत्हो ॥ ५ ॥

१-(२ । ४ । ५०) इतिगाङादेशः । (६ । ४ । ६६) इतीत् ।

इन्धिभवतिभ्यां च[५] ॥ ६ ॥

आभ्यां परो लिट् किद्वत् स्यात् । यथा—पुत्र ईधे अथर्वणः । बभूव, बभूविथ ॥ (श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनामिति वाच्यम् ॥)

यथा—श्रेथतुः, श्रेथुः । ग्रेथतुः, ग्रेथुः । देभतुः, देभुः । परिषस्वजे, परिषस्वजाते ॥

अहिंसक विद्वान् का पवित्र शिष्यप्रदीप्त हो (य० अ० ११ म० ३३) । वह हुआ, तू हुआ । इन्धि और भू धातु से परे लिट् प्रत्यय किद्वद् हो ॥ ६ ॥

मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा ॥ ७ ॥

एभ्यः परः सेट् क्त्वा किद्वत् स्यात् । यथा—मृडित्वा । मृदित्वा । गुधित्वा । कुषित्वा । क्लिशित्वा । उदित्वा । उषित्वा ॥

सुखीहोकर । पीसकर । लपटकर । खींचकर । दुःखीहोकर । कहकर । बसकर । मृड आदि धातुओं से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय किद्वद् हो ॥ ७ ॥

रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ ८ ॥

रु०छः[१], सन्[२], च । एभ्यः—संश्च, क्त्वा च, कितौ स्याताम् । यथा—रुदित्वा । विदित्वा । मुषित्वा । गृहीत्वा । सुप्त्वा । पृष्ट्वा । रुरुदिषति । विविदिषति । मुमुषिषति । जिघृक्षति । सुषुप्सति । पिपृच्छिषति ॥

रोकर । जानकर । चुराकर । पकड़कर । सोकर । पूंछकर । रोनाचाहता है । जाननाचाहता है । चुरानाचाहता है । पकड़नाचाहता है । सोना (नींद) चाहता है । पूंछनाचाहता है ॥ रुद आदि धातुओं से परे सन् और क्त्वा प्रत्यय किद्वत् हो ८

१-(७ । २ । १२) इतिनेट् ॥ २-(७ । २ । ७५) इति सन इट् ।

इको झल् ॥ ९ ॥

इकः, झल्। इगन्ताद्धातोःपरोझलादिःसन्कित्स्यात्। यथा—चिचीषति। बुभूषति। चिकीर्षति। दीङ्—दातुमिच्छति—दिदीषते॥

चुननाचाहताहै होनाचाहताहै। करनाचाहताहै॥ इक्वान्धातुसे परे झलादि सन् किद्वत् हो॥

हलन्ताच्च ॥ १० ॥

ह०तं, च। इक्समीपाद्धलः परोझलादिः सन् कित् स्यात्। यथा--गुहू--जुघुक्षति। बिभित्सति। बुभुत्सते॥

छिपना चाहता है। काटनाचाहताहै। जाननाचाहताहै॥ इकवान्हलन्तधातु से परे झलादि सन् किद्वत् हो॥ १०॥

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ ११ ॥

लिङ्सिचौ, आ०षु। इक्समीपाद्धलः परौ झलादीलिङ्सिचौ आत्मनेपदपरतः कितौ स्याताम्। यथा--भित्सीष्ट। अभित्त॥

काटे। काटा। इकवान् हलन्तधातु से परे झलादिलिङ् और सिच् प्रत्यय किद्वत् हो॥ ११॥

उश्च ॥ १२ ॥

उः, च। ऋवर्णान्ताद् धातोःपरौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्यातामात्मनेपदेषुपरतः। यथा—कृषीष्ट। अकृत॥

ईश्वरकरे वह करे। उसने किया। ऋकारान्त धातु से परे झलादि लिङ् और सिच् प्रत्यय किद्वत् हो आत्मनेपद—विषय में॥ १२॥

वा गमः ॥ १३ ॥

गमः परौझलादी लिङ्सिचौ वा कितौ स्याताम्। यथा--सङ्गसीष्ट, सङ्गंसीष्ट। समगत, समगंस्त॥

१–(६।४।३७) वेत्यनुनासिकलोपः।(१।३।२९) इत्यात्मनेपदम्॥

ईश्वर कर वह जावे। वह गया। गम धातु से परे झलादि लिङ् और सिच् प्रत्यय विकल्प से किन् वत् हो ॥ १३ ॥

हनः सिच् ॥१४॥

हनः परः सिच् कित् स्यादात्मनेपदेषु परतः। यथा--आहत ॥

उसने मारा। आत्मने पद विषय में हन् धातु से परे सिच् प्रत्यय किद्वत् हो॥१४॥

यमो गन्धने ॥१५॥

यमः, गन्धने। गन्धने यमो धातोः परः सिच् कित् स्यात्। यथा-- उदायत ॥

उसने दोषप्रकाशितकिया। गन्धन (दूसरे के दोषों को प्रकट करना) अर्थमें वर्त्तमान यम धातु से परे सिच् प्रत्यय किद्वत् हो ॥ १५ ॥

विभाषोपयमने ॥१६॥

विभाषा, उं०ने। उपयमनेऽर्थे वर्त्तमानाद्यमः परः सिच् वा कित् स्यादात्मनेपदेषु परतः। यथा--रामः सीतामुपायत, उपायंस्तवा ॥

रामने सीतासे विवाह किया। आत्मने पद प्रत्यय परे होंता उपयमन (विवाह) अर्थ में वर्त्तमान यमधातुसे परे सिच् प्रत्यय विकल्प से किद् वत् हो ॥ १६ ॥

स्थाघ्वोरिच्च ॥१७॥

स्थाघ्वोः, इत्, च। स्थाधातोर्घुसंज्ञकानाञ्चेदादेशः, सिच्चकित् स्यादात्मनेपदेषु परतः। यथा—उपास्थित, उपास्थिषाताम्, उपास्थिषत। अदित, अधित ॥

वह ठहरा, वेदोनों ठहरे, वे ठहरे ! उसने दिया। उसने धारण किया। स्था और घुसंज्ञक धातुओं से परे सिच् प्रत्यय किद्वत् हो और उक्त धातुओं के अन्त को इकार आदेश हो ॥ १७ ॥

१--(१ । ३ । २८) इत्यात्मनेपदम्। (६ । ४ । ३७) इत्यनुनासिकलोपः ॥
२—(१ । ३ । २५) इत्यात्मनेपदम्। (८ । २ । २७) इतिसिचोलोपः ॥

नक्त्वासेट् ॥ १८ ॥

सेट् क्त्वा किन्नस्यात् । यथा—शयित्वा । वर्तित्वा ॥

सोकर । वर्त्तावकरके ॥ सेट् (इटासहवर्तमानः) क्त्वाप्रत्ययकिद्वत्नहो ॥ १८ ॥

निष्ठाशीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥ १९ ॥

एभ्य परः सेण्निष्ठाकिन्नस्यात् । यथा—शयितः, शयितवान् । प्रस्वेदितः, प्रस्वेदितवान् । प्रमेदितः, प्रमेदितवान् । प्रक्ष्वेदितः, प्रक्ष्वेदितवान् । प्रधर्षितः, प्रधर्षितवान् ॥

सोयाहुआ । पसीनायुक्त । प्रीतियुक्त । दवाहुआ । शीङ् आदिधातुओंसे परे सेट् निष्ठाप्रत्ययकिद्वत्नहो ॥ १९ ॥

मृषस्तितिक्षायाम् ॥ २० ॥

मृषः, ति०म् । तितिक्षायामर्थे मृषेर्धातोः सेण्निष्ठाकिन्नस्यात् । यथा—मर्षितः, मर्षितवान् ॥

सहाहुआ । तितिक्षा (सहनशीलता) अर्थमें मृषधातुसेपरे सेट् निष्ठाप्रत्यय किद्वत्नहो ॥ २० ॥

उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥

उ०द्, भा० णोः, अ०म् । उदुपधात्परो भावादिकर्मणोः सेण् निष्ठा वा किन्नस्यात् । यथा—द्युतितमनेन, द्योतितमनेन । मुदितमनेन, मोदितमनेन साधुना । स प्रमुदितः, प्रमोदितः ॥

इस ने प्रकाश किया । इस साधुने हर्षित किया । वह हर्षित हुआ । भाव और आदि कर्म में उकारोपध धातुसे परे सेट् निष्ठा प्रत्यय विकल्प से किद्वत् न हो २१

१—(३।३।११४) इतिक्तः । २—(३।४।७१) इतिक्तः ॥

पूङः क्त्वा च ॥ २२ ॥

पूङः, क्त्वा, च । पूङः परः क्त्वा, निष्ठा च, सेट् किन्न स्यात् । यथा—पवितः, पूतः । पवितवान्, पूतवान् । क्त्वा ग्रहण मुत्तरार्थम् ॥

पवित्र । पुङ् धातु से परे सेट् निष्ठा और सेट् क्त्वा प्रत्यय किद्वत् न हो ॥२२॥

नोपधात्थफान्ताद्वा ॥२३॥

नकारोपधात्, थकारान्तात्, फान्ताच्च धातोः परः सेट् क्त्वा किद्वत् वा स्यात् । यथा—ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा । श्रथित्वा, श्रन्थित्वा । गुफित्वा, गुम्फित्वा ॥

गांठलगाकर । छोड़कर । बन्द करके । नकारोपध थकारान्त और फकारान्त धातु से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से किद्वत् हो ॥ २३ ॥

वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥२४॥

व०तः, च । वञ्चि, लुञ्चि, ऋत् इत्येभ्यः परः सेट् क्त्वा किन्न वा स्यात् । यथा—वचित्वा, वञ्चित्वा । लुचित्वा, लुञ्चित्वा । ऋतित्वा, अर्त्तित्वा ॥

ठगकर । केश उखाड़कर । घृणा करके । वञ्चि लुञ्चि और ऋत् धातु से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से किद्वत् न हो ॥ २४ ॥

तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥२५॥

तृषि मृषि कृशि इत्येभ्यः परः सेट् क्त्वा किन्न वा स्यात् । यथा—तृषित्वा, तर्षित्वा । मृषित्वा, मर्षित्वा । कृशित्वा, कर्शित्वा ॥

१-(७ । २ । ५१) वेतीडागमः ।

प्यासा होकर। सहकर। दुबला होकर। तृषि मृषि और कृश धातु से परे सेट् क्त्वा प्रत्यय विकल्प से किद् वत् न हो ॥ २५ ॥

रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ २६ ॥

र० दू, हं० देः, सं, च। उश्च, इश्च वी। इमे उपधे यस्य तस्माद्धलादे रलन्ताद्धातोः परौ क्त्वासनौ सेटौ वाकितौ स्याताम्। यथा—द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। रुचित्वा, रोचित्वा। (द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्) दिद्युतिषते, दिद्योतिषते। लिलिखिषति, लिलेखिषति। रुरुचिषते, रुरोचिषते ॥

प्रकाशित करके। लिखकर। रुचिकर। प्रकाशित करना चाहता है। लिखना चाहता है। अच्छा लगना चाहता है। उकार इकार जिसकी उपधा में हों और हल् जिसकी आदि में हो ऐसे रलन्त धातु से परे सेट् सन् तथा सेट् क्त्वा विकल्प से किद् वत् हों ॥ २६ ॥

ऊकालोऽज्झ्रस्व दीर्घप्लुतः ॥२७॥

ऊकालः, अच्, ह्र० तः। उश्च ऊश्च उ३श्चवः। वां काल इवकालो यस्यसोऽच् क्रमाद् ध्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। यथा—दधि। कुमारी। देवदत्त ३ ॥

दही। अनव्याही लड़की। हे देवदत्त (ऊंची आवाज से दूर से बुलाना)। एक मात्रिक द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक अच् क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत संज्ञक हो २७

अचश्च ॥ २८ ॥

अचः, च। ह्रस्व दीर्घ प्लुतशब्दैर्यत्राऽज्विधीयते तत्राच इति षष्ठयन्तं पदमुपतिष्ठते। यथा—अतिरिकुलम्। अतिनुकुलम्। उपगुकुलम् ॥

निर्धनकुल । जिसकुल में नौका न हो । जिस वंश में गौ न हों । ह्रस्व दीर्घ प्लुत शब्दों से जहां अच् विधान कियाजाय वहां अच् के ही स्थान में हो (अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का व्यवहार स्वरों में ही होता है व्यंजनों में नहीं) ॥ २८ ॥

उच्चैरुदात्तः ॥ २९ ॥

उच्चैः, उदात्तः । ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागेषु निष्पन्नोऽच्, उदात्तसंज्ञः स्यात् । आ ये ॥

वर्त्तमान (य० अ० ११ म० ९) ऊंचे स्वर से उच्चारण किया अच् उदात्त संज्ञक हो ॥ २९ ॥

नीचैरनुदात्तः ॥ ३० ॥

नीचैः, अ० त्तः । नीचैरुपलभ्यमानोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात् । यथा—अर्वाङ् ॥

निकट । नीचेस्वर से उच्चारण किया अच् अनुदात्त संज्ञक हो ॥ ३० ॥

समाहारः स्वरितः ॥ ३१ ॥

उदात्तत्वानुदात्तत्वेवर्ण धर्मौ यस्मिन् समाह्रियते सोऽच् स्वरित संज्ञःस्यात् ॥

उदात्त और अनुदात्त के गुण जिस में मिले हों वह अच् स्वरित संज्ञक हो ३१

तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ ३२ ॥

तस्य, अदितः, उदात्तम, अ०र्म् । तस्यस्वरितस्यादावर्द्धं ह्रस्वमुदात्तंस्यात् ।यथा--क्व । कन्या । शक्तिके ३ ॥

कहां । लड़की । हेबलवती । उसस्वरितके आदिमें अर्द्धह्रस्वउदात्तहो ॥ ३२ ।

१--(५ । ३ । १२)इत्यत् । (७ ।२ । १०५) इतिक्वादेशः ॥

एकश्रुतिदूरात्सम्बुद्धौ ॥ ३३ ॥

दूरात्सम्बोधने उदात्तानुदात्तस्वरितानामेक श्रुतिःस्यात्। यथा–आगच्छभोमाणवकसोमदत्त ३ ॥

हेलड़के सोमदत्तआ। यहां उदात्त अनुदात्त तथा स्वरितकापृथक् २ उच्चारण नहीं कियाजाता। दूरसे बुलानेमें उदात्तअनुदात्त और स्वरितकाएकश्रवणहो ॥३३॥

यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ ३४ ॥

यं० णि, अं० सु०। जपादीन् वर्जयित्वा यज्ञाक्रियायांमन्त्र एकश्रुतिः स्यात्। यथा–विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ॥

हे सबजगत् को पैदाकरने वाले ईश्वर सबदुःखोंको दूरकर। जप (मनमेंपढ़ना) न्यूङ्ख (वेदकाविशिष्ट भाग)औरसाम(सामवेद) कोछोड़करयज्ञकर्ममेंएकश्रुतिहो ३४

उच्चैस्तरां वावषट्कारः ॥ ३५ ॥

यज्ञकर्मणिवौषट् छब्द उच्चैस्तरांवास्यादेकश्रुतिश्च। यथा–वषट्कारैःसरस्वती। वषट्कारैःसरस्वती ॥

वषट्कार (देवोदेश्यत्याग) से वाणी सुशोभितहोती है। यज्ञकर्ममेंवषट्कार शब्द विकल्पसे उदात्ततरहो और एक पक्ष में एकश्रुतिभीहो ॥३५॥

विभाषाच्छन्दसि ॥ ३६ ॥

छन्दसि वैकश्रुतिःस्यात्। यथा--इषेत्वोर्ज्जेत्वा। इषेत्वोर्ज्जेत्वा ॥

तुझको ऐश्वर्यऔर बलकेलिये। वेदमन्त्रोंके सामान्य उच्चारणमें उदात्त अनुदात्त तथा स्वरितको विकल्पसे एक श्रुति स्वरहो ॥ ३६ ॥

* न्यूङ्खानामषोडशओकाराः। गीतेषु समाख्या इतिसि०कौ० ॥

१--यहांउदात्त और एकश्रुतिदोनों का चिन्ह नहोनेसे एकही प्रकारका स्वर अवगत होताहै परन्तु उच्चारण में भेद विदित होता है ॥

नसुब्रह्मण्यायांस्वरितस्यतूदात्तः ॥ ३७ ॥

न, सुं०म्, सु०स्य.तु,उ० त्तः । सुब्रह्मण्यस्यनिगदे यज्ञकर्मण्येक श्रुतिर्नस्यादपितु स्वरितस्योदात्तः स्यात् । (सुब्रह्मण्यामोकार उदात्तोभवति,भा०) ॥ यथा--सुब्रह्मण्योम्

सुब्रह्मण्या (ब्राह्मणस्थ कण्डिका) में एक श्रुतिनहो किन्तु स्वरितको उदात्तहो ॥ ३७ ॥

देवब्रह्मणो रनुदात्तः ॥ ३८ ॥

दे०णोः, अं० त्तः । सुब्रह्मण्यायामनयोः स्वरितस्याऽनुदात्तः स्यात् । यथा-देवा ब्रह्माण आगच्छत ॥

देव (विद्वान्) ब्रह्माण (ब्रह्मज्ञानी) आओ । सुब्रह्मण्या में देव ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को अनुदात्त हो ॥ ३८ ॥

स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम् ३९

स्व०तं, सं०मुं, अ०मुं । संहितायां स्वरितात् परेषामुदात्ताना मेकश्रुतिः स्यात् यथा-अग्निमीडे पुरोहितम् । होतारं रत्न धातमम् ॥

सर्वहितकारक हवन करनेवाले ईश्वर की में स्तुति करताहूं । स्वरितसे परे संहिता में एक, दो वा बहुत अनुदात्तों को एक श्रुति स्वर हो ॥ ३९ ॥

उदात्तस्वरितपरस्यसन्नतरः ॥ ४० ॥

उदात्तस्वरितौपरौयस्मात्तस्यानुदात्तस्यानुदात्ततरः स्यात् । यथा-अग्निः, पूर्वेभि ऋषिभिः

परमात्मा ब्रह्मचारी और सन्यासिओं से पूजने योग्य है । उदात्त और स्वरित जिससे परे हों ऐसे अनुदात्त को सन्नतर (अनुदात्ततर) आदेश हो॥४० ॥

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः ॥ ४१ ॥

अपृक्तः, ए० यं: । एकाल् प्रत्ययोऽपृक्तसंज्ञकः स्यात् । यथा-घृतस्पृक्[1] ॥

घीको छूने वाला । एक अल् (वर्ण) अपृक्त संज्ञक हो ॥ ४१ ॥

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ४२

समानाधिकरणस्तत्पुरुषः कर्मधारयसंज्ञः स्यात् । यथा-परम[2] राज्यम्, उत्तमराज्यम् ॥

अच्छाराज्य । समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारय संज्ञक हो ॥ ४२ ॥

प्रथमा निर्दिष्टं समासउपसंर्जनम् ।४३।

प्र०मं, स०से, उ०मं । समासे प्रथमा निर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञंस्यात् । यथा-कष्टश्रितः[3] । शङ्कुलाखण्डः । गृहदारु । वृकभयम् । आर्यसमाजः । अक्षशौण्डः ॥

दुःखी । सरौते से काटाहुआटुकड़ा । घरकेलियेलकड़ी । भेड़िये से डर । श्रेष्ठों की सभा । पांसाबाज । समास में प्रथमा विभक्तिसे निर्देश कियापद उपसर्जन संज्ञक हो ॥ ४३ ॥

एकविभक्ति चापूर्व निपाते ॥ ४४ ॥

ए० क्ति, च, अ०[अ] ते । पूर्वनिपातंवर्जित्वैकविभक्तिपदमुपसर्जनसंज्ञंस्यात् । यथा-निष्क्रान्तः वाराणस्या = निर्वाराणसिः[4] । निष्क्रान्तम्, वाराणस्या = निर्वाराणसिम् । निष्क्रान्तेन वाराणस्या = निर्वाराणसिना । निष्क्रान्ताय वाराणस्या =

१—(३ । २ । ५८) इति क्विन् । (६ । १।६७) इतिवलोपः । (८ । २ । ६२) इति कुत्वम् ॥
२— (६ । २ । १३०) अकर्मधारयेराज्यमित्यत्राकर्मधारय इति निषेधादुत्तरपदाद्युदात्तत्वाभावे समासान्तोदात्तत्वमेव ॥ ३-(२ । २। ३०) इतिकष्टशब्दस्य पूर्वप्रयोगः ॥ ४- (१ । २ । ४८] इति ह्रस्वः । निर्वाराणसिरिति।अनोजिऊं तद्त्रं यस्य सा वराणा गङ्गा, तस्या अदूरभवानगरी वाराणसी-काशी।

निर्वाराणसये । निष्क्रान्तात् वाराणस्या = निर्वाराणसेः । निष्क्रान्तस्य वाराणस्या = निर्वाराणसेः । निष्क्रान्ते वाराणस्या = निर्वाराणसौ । एवं निष्कौशाम्बिः ॥

काशीनगर से निकला हुआ । पूर्व निपातको छोड़कर एक विभक्ति पद उपसर्जन संज्ञक हो ॥ ४४ ॥

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ४५

अ०द्, अधातुः, अ०यः, प्रा०म् । धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च विहायाऽर्थ वच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिक संज्ञं स्यात् । यथा—वेदः । कुण्डम् । गङ्गा ॥

श्रुति (सत्य ज्ञानका पुस्तक) कुण्ड । धातु प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् शब्दस्वरूप प्रातिपदिक संज्ञक हो ॥ ४५ ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च ॥ ४६ ॥

कृ० साः, च । कृत्तद्धितान्तौ समासश्च प्रातिपदिक संज्ञकाःस्युः । पूर्व सूत्रेणैव सिद्धे समासग्रहणं नियमार्थम् । यथा—कर्त्ता[1] । नागरम्[2] । पाठशाला[3] ॥

करने वाला । शहरका । पढ़ने का स्थान । कृदन्त तद्धितान्त और समासान्त की प्रातिपदिक संज्ञा हो ॥ ४६ ॥

ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥४७॥

ह्रस्वः, नं० के, प्रा०स्य । क्लीवेप्रातिपदिकस्याऽजन्तस्य ह्रस्वः स्यात् । यथा—रै-अतिरिकुलम् । नौ-अतिनुकुलम् । गो-उपगुकुलम् ॥

नपुंसक लिङ्ग में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो ॥ ४७ ॥

१–(३ । १ । १३३) इति तृच् । (७ । ३ । ८४) इतिगुणः । (७; १. ९४) इत्यनङ् । (६.४.८) इति दीर्घः । (८. २. ७) नकार लोपः ॥ २–(४. ३. ५३) इत्यण् । (७. २. ११५] इति वृद्धिः॥ ३–(२. २. ८) इति समासः ॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥४८॥

गो० योः, उ०स्य । उपसर्जनंयोगोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् । यथा—चित्रगुः।निर्वाराणसिः॥

चित्र विचित्र जिसकी गायें हों वह । उपसर्जन गोशब्दान्त और उपसर्जन स्त्री प्रत्ययान्त प्रातिपदिकको ह्रस्वहो ॥ ४८ ॥

लुक् तद्धितलुकि ॥४९॥

तद्धितलुकि सति उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा—श्रविष्ठासु जातः--श्रविष्ठः । फाल्गुनः ॥

श्रविष्ठानक्षत्र में जन्मा । फल्गुनी नक्षत्र में पैदा हुआ । तद्धित प्रत्यय के लुक् होनेपर उपसर्जन स्त्री प्रत्यय का लुक् हो ॥ ४९ ॥

इद् गोण्याः ॥ ५० ॥

तद्धितलुकि सति गोण्याइदादेशः स्यात् । यथा--पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः--पञ्चगोणिः ॥

पांच गोणि (नि) ओं से लिया हुआवस्त्र । तद्धित के लुक् होनेपर गोणी शब्द को इकारादेश हो ॥ ५० ॥

लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने ॥ ५१ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचनेस्याताम् । यथा--पञ्चालानां निवासोजनपदः--पञ्चालाः[2], कुरवः, वङ्गाः ॥

पञ्चाल (फर्रुखाबाद के इतस्ततः स्थान) के रहने वाले । कुरुक्षेत्र के राजा

१-(४. ३. ३४) इति जातार्थप्रत्ययस्य लुक् ॥
२-(४. २. ८१] इति चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुप् ॥

या रहने वाले । वंगाली । तद्धित के लुप् होने पर व्यक्ति (लिङ्ग) और वचन युक्तवत् (पूर्ववत्) हों ॥ ५१ ॥

विशेषणानां चाऽजातेः ॥५२॥

वि० म्, च, अ० तेः । तद्धितलुपि सति जातिं विहाय विशेषणानां च व्यक्तिवचने युक्तवत् स्याताम् । यथा--पञ्चाला रमणीयाः (हरीतक्यादिषु व्यक्तिः) हरीतक्याः फलानि-हरीतक्यः ॥ (खलतिकादिषु बचनम्) खलतिकस्य पर्वतस्य अदूर भवानि-खलतिकम्--वनानि॥(मनुष्यलुपि प्रतिषेधः)मनुष्यलक्षणे॥ लुबर्थं विशेषणानां न, लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः--चञ्चा-अभिरूपः॥

पञ्चाल देश सुन्दर है । तद्धित के लुप्होने पर जाति भिन्न विशेषणों के लिङ्ग वचन भी युक्तवत् हों ॥ ५२ ॥

तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ॥ ५३ ॥

तत्, अं० म, सं०त् । युक्तवद् वचनं न कार्यम्, सञ्ज्ञानां प्रमाणत्वात् । यथा—आपः । दाराः । गृहाः । सिकता । वर्षा ॥

जल । स्त्रियाँ । वालू । वर्षायें ॥ संज्ञा शब्दोंके प्रमाण होनेसे युक्तवद्भाव अशिष्य (अकथनीय) है ॥५३॥

लुब्योगाऽप्रख्यानात् ॥ ५४ ॥

लुब्, यो०त् । योगाऽप्रख्यानाल्लुबप्यशिष्यः ॥

यौगिक अर्थ के प्रसिद्ध न होने से लुप् भी अशिष्य है ॥ ५४॥

योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् ॥

यदि हि योगस्याऽवयवार्थस्येदंबोधकंस्यात्, तदा तदभा-
वेन दृश्येत ॥

जो यौगिक अर्थ का प्रमाण होतो उसके न होने पर शब्द प्रयोग का अदर्शन हो॥

प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्याऽन्य-प्रमाणत्वात् ॥ ५६ ॥

प्र०म्, अ०स्य, अ०त् । प्रत्ययार्थः प्रधानम्, इत्येवं रूपं वचन-
मप्यशिष्यम्,कुतः अर्थस्य लोकत एव सिद्धेः ॥

लोकसे अर्थका प्रमाण होने से प्रधान और प्रत्ययार्थ भी अशिष्य हैं ।. ५६ ॥

कालोपसर्जने च तुल्यम् ॥५७॥

अतीताया रात्रेः पश्चिमार्द्धेन आगामिन्याः पूर्वार्द्धेन च सहितो
दिवसः--अद्यतनः । (विशेषणमुपसर्जनम्) इत्यादि पूर्वाचार्यैः
परिभाषितम् । तत्राप्यशिष्यत्वं समानं लोकप्रसिद्धत्वात् ॥

अर्थ के अन्य प्रमाण होने से काल और उपसर्जन भी अशिष्य हैं ॥ ५७ ॥

जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचन-मन्यतरस्याम् ॥ ५८ ॥

जा०मँ, ए०न्, ब०मँ, अ०म्॥जातिवाच्ये एकस्मिन्नर्थे बहुवचनं
वा स्यात् । यथा--यवानष्टाः, यवोनष्टो वा । मनुष्याश्चतुराः, मनुष्य
श्चतुरो वा ॥

यव (जौ) नाश होगये (या) । आदमी होशियार हैं (है) । जाति (समान

उत्पत्ति) के कथन होने पर एक अर्थ में बहुवचन विकल्प से हो ॥ ५८ ॥

अस्मदोर्द्वयोश्च ॥ ५६ ॥

अस्मदः, द्वयोः, च । अस्मदोद्वित्वे, एकत्वे च विवक्षिते बहुवचनं वा स्यात् । यथा--वयंवच्मः, पक्षे-अहं वच्मि, आवांवच्व इति वा ॥ (स विशेषणस्य प्रतिषेधः) यथा--पटुरहं वच्मि ॥

हम कहते हैं । मैं कहता हूं । हम दोनों कहते हैं । अस्मद् शब्द के द्विवचन और एक वचन में बहुवचन विकल्प से हो ॥ ५९ ॥

फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे ॥ ६० ॥

तारकाभिधाने, एषां द्वित्वे बहुत्वप्रयुक्तं कार्यं वा स्यात् । यथा--पूर्वे फल्गुन्यौ, पूर्वाः फल्गुन्यः । पूर्वे प्रोष्ठपदे, पूर्वाः प्रोष्ठपदाः ॥

नक्षत्र वाच्य हो तो फल्गुनी और प्रोष्ठपद (पूर्वाभाद्रपद) के द्विवचनमें बहुवचन विकल्प से हो ॥ ६० ॥

छन्दसि, पुनर्वस्वोरेकवचनम् ॥ ६१ ॥

छन्दसि विषये पुनर्वस्वोर्द्विवचने एकवचनं वा स्यात् । यथा—पुनर्वसु नक्षत्रम्, पुनर्वसू वा ॥

छन्द विषय में पुनर्वसु नक्षत्र के द्विवचन में एकवचन विकल्प से हो ॥ ६१ ॥

विशाखयोश्च ॥ ६२ ॥

वि॰ योः, च । छन्दसि विषये विशाखयोश्च द्विवचने एकचनं वा स्यात् । यथा—विशाखानक्षत्रम्, विशाखे वा ॥

छन्दविषय में विशाखानक्षत्रके द्विवचन में एकवचन विकल्पसे हो ॥ ६२ ॥

तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् ॥ ६३ ॥

ति०स्वोः, न०द्वे, ब० स्य, द्वि०मं, नित्यम्। तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रविषये द्वन्द्वे बहुवचनप्रसङ्गे नित्यं द्विवचनं स्यात्। यथा—तिष्यश्च पुनर्वसू च—तिष्यपुनर्वसू ॥

एकतिष्य (पुष्य) और दो पुनर्वसु। नक्षत्रों के द्वन्द्वसमास में बहुवचन को द्विवचन नित्य हो ॥ ६३ ॥

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥६४॥

स०म्, ए० षः, ए०क्तौ। एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेकएव शिष्यते। यथा—बालश्च,बालश्च = बालौ। वृक्षश्च, वृक्षश्च, वृक्षश्च = वृक्षाः ॥

दो बालक। बहुत पेड़। एक विभक्ति परे हो तो समानरूपवाले शब्दों में एक शेष रहे ॥ ६४ ॥

वृद्धोयूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः॥६५॥

वृद्धः, यूना, त०णः, चेत्,एव,विशेषः। यूनासहोक्तौ गोत्रं शिष्यते गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत् तयोः सर्वं वैरूप्यं स्यात्। यथा—गार्ग्यश्च, गार्ग्यायणश्च = गार्ग्यौ ॥

गार्ग्य और गार्ग्यायणगोत्रोत्पन्न। यदि गोत्रप्रत्यय और युवप्रत्ययमात्र ही भेद हो तो युवप्रत्ययान्तके साथ गोत्रप्रत्ययान्त शेषरहे एकविभक्ति परे होनेपर॥६५॥

स्त्री पुंवच्च ॥ ६६ ॥

स्त्री, पुंवत्, च। यूनासहोक्तौ वृद्धा स्त्री शिष्यते तदर्थश्च पुंवत् स्यात्।

यथा--गार्गी च, गार्ग्यायणौ च = गर्गाः। अस्त्रियामित्यनुवर्त्तमाने (यञञोश्च) इति लुक्। दाक्षी च, दाक्षायणश्च = दाक्षी ॥

गर्गगोत्रीय। दक्षगोत्रीय। यदि तल्लक्षणही विशेष हो तो युवप्रत्ययके साथ गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीवाचक शब्द शेष रहे और इस स्त्रीवाचक शब्दको पुल्लिङ्गवत् कार्य हो एक विभक्ति में ॥ ६६ ॥

पुमान्[१] स्त्रिया[२] ॥ ६७ ॥

स्त्रियासहोक्तौ पुमान् शिष्यते तल्लक्षणएव विशेषश्चेत्। यथा--काकश्च काकी च = काकौ। कुक्कुटाश्च कुक्कुट्यश्च = कुक्कुटाः ॥

दो काक। मुरग़े। यदि तल्लक्षणही विशेषहो तो स्त्रीवाचक शब्दके साथ पुरुषवाची शेष रहे ॥ ६७ ॥

भ्रातृपुत्रौ[१] स्वसृदुहितृभ्याम्[२] ॥ ६८ ॥

स्वसृदुहितृभ्या साकं भ्रातृपुत्रौ शब्दौ शिष्येते यथा--भ्राता च स्वसा च = भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिताच = पुत्रौ ॥

भाई और बहिन। पुत्र और पुत्री। भ्रातृ और पुत्र शब्द स्वसृ और दुहितृ शब्दके साथ यथाक्रम से शेष रहें। ६८ ॥

नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ६९ ॥

न०[१] म्, अ० केन[३], ए०त्[अ], च[अ], अस्य[६], अ०म्[अ] । अक्लीबेनसहोक्तौ क्लीबं शिष्यते, तच्च वा एकवत्-स्यात्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत्। यथा--शुक्लः कम्बलः, शुक्ला शाटी, शुक्लं वस्त्रम्। तदिदं शुक्लम्, तानीमानि-शुक्लानि ॥

अनपुंसक के साथ नपुंसकवाची शब्द शेषरहे और इस नपुंसक को एकवचन विकल्प से हो ॥ ६९ ॥

पिता[1] मात्रा[2] ॥ ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। यथा--माता च पिता च = पितरौ, मातापितरौ वा ॥

माता और पिता। मातृशब्द के साथ विकल्प से पितृशब्द शेष रहे ॥ ७० ॥

श्वशुरः श्वश्र्वा[2] ॥ ७१ ॥

श्वश्र्वासहोक्तौ श्वशुरो वा शिष्यते तल्लक्षणएव विशेषश्चेत्। यथा--श्वश्रूश्च श्वशुरश्च-श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशुरौ वा ॥

सास ससुर। श्वश्रू शब्दके साथ श्वशुर शब्द विकल्प से शेष रहै यदि तल्लक्षण विशेष हो तो ॥ ७१ ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ ७२ ॥

त्य०नि, सर्वैः, नित्यम्। सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि शब्दरूपाणि नित्यं शिष्यन्ते। यथा–सच देवदत्तश्च = तौ। यश्चसोमदत्तश्च = यौ॥ (त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत् परं तच्छिष्यते)। यथा–सच यश्च–यौ ॥ (पूर्वशेषोऽपि दृश्यते)इतिभाष्यम्। यथा–सच यश्च = तौ ॥ (त्यदादितः शेषे पुन्नपुंसकतो लिङ्गवचनानि भवन्ति) यथा–सच देवदत्तश्च = तौ, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च= तानि। पुन्नपुंसकयोस्तु परत्वान्नपुंसकं शिष्यते तच्च देवदत्तश्च = ते ॥

त्यदादि शब्दरूप सब के साथ नित्य शेष रहैं ॥ ७२ ॥

ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ ७३ ॥

ग्राँ॰ षु, स्त्री । अतरुणेषु ग्राम्यपशुसमूहेषु स्त्री शिष्यते । यथा-गावइमाः । अजा एताः ॥

ये गायें । ये बकरीं । अतरुण (जो जवान न हों) ग्राम्य (गांव में पैदा हुये) पशुओं के सङ्घ (समूह) में स्त्रीवाचक शब्द शेषरहे ॥ ७२ ॥

इतिप्रथमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः.

अथ प्रथमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ।

भूवादयो धातवः ॥ १ ॥

भू॰ यः, धातवः । क्रियावाचिनोभ्वादिशब्दा धातुसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-एध-एधते । स्पर्द्ध-स्पर्द्धते ॥

बढ़ता है । कुछ चलता है । क्रियाके वाची भू आदि शब्द धातुसंज्ञक हों ॥ १ ॥

उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ २ ॥

उँ॰ शे, अच्, अ॰ कः, इत् । उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्सञ्ज्ञः स्यात् । (प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः) । यथा-एध । स्पर्द्ध ॥

उपदेश में जो अनुनासिक अच् उस की इत्सञ्ज्ञा हो ॥ २ ॥

हलन्त्यम् ॥ ३ ॥

हल्, अन्त्यम् । उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात् । यथा-अइउण् अत्र णकारः । ऋ लृ क् अत्रककारः । सर्वत्रैवं बोध्यम् ॥

उपदेश में अन्त्य हल् इत्सञ्ज्ञक हो ॥ ३ ॥

न विभक्तौ तुस्माः ॥ ४ ॥

१--यावत् सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाऽभिधीयते । आश्रितक्रमरूपत्वात्सा क्रियेत्यभिधीयते । इतिपदमञ्जरी ॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतोनस्युः । यथा–त्–गृहात् । स्–बालकाः । तस्–पठतः । म्–अपचताम् ॥

घरसे । लड़के । वेदोनों पढ़तेहैं । उनदोनोंने पकाया । विभक्तिस्थतवर्ग, सकार और मकारकी इत् सञ्ज्ञा न हो ॥ ४ ॥

आदिर्ञिटुडवः ॥ ५ ॥

आदिः, ञिं॰ वः । उपदेशे धातोराद्या ञिटुडव इतःस्युः । यथा–ञिमिदा–मिन्नः । टुवेपृ–वेपथुः । डुपचष्--पक्तिमम् ॥

चिकना । कांपना । पकाहुआ । उपदेशमेंधातुकेआदि ञि, टु, डु, इत् संज्ञकहों। ५।

षः[1]प्रत्ययस्य ॥ ६ ॥

उपदेशे प्रत्ययस्यादिः ष इत् स्यात् । यथा--नर्तकी[2] । रजकी ॥

नटनी । धोबिन । उपदेशमेंप्रत्ययका आदिषकार इत् संज्ञकहो ॥ ६ ॥

चुटू[1] ॥ ७ ॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौस्याताम् । यथा--कौञ्जायन्यः[3] । जस्,छात्राः । वैनचरी[4] । मन्दुरजः[5] ॥

कुञ्जऋषिकीसन्तति । विद्यार्थी । वनमेंफिरनेवाली । घुड़सालमेंजन्मा । उपदेशमेंप्रत्ययके आदि चवर्ग और टवर्ग इत्संज्ञकहों ॥ ७ ॥

लशक्वतद्धिते ॥ ८ ॥

लशकु,अँ॰ते । उपदेशे तद्धितवर्जप्रत्ययाद्यालशकवर्गा इतःस्युः ।

१--(८ । २ । ४२) इति निष्ठातकारस्यनकारः । २-(३ । १ । १४५)इतिष्वन् । (४ । १ । ४१) षिद् गौरादिभ्यश्चेतिङीष् । रजकशब्दो गौरादि गणेपठितः ॥ ३--(४ । १ । ९८) इतिच्फञ् ॥ ४-(३ । २ । १६) इतिटः । (४ । १ । १५) इतिङीप् ॥ ५ । (३ । २ । ९७ । इतिडः । (६ । ३ । ६) इतिह्रस्वः ॥

यथा--लस्य--चयनम्[1] । यजनम् । शस्य--भवति[2] । यजते । कोः-भुक्तः । भुक्तवान् । प्रियंवदः[3] । जिष्णुः[4] । भङ्गुरः ॥

इकट्ठाकरना । यज्ञकरना । होताहै । होमकरताहै । खायाहुआ । प्रियबोलनेवाला । जीतनेवाला । अपनेआपटूटनेवाला । तद्धितवर्जितउपदेशमें प्रत्ययकेआदि ल, श और कवर्ग इत्संज्ञक हों ॥ ८ ॥

तस्य[6] लोपः[1] ॥ ९ ॥

यस्येत् संज्ञा विहिता तस्यलोपः स्यात् । प्रागेवोदाहृतम् ॥

जिसकी इत् संज्ञा विधान की है उसका लोपहो ॥ ९ ॥

यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् ॥ १० ॥

य०म्[1], अ०शः[1], स०म्[6] । समसङ्ख्यानां विधिर्यथाक्रमंस्यात् । यथा-कवये[6] । गुरवे । चायकः । लावकः ॥

कविकेलिये । गुरुकेलिये । इकट्ठाकरनेवाला । काटनेवाला । बराबरसङ्ख्यावालोंका कार्य यथासङ्ख्य (तरतीबवार) हो ॥ १० ॥

स्वरितेनाऽधिकारः[3] ॥ ११ ॥

स्वरितचिह्नेनाधिकारोविज्ञेयः । स्वरितोनामवर्णधर्मः । वर्णधर्ममात्रमित्यर्थः । प्रतिज्ञास्वरिताः पाणिनीयाः ॥

स्वरितकेचिह्नसे अधिकारजाननाचाहिये ॥ ११ ॥

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ १२ ॥

१—(३ । ३ । ११५) इतिल्युट् । (७. १. १) अनादेशः । २—(३- १.६८) इतिशप् ३—(६. ३ ६७. इतिमुमागमः. ४ --(३.३.१३९) इतिग्स्नुः ५-(३. २. १६१) इतिघुरच्॥ ६-(७.३. ८४) इतिगुणादेशः (६. १. ७८. इतिक्रमादय् अव् आय् आवादेशाः ॥

अ०तं:, आ०मं। अनुदात्तेतोये धातवोङितश्च तेभ्य एवात्मनेपदं स्यात्। यथा-(अनुदात्तेद्भ्यः) आस्-आस्ते । वस्-वस्ते। (ङिद्भ्यः) षूङ्-सूते। शीङ्-शेते ॥

बैठताहै। पहनताहै। पैदाकरताहै। सोताहै। अनुदात्तेत् और ङित् धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हों ॥ १२ ॥

भावकर्मणोः[+] ॥ १३ ॥

भावे कर्मणि चात्मनेपदं स्यात्। यथा-भावे, सुप्यते[1] भवता। आस्यते त्वया। कर्मणि, क्रियते[2] कटः। ह्रियते भारः। कर्मकर्त्तरि-लूयते केदारः स्वयमेव ॥

धातु से भाव और कर्म में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों ॥ १३ ॥

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥ १४ ॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्त्तर्यात्मनेपदं स्यात्। यथा-व्यतिलुनते[3]। व्यतिपुनते ॥

एक दूसरेका काटतेहैं। एक दूसरेका साफ करतेहैं। कर्मव्यतिहार (कार्यके बदले) अर्थमें वर्त्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद हो ॥ १४ ॥

नगतिहिंसार्थेभ्यः[अ][५] ॥ १५ ॥

गत्यर्थेभ्योहिंसार्थेभ्यश्चधातुभ्यःकर्मव्यतिहारेनात्मनेपदंस्यात्। यथा--व्यतिगच्छन्ति[4],व्यतियन्ति[5]। व्यतिहिंसन्ति,व्यतिघ्नन्ति[6] ॥

+ भाव्यत इति भावः, ण्यन्ताद् भवतेः कर्मणि घञ् ॥ १-(६ । १ । १५) इति ञिष्वप्शये धातोः सम्प्रसारणम् ॥ २-(७ । ४ । २८) इतिरिङादेशः ॥ ३--लूञ्छेदने (७ । १ । ५) इत्यदादेशः । (६ । ४ । ११२) इत्याकारलोपः । (७ । ३ । ८०) इतिह्रस्वः ॥ ४—(७. ३. ७७] इतिछकारादेशः [६. १.७३] इतितुगागमः ॥ ५—[६ ४ ८१] इतियणादेशः ॥ ६—[६. ४. ९८] इत्युपधालोपः । [७. ३. ५४] इतिकुत्वम् ॥

(प्रतिषेधेहसादीनामुपसङ्ख्यानम्) । यथा--व्यतिहसन्ति। व्यतिजल्पन्ति । व्यतिपठन्ति ॥ (हरतेरप्रतिषेधः) यथा संप्रहरन्ते राजानः ॥

एक दूसरेके विरुद्ध चलतेहैं ॥ एक दूसरेको कष्टदेतेहैं । गत्यर्थ और हिंसार्थक धातुओंसे कर्मव्यतिहारमें आत्मनेपदहो ॥ १५ ॥

इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ १६ ॥

इ०तं, अ च । इतरेतरोऽन्योन्य इत्येवमुपपदाद्धातोः कर्मव्यतिहारे नात्मनेपदं स्यात्।यथा-इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति, अन्योऽन्यस्य व्यतिलुनान्ति॥ (परस्परोपपदाच्चेतिवाच्यम्) यथा-परस्परस्य व्यतिलुनन्ति ॥

एकदूसरे का काटतेहैं । इतरेतर और अन्योन्य जिसके उपपदहों ऐसे धातुसेकर्मव्यतिहारमें आत्मनेपद नहो ॥ १६ ॥

नेर्विशः ॥ १७ ॥

नेः, विशः । नेः परस्माद् विशआत्मनेपदं स्यात्। यथा -निविशते॥

घुमताहै । निउपसर्ग पूर्वक विशधातुसेआत्मनेपदहो ॥ १७ ॥

परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ १८ ॥

परिव्यवेभ्य उत्तरात् क्रीणातेरात्मनेपदंस्यात्। यथा--परिक्रीणीते। विक्रीणीते । अवक्रीणीते ॥

सबमोललेताहै । वेचताहै । मोललेताहै । परि, वि और अव पूर्वक क्रीधातुसे आत्मनेपदहो ॥ १८ ॥

विपराभ्यांजेः ॥ १९ ॥

विपरापूर्वाज्जयतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा--विजयते । पराजयते ॥

जीतताहै । हारताहै । उपसर्गवि परापूर्वक जिधातुसे आत्मनेपदहो ॥ १९ ॥

आङोदोऽनास्यविहरणे ॥ २० ॥

आङः, दः, अं० णे । आङ् पूर्वाद्ददातेर्मुखविकसनादन्यत्रार्थेव-र्त्तमानादात्मनेपदं स्यात् । यथा-विद्यामादत्ते ॥ (पराङ्गकर्मकान्न निषेधः) । यथा-व्याददते-पिपीलिकाः पतङ्गस्यमुखम् ॥

विद्याको ग्रहणकरताहै । अनास्य विहरण (मुखका न फैलाना) अर्थमें आङ्पूर्वक डुदाञ् धातुसे आत्मनेपदहो ॥ २० ॥

क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ॥ २१ ॥

क्रीडः, अ० भ्यः, च[अ] । अनु, सम्, परि इत्येवं पूर्वादाङ् पूर्वाच्च क्रीडधातोरात्मनेपदं स्यात् । यथा—अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । (समोऽकूजने) संक्रीडते । कूजने तु—संक्रीडति चक्रम् ॥ (आगमेः क्षमायाम्) ण्यन्तस्येदं ग्रहणम् । यथा—आगमयस्व तावत् । मात्वरिष्ठा इत्यर्थः ॥ (शिक्षेर्जिज्ञासायाम्) यथा—धनुषि शिक्षते । धनुर्विषये ज्ञानेशक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः ॥ (आशिषि नाथः) आशिष्येवेति नियमार्थं वार्त्तिकमित्युक्तम् । यथा—सर्पिषो-नाथते । सर्पिर्मेस्यादित्याशास्त इत्यर्थः ॥ (हरतेर्गतताच्छील्ये) गतम्-प्रकारः । यथा—पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । मातृकं गावः । पितुर्मातुश्च गतं सततं परिशीलयन्तीत्यर्थः ॥ (किरते हर्षजीविकाकुलाय करणेष्विति वाच्यम्) यथा—अपस्कि-किरते वृषभो हृष्टः, कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी च ॥

१—(६ । १ । १४२) इति सुट् ॥

(आङ्नुसम्परिभ्यश्च)। आनुते शृगालः। आपृच्छते गुरुम्॥ (शपउपालम्भे) देवदत्ताय शपते। वाचा शरीरस्पर्शनमिति। त्वत् पादौ स्पृशामि नैतन्मयाकृतं शपथ विशेषः॥

साथ खेलता है। अच्छे प्रकार खेलता है। चारों ओर से खेलता है। सर्व प्रकार से खेलता है। अनु सम् परि और आङ् पूर्वक क्रीड धातु से आत्मनेपद हो॥

समवप्रविभ्यः स्थः॥ २२॥

सम्, अव, प्र, वि इत्येवंपूर्वात्स्था धातोरात्मनेपदं स्यात्। यथा— संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते। (स्थाघ्वोरिच) समस्थित, समस्थिषाताम्, समस्थिषत॥ (आङः प्रतिज्ञायामुपसङ्ख्यानम्) यथा—शब्दं नित्यमातिष्ठते। नित्यत्वेनप्रतिजानीते इत्यर्थः॥

अच्छे प्रकार ठहरता है। निश्चय ठहरता है। प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है। विरुद्ध ठहरता है। सम्, अव, प्र और वि पूर्वक स्था धातु से आत्मने पदहो॥ २२॥

प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च॥ २३॥

प्र० योः, च[अ]। प्रकाशने स्थेयाख्यायां च स्था धातोरात्मनेपदं स्यात्। यथा--तिष्ठते वृषलीकामुकाय। आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः। संशय्य कर्णादिषुतिष्ठते यः। कर्णादीन्निर्णेतृत्वे नाश्रयतीत्यर्थः॥

प्रकाशन और स्थेयाख्य (विवादपदनिर्णयता) अर्थ में स्था धातु से आत्मनेपद हो॥ २३॥

उदोऽनूर्ध्वकर्मणि॥२४॥

उदः, अ० णि। अनूर्ध्वकर्मणिवर्त्तमानादुत्पूर्वात् स्थाधातोरात्म-

१ [७। ३। ७८] इति तिष्ठादेश॥

नेपदं स्यात् । यथा-मुक्तावुत्तिष्ठते । तदर्थं यततेइत्यर्थः । (ईहायामेव) इहमाभूत् । अस्माद्ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठन्ति । शतमुत्पद्यतेइत्यर्थः ॥

वह मुक्तिके लिये प्रयत्न करता है । अनूर्ध्व (उठने में न) कर्म में वर्त्तमान उत् पूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद हो ॥ २४ ॥

उपान्मन्त्रकरणे ॥२५॥

उपात्, मं० णे । मन्त्रकरणेऽर्थेवर्त्तमानादुपपूर्वात् स्था धातोरात्मने पदं स्यात् । यथा -आग्नेय्याऽग्नीध्रमुपतिष्ठते । (उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम) । यथा- (देवपूजायाम्) आदित्यमुपतिष्ठते । सङ्गतिकरणे-गङ्गायमुनामुपतिष्ठते । उपश्लिष्यतीत्यर्थः । मित्रकरणे-रथिकानुपतिष्ठते । मित्रीकरोतीत्यर्थः । पथि-अयं पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते । प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ (वा लिप्सायामितिवाच्यम्) यथा--भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा । लिप्सया उपगच्छतीत्यर्थः ॥

अग्नि है देवता जिस मन्त्र (ऋचा) का उससे होता के समीप बैठताहै । मन्त्र करण अर्थ में वर्त्तमान उपपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद हो ॥ २५ ॥

अकर्मकाच्च ॥ २६ ॥

अ॑ं०त्, च । उपात्तिष्ठतेरकर्मकादात्मनेपदं स्यात् । यथा–भोजनकाले उपतिष्ठते । सन्निहितो भवतीत्यर्थः ॥

उपपूर्वक अकर्मक स्था धातु से आत्मनेपद हो ॥ २६ ॥

उद्विभ्यां तपः ॥ २७ ॥

उद्, वि इत्येवं पूर्वात्तपतेरकर्मकादात्मनेपदं स्यात् । यथा–उत्तपते ।

वितपते । दीप्यते इत्यर्थः ॥ (स्वाङ्ग कर्मकाच्चेति वाच्यम्) स्वमङ्गं स्वाङ्गम्, न त्वद्रवामितिपरिभाषितम् । उत्तपते, वितपते पाणिम् ॥

उद् और वि पूर्वक अकर्मक तप धातु से आत्मनेपद हो ॥ २७ ॥

आङो यमहनः ॥ २८ ॥

आङः, य०नैः । आङ्पूर्वाभ्यामकर्मकाभ्यांयमहनधातुभ्यामात्मनेपदं स्यात् । यथा—आयच्छते । आहते ॥

देताहै । मारताहै । आङ् पूर्वक अकर्मक यम और हन धातु से आत्मनेपद हो ॥ २८ ॥

समोगम्यृच्छिभ्याम् ॥ २९ ॥

समः, ग०मं । सम्पूर्वाभ्यां गम्यृच्छिभ्यामकर्मकाभ्यामात्मनेपदं स्यात् । यथा--संगच्छते । समृच्छते ॥

अच्छेप्रकार जानताहै । सम्यक् जानताहै । सम् पूर्वक अकर्मक गम्लृ और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद हो ॥ २९ ॥

निसमुपविभ्यो ह्वः ॥ ३० ॥

नि०भ्यः, ह्वः । नि, सम्, उप, वि इत्येवं पूर्वाद् ह्वयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--निह्वयते । संह्वयते । उपह्वयते । विह्वयते ॥

बुलाताहै । नि, सम्, उप, और वि पूर्वक ह्वेञ् धातुसे आत्मनेपद हो ॥ ३० ॥

स्पर्द्धायामाङः ॥ ३१ ॥

स्प०म्, आङः । स्पर्द्धायामर्थे आङ् पूर्वाद् ह्वयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--मल्लोमल्लमाह्वयते ॥

१ '६ । ४ । ३७' इत्यनुनासिकलोपः ॥

मल्ल मल्लको बुलाताहै । स्पर्द्धा (पराभवेच्छा) अर्थमें आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३१ ॥

गन्धनाऽवक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रति-यत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ॥ ३२ ॥

गन्धनादिष्वर्थेषु वर्त्तमानात् करोतेरात्मनेपदं स्यात् । गन्धनम्-हिंसा । यथा--उत्कुरुते । सूचयतीत्यर्थः । सूचनं हि प्राणवियोगानुकूलत्वाद्धिंसैव । अवक्षेपणम्--भर्त्सनम् । श्येनोवर्त्तिकामुदाकुरुते । भर्त्सयतीत्यर्थः । गुरुमुपकुरुते । सेवते इत्यर्थः । परदारान् प्रकुरुते । ता वशी करोतीत्यर्थः । एधोदकस्योपस्कुरुते । गाथाः प्रकुरुते । प्रकाशयतीत्यर्थः । सहस्रं प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः ॥

गन्धन (हिंसन) अवक्षेपण (धमकाना) सेवन (सेवा) साहसिक्य (वशमें करना) प्रतियत्न (प्रणिधान) प्रकथन (सम्यक् कथन) और उपयोग (उपकार) अर्थमें कृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३२ ॥

अधेः प्रसहने ॥ ३३ ॥

प्रसहने वर्त्तमाना दधिपूर्वात्करोतेरात्मनेपदं स्यात् । प्रसहनम्-क्षमाऽभिभवश्च । षहमर्षणेऽभिभवे चेति पाठात् । यथा--शत्रुमधिकुरुते । क्षमते इत्यर्थः ॥

प्रसहन अर्थमें वर्त्तमान डुकृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३३ ॥

वेः शब्दकर्मणः ॥ ३४ ॥

१--एध शब्दोऽकारान्तः. अवो दैधोध्म-इति निपातः. एधाश्च उदकं च तेषां समाहारः. यद् वा एधःशब्दः सकारान्तः. तथा च एधांसि च दकं चेति विग्रहः. दकशब्दोऽप्युदक वाच्ये वेत्यर्थोऽत्र न भिद्यते. उक्तंच हलायुधे-' प्रोक्तं प्राद्यैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च ' इति. त० बो० ॥

विपूर्वाच्छब्दकर्मणः करोतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—शृगालो-विकुरुते स्वरान् । उच्चारयतीत्यर्थः ॥

विपूर्वक शब्दकर्मक कृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३४ ॥

सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञान-भृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ ३५ ॥

सत्सु सम्माननादिषु विशेषणेषु नयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—शास्त्रे नयते । शास्त्रस्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः । उत्सञ्जने । दण्डमुन्नयते । उत्क्षिपतीत्यर्थः । बालकमुपनयते । आ-चार्यकरणे । शास्त्रविधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । ज्ञाने । तत्त्वं नयते । निश्चिनोतीत्यर्थः । भृतौ । कर्मकरानुपनयते । वेतनादि-दानेन स्वसमीपं प्रापयतीत्यर्थः । विगणने । (विगणनमृणादेर्नि-यातनम्) करं विनयते । राज्ञदेयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः । व्यये । शतं विनयते । धर्म्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः ॥

सम्मानन (प्राप्तकरना) उत्सञ्जन (ऊपरको फेंकना) आचार्य करण (गुरुका करना) ज्ञान (बोध) भृति (नौकरी) विगणन (चुकाना) और व्यय (धर्म-कार्यमें व्यय) अर्थमें णीञ्धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३५ ॥

कर्त्तृस्थे चाऽशरीरे कर्मणि ॥ ३६ ॥

क०स्थे, च, अशरीरे, कर्मणि । शरीराऽवयवभिन्ने कर्त्तृस्थे कर्मणि नयतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—क्रोधं विनयते । अपगमयतीत्यर्थः ॥

शरीरावयव भिन्न और कर्त्ता में स्थित कर्म उपपद हो तो णीञ् धातु से आत्मने-पद हो ॥ ३६ ॥

वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ ३७ ॥

एष्वर्थेषु क्रमते रात्मनेपदं स्यात्। यथा—ऋच्यस्य क्रमते बुद्धिः। न प्रतिहन्यते इत्यर्थः। (सर्गः-उत्साहः) अध्ययनायक्रमते। उत्सहते इत्यर्थः। अस्मिञ्छास्त्राणि क्रमन्ते। स्फीतानि—प्रवृद्धानि भवन्तीत्यर्थः॥

वृत्ति (अप्रतिबन्ध) सर्ग (उत्साह) और तायन (वृद्धि) अर्थमें क्रम धातु से आत्मनेपद हो ॥ ३७ ॥

उपपराभ्याम् ॥ ३८ ॥

उपपरापूर्वात् क्रमतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा--उपक्रमते। पराक्रमते॥

आरम्भकरताहै। बहादुरी करताहै। उपपरा पूर्वक क्रम धातु से आत्मनेपद हो ३८

आङ उद्गमने ॥ ३९ ॥

आङः, उं०ने। उद्गमनेऽर्थे वर्त्तमानादाङ् पूर्वात् क्रमतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा--भानु राक्रमते। उदयत इत्यर्थः॥

उद्गमन अर्थमें आङ् पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद हो ॥ ३९ ॥

वेः पादविहरणे ॥ ४० ॥

पादविहरणेऽर्थेवर्त्तमानाद्विपूर्वात्क्रमतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा--साधुविक्रमते वाजी॥

घोड़ा अच्छा चलताहै। पाद विहरण अर्थमें वि पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपदहो ४०

प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ ४१ ॥

समर्थाभ्यां प्रोपाभ्यां परस्मात् क्रमतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा–प्रक्रमते । उपक्रमते । आरभते इत्यर्थः ॥

तुल्यार्थ प्र, उप पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद हो ॥ ४१ ॥

अनुपसर्गाद् वा ॥ ४२ ॥

उपसर्गवियुक्तात् क्रमतेरात्मनेपदं वा स्यात् । यथा–क्रामति । क्रमते ॥

टहलताहै । उपसर्ग भिन्न क्रमधातु से आत्मनेपद विकल्पसेहो ॥ ४२ ॥

अपह्नवे ज्ञः ॥ ४३ ॥

अपलापेऽर्थे वर्तमानाज्जानातेरात्मनेपदं स्यात् । यथा–शतमपजानीते । अपलपतीत्यर्थः ॥

अपह्नव (सत्य को भी झूठ बनाकर कहना) अर्थ में ज्ञा धातुसे आत्मने पदहो ॥

अकर्मकाच्च ॥ ४४ ॥

अ०तं, च । अकर्मकाज्जानातेरात्मनेपदं स्यात् । यथा–सर्पिषो जानीते । सर्पिषो उपायेन प्रवर्त्तते इत्यर्थः ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो ॥ ४४ ॥

सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ॥ ४५ ॥

स० मूं, अं० ने । अनाध्यानेऽर्थे सम्,प्रति,इत्येवं पूर्वाज्जानाते

१–(७ । ३ । ७६) इति दीर्घत्वम् ।

रात्मनेपदं स्यात् । यथा—शतं संजानीते । अवेक्षते इत्यर्थः । सहस्रं प्रतिजानीते । अङ्गीकरोतीत्यर्थः ॥

अनाध्यान (उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण का न करना) सम् प्रति पूर्वक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो ॥ ४६ ॥

भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ॥ ४६ ॥

भासनादिषु सत्स्वर्थेषु वदतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—शास्त्रे वदते । भासमानो ब्रवीतीत्यर्थः । उपसम्भाषायाम् । भृत्यानुपवदते । सान्त्वयतीत्यर्थः । ज्ञाने । शास्त्रेवदते । यत्ने । गेहे वदते । विमतौ।क्षेत्रेविवदन्ते । उपमन्त्रणे । उपवदते प्रार्थयते इत्यर्थः ॥

शास्त्रमें प्रकाशित हुआ बोलता है । नौकरों को धैर्य दिलाता है । शास्त्रमें सम्यग् बोध रखता है । घरकेलिये उत्साहित होता है । खेतमें विवादकरतेहैं । प्रार्थनाकरता है । भासन (दीप्ति) उपसम्भाषा (धैर्य दिलाना) ज्ञान (बोध) यत्न (उत्साह) विमति (नानामति) और उपमन्त्रण (मांगना) अर्थमें वद धातुसे आत्मनेपदहो ॥४६॥

व्यक्तवाचांसमुच्चारणे ॥ ४७ ॥

मनुष्याणां समूहोच्चारणे वदतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा--सम्प्रवदन्ते छात्राः । नेह सम्प्रवदन्ति खगाः ॥

विद्यार्थी अच्छाउच्चारण करतेहैं । स्पष्टवाणी वालोंके एकसाथ उच्चारण करनेमें वदधातु से आत्मनेपदहो ॥ ४७ ॥

अनोरकर्मकात् ॥ ४८ ॥

अनोः, अं०त । व्यक्तवाग्विषयादनुपूर्वादकर्मकाद्वदतेरात्मने-

पदं स्यात् । यथा--अनुवदते सावित्री यशोदायाः । यशोदाऽधी-याना वदति तथा सावित्रीत्यर्थः ॥

स्पष्ट उच्चारणविषयक अनुपूर्वक अकर्मक वदधातु से आत्मनेपदहो ॥ ४८ ॥

विभाषाविप्रलापे ॥ ४९ ॥

विरुद्धोक्तिरूपेऽव्यक्तवाचां समुच्चारणेवदतेरात्मनेपदंवास्यात् । यथा-विप्रवदन्ते, विप्रवदन्ति वावैद्याः ॥

हकीम एक दूसरेके प्रतिकूल कहताहै । विप्रलाप (एकदूसरेकेविरुद्ध) अर्थमेंस्पष्ट उच्चारण विषयक वदधातुसे विकल्प करके आत्मनेपदहो ॥ ४९ ॥

अवाद् ग्रः ॥ ५० ॥

अवपूर्वाद् गिरतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा--अवगिरते ॥

निकलताहै । अवपूर्वक गृ धातुसेआत्मनेपदहो ॥ ५० ॥

समः प्रतिज्ञाने ॥ ५१ ॥

प्रतिज्ञानेऽर्थे वर्त्तमानात् सम्पूर्वाद् गिरतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा--शब्दंनित्यंसंगिरते ॥

शब्दकोनित्यमानताहै । प्रतिज्ञान (स्वीकारकरना) अर्थमें सम्पूर्वक गृ धातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५१ ॥

उदश्चरः सकर्मकात् ॥ ५२ ॥

उदः, चरः, स०तं । सकर्मकादुत्पूर्वाच्चरतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा-धर्ममुच्चरते । उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः ॥

उद्पूर्वक सकर्मक चरधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५२ ॥

समस्तृतीयायुक्तात् ॥ ५३ ॥

समँः, तृ०तं । सम्पूर्वात्तृतीयायुक्ताच्चरतेरात्मनेपदंस्यात् । यथा—रथेन संचरते ॥

रथसेचलताहै । तृतीया विभक्तिसे युक्तसंपूर्वकचरधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५३ ॥

दाणश्चसाचेच्चतुर्थ्यर्थे ॥ ५४ ॥

दाणँः, च, चेत्, चँ०र्थे । सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेनयुक्तादात्मनेपदंस्यात् तृतीयाचेच्चतुर्थ्यर्थे । यथा—वृषल्या संप्रयच्छते । योवृषल्या सह भुञ्जानस्तयादत्तं स्वयं भुङ्क्ते स्वयंच तस्यै ददाति तद्विषयोऽयं प्रयोगः ॥

तृतीयाविभक्तियुक्त सम्पूर्वक दाणधातुसे आत्मनेपदहो यदि वह तृतीया चतुर्थी के अर्थमें हो तो ॥ ५४ ॥

उपाद्यमःस्वकरणे ॥ ५५ ॥

उपात्, यमँः, स्वँ०णे । स्वीकारे वर्त्तमानादुत् पूर्वाद्यम आत्मनेपदं स्यात् । यथा--भार्यामुपयच्छते ॥

स्त्रीकोबरता है । स्वकरण (विवाह) अर्थमें उपपूर्वक यम धातुसे आत्मनेपदहो॥

ज्ञाश्रुस्मृदृशांसनः ॥ ५६ ॥

सन्नन्तानामेषामात्मनेपदं स्यात् । यथा—धर्म्मं जिज्ञासतेनित्यम्, गुरुं शुश्रूषतेच यः । नहिसुस्मूर्षते नष्टम् मुक्तिमार्गं दिदृक्षते ॥

धर्म को जानना चाहता है । गुरु की सेवा करना चाहताहै । नाश हुये पदार्थ

का स्मरण नहीं करना चाहता। मोक्षके मार्गको देखना चाहता है। ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृशिर् सन्नन्त धातुओं से आत्मनेपद हो ॥ ५६ ॥

नानोर्ज्ञः ॥५७॥

न, अनोः, ज्ञः, अनुपूर्वात् सन्नन्ताज्जानातेरात्मनेपदं न स्यात्। यथा--पुत्रमनुजिज्ञासति। पूर्वसूत्रस्यैवायं निषेधः ॥

अनुपूर्वक सन्नन्त ज्ञा धातु से आत्मनेपद न हो ॥ ५७ ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ ५८ ॥

प्रति, आङ् इत्येवं पूर्वात्सन्नन्ताच्छृणोतेरात्मनेपदं न स्यात्। यथा--प्रतिशुश्रूषति। आशुश्रूषति ॥

बदलेमें सुननाचाहताहै। अच्छेप्रकार सुननाचाहताहै. प्रति और आङ्पूर्वक सन्नन्त श्रु धातुसे आत्मनेपदनहो ॥ ५८ ॥

शदेःशितः ॥५९॥

यः शिद्भावी शितः सम्बन्धीवा तस्माच्छदेरात्मनेपदं स्यात्। यथा-शीयते, शीयेते, शीयन्ते ॥

मारताहै। शिद् भावी या शित्सम्बन्धी शद्ऌधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ५९ ॥

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ ६० ॥

म्रियतेः, लुं०ङोः, च। लुङ्लिङोर्म्रियतेः शितश्चात्मनेपदंस्यात्। यथा--अमृत। मृषीष्ट। शितः। म्रियते, म्रियेते, म्रियन्ते ॥

१--(१।२।१२) इति लिङः कित्। (७।२।२७) इति सलोपः। (१।१।५) इति गुण निषेधः॥
२--(७।४।२८) इति रिङादेशः॥

मरगया । हेप्रभो वहमर जावे । प्राणत्यागकरे । लुङ् लिङ् सम्बन्धी तथा शित् सम्बन्धी मृङ्धातुसे आत्मनेपदहो ॥ ६० ॥

पूर्ववत् सनः ॥ ६१ ॥

सनः पूर्वोयोधातुस्तेनतुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदंस्यात् । यथा—एदिधिषते । शिशयिषते । आसिसिषते । निविविक्षते । आचिक्रांसते ॥

बढ़नाचाहताहै । सोना (नींद) चाहताहै । बैठनाचाहताहै । घुसनाचाहता है । निकलनाचाहताहै । आत्मनेपदीधातुओंसेसनप्रत्ययहोनेपर भीआत्मनेपदहीहो ॥ ६१ ॥

आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य ॥ ६२ ॥

आ०त्, कृञः, अ० स्य । अनुप्रयोगस्य कृञ आम्प्रत्ययवदात्मनेपदं स्यात् । यथा—एधाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे । ईक्षाञ्चक्रे ॥

वह बढ़ाथा । उसने चेष्टाकीथी । अनुप्रयुक्त कृञ् धातु से आम्प्रत्ययवत् (अर्थात् आम्प्रत्यय जिस धातु से हुआहै उससे यदि आत्मनेपदहो तो) आत्मनेपद हो ॥ ६२ ॥

प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥ ६३ ॥

प्रो०म्, युजेः, य०षु । प्र, उप इत्येवं पूर्वाद्युजेरयज्ञपात्रप्रयोगविषयादात्मनेपदं स्यात् । यथा—प्रयुङ्क्ते । उपयुङ्क्ते ॥ (**स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वाच्यम्**) । उद्युङ्क्ते, नियुङ्क्ते ॥

प्रयोगमें लाताहै । यज्ञपात्रप्रयोगसे भिन्न अर्थमें प्र तथा उपपूर्वक युजिर् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ६३ ॥

× कृञिति प्रत्याहारग्रहणम् (५ । ४ । ५०) इत्यारभ्य (५ । ४ । ५८) पर्यन्तं तेन ईहामास । ईहाम्बभूव इत्यपि साधुः ॥

१-(३।१।७८) इति श्नम् । (६ । ४ । १११) इति श्नसोऽल्लोपः । (८।२ । ३०) इतिकुत्वम् । (८ । ३ । २४) इत्यनुस्वारः । (८ । ४ । ५८) इतिपरसवर्णः॥

समः क्ष्णुवः ॥ ६४ ॥

सम्पूर्वात् क्ष्णुतेरात्मनेपदं स्यात् । यथा—संक्ष्णुतेऽसिम् ॥

तलवार को पैना करता है । सम् पूर्वक क्ष्णुधातुसे आत्मनेपद हो ॥ ६४ ॥

भुजोऽनवने ॥ ६५ ॥

भुजः, अ०ने । अपालने वर्त्तमानाद् भुजेरात्मनेपदंस्यात् । यथा—मोदकान् भुङ्क्तेअभ्यवहरतीत्यर्थः । वृद्धोजनोदुःखशतानिभुङ्क्ते ॥

लड्डूखाताहै । बूढ़ाआदमी सैकड़ों दुःखउठाताहै । अनवन (भोजनसेभिन्न) अर्थ में भुजधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ६५ ॥

णेरणौयत्कर्मणौचेत्सकर्त्ताऽनाध्याने ६६

णेः, अणौ, यत्, कर्म, णौ, चेत्, सः, कर्त्ता, अ०ने । अणौ यत्कर्मणौ चेत्तदेवकर्म,सएवकर्त्तातर्हि ण्यन्ताद्धातोरनाध्यानेऽर्थेआत्मनेपदंस्यात् । यथा—आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः-आरोहयते हस्ती-स्वयमेव । प्रजाःपश्यन्तिराजानम्-दर्शयतेराजास्वयमेव ॥

फीलवानहाथीपर चढ़तेहैं-हाथीअपने आप चढ़वालेताहै॥ प्रजाराजाको देखतीहै—राजाअपने आपही दिखलाताहै । अनाध्यान (चिन्तार्थभिन्न) अर्थ में अण्यन्तअवस्थामें जो कर्म वही ण्यन्त में कर्म तथाकर्त्ताहोतोण्यन्तधातुसेआत्मनेपदहो ॥६६॥

भीस्म्योर्हेतुभये ॥ ६७ ॥

भीस्म्योः, हे० ये । हेतुभयेऽर्थे बिभेतेःस्मयतेश्चण्यन्तादात्मनेपदं स्यात् । यथा—जटिलो भीषयते । मुण्डोविस्मापयते ॥

जटावाला डराता है । मुड़ियाविस्मयको प्राप्त कराता है । हेतुभय (किसी का-

१-(२।४।७२) इति शपोलुक् । २-(७।३।४०) इति षुक् ।३-(७।३।३६) इति पुगागमः

रण से भय) अर्थ में ण्यन्त भी और स्मिधातु से आत्मनेपद हो ॥ ६७ ॥

गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ॥ ६८ ॥

प्रतारणेऽर्थे गृधिवञ्चिभ्यां ण्यन्ताभ्यामात्मनेपदं स्यात् । यथा—माणवकं गर्धयते, वञ्चयते वा ॥

लड़के को ठगता है । प्रलम्भन (ठगना) अर्थ में वर्त्तमान ण्यन्त गृधि और वञ्चुधातु से आत्मनेपदहो ॥ ६९ ॥

लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च ६९

लियः, सं० योः, च । सम्माननेशालीनीकरणे प्रलम्भनेचार्थे-वर्त्तमानाद्ण्यन्ताल्लिय आत्मनेपदंस्यात् । यथा—जटाभिरालापयते । पूजां समधिगच्छतीत्यर्थः । श्येनोवर्त्तिकामुल्लापयते । न्यक्करोतीत्यर्थः । कस्त्वामुल्लापयते । विसंवादयतीत्यर्थः ॥

जटाओं से पूजित होता है । बाज बटेरको नीचे करता है । कौन तुझको ठगता है । सम्मानन (पूजा) शालीनीकरण (नीचे करना) और प्रलम्भन अर्थ में वर्त्तमान ण्यन्त ली धातु से आत्मनेपद हो ॥ ६९ ॥

मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे ॥ ७० ॥

मिं०त्, कृञः, अ०से । अभ्यासे वर्त्तमानान्मिथ्योपपदाद् ण्यन्तात् कृञ आत्मनेपदं स्यात् । यथा—पदंमिथ्याकारयते । स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः ॥

पदको झूठा कराताहै । अभ्यास अर्थ में मिथ्या हैं उपपद जिसके ऐसे ण्यन्त कृञ् धातु से आत्मनेपद हो ॥ ७० ॥

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ७१

कर्त्रभिप्राये क्रियाफले स्वरितेतो ञितश्च ये धातवस्तेभ्य आत्मनेपदं स्यात्। यथा—यजते, पचते। कुरुते, सुनुते॥

यजनकरता है, पकाताहै। करताहै. निकालताहै। यदि क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो स्वरितेत और ञित् धातुओं से आत्मनेपद हो॥ ७१॥

अपाद्वदः॥ ७२॥

कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽपपूर्वाद्वदतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा—न्यायमपवदते॥

न्यायके विरुद्ध बोलताहै। यदि क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो अपपूर्वक वद धातु से आत्मनेपद हो॥ ७२॥

णिचश्च॥ ७३॥

णिचः, च। कर्त्रभिप्रायेक्रियाफलेऽपपूर्वाद्वदतेरात्मनेपदं स्यात्। यथा—ओदनं पाचयते॥

भात को पकाताहै। क्रियाका फल कर्त्ता के लिये हो तो णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो॥ ७३॥

समुदाङ्भ्योयमोऽग्रन्थे॥ ७४॥

सं०भ्यः, यमः, अं०थे। ग्रन्थंविहायकर्त्रभिप्राये क्रियाफले सम् उद्, आङ् इत्येवंपूर्वाद्यमेरात्मनेपदंस्यात्। यथा—व्रीहीन्संयच्छते। भारमुद्यच्छते। वस्त्रमायच्छते॥

धानोंको इकट्ठाकरताहै। भारकोउतारताहै। वस्त्रकोफैलाताहै। ग्रन्थविषयको छोड़कर यदिक्रियाका फलकर्ताकेलिये होतो सम्, उद्, और आङ्पूर्वक यमधातुसे आत्मनेपदहो॥ ७६॥

अनुपसर्गाज्ज्ञः॥ ७५॥

अ०र्ग, ज्ञः। कर्त्रभिप्राये क्रियाफलेऽनुपसर्गाज्जानातेरात्मनेपदं-

स्यात् । यथा—गांजानीते । कथंतर्हिभट्टिः । इत्थंनृपः पूर्वमवालुलोचे ततोऽनुजज्ञेगमनंसुतस्येति । कर्मणिलिट् । नृपेणेतिविपरिणामः ॥

वाणी अथवा गौको जानता है । यदि क्रियाकाफलकर्त्ताके लिये होतो उपसर्गरहित ज्ञाधातुसे आत्मनेपदहो ॥ ७५ ॥

विभाषोपपदेनप्रतीयमाने ॥ ७६ ॥

वि०षा, उ०नं, प्र०ने । स्वरितञितइत्यादि पञ्चसूत्र्यायदात्मनेपदंविहितं तत्समीपोच्चारितेनपदेन क्रियाफलस्यकर्तृगामित्वेद्योतितेवास्यात् । यथा—स्वंयज्ञंयजते, यजतिवा । स्वपुत्रमपवदते, अपवदतिवा । स्वमोदनंपाचयते, पाचयतिवा । स्वान्व्रीहीन् संयच्छते,संयच्छतिवा । स्वां, गांजानीते, जानातिवा ॥

क्रियाकाफल कर्त्ताको उपपदसे प्रतीतहोतो पूर्वोक्त पांचसूत्रा में विकल्प से आत्मनेपदहो ॥ ७६ ॥

शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ ७७ ॥

कर्त्तरिशेषधातुभ्यः परस्मैपदं स्यात् । यथा—याति । वाति ॥

जाता है । चलता है । शेष (आत्मनेपद से भिन्न) धातुओं से कर्त्ता में परस्मैपदहो ॥

अनुपराभ्यां कृञः ॥ ७८ ॥

अनुपरापूर्वात् करोतेः परस्मैपदं स्यात् । यथा—अनुकरोति । पराकरोति ॥

नकल करता है । उलटा करता है । अनु और परापूर्वक कृञ् धातु से परस्मैपद हो ॥

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ ७९ ॥

अं० भ्यः, क्षिपः । अभि, प्रति, अति, इत्येवं पूर्वात् क्षिपेः परस्मै-

पदं स्यात् । यथा—अभिक्षिपति । प्रतिक्षिपति । अतिक्षिपति ॥

इधर उधर फेंकता है । फेंकता है । बहुत फेंकता है । अभि, प्रति और अतिपूर्वक क्षिप धातु से परस्मैपद हो ॥ ७९ ॥

प्राद् वहः ॥ ८० ॥

प्रपूर्वाद्वहतेः परस्मैपदं स्यात् । यथा—प्रवहति ॥

निकलता है । प्रपूर्वक वह धातु से परस्मैपद हो ॥ ८० ॥

परेर्मृषः ॥ ८१ ॥

परेः, मृषः । परिपूर्वाद्मृष्यतेः परस्मैपदं स्यात् । यथा—परिमृष्यति ॥

सम्यक् सहता है । परिपूर्वक मृष् धातु से परस्मैपद हो ॥ ८१ ॥

व्याङ्परिभ्योरमः ॥ ८२ ॥

व्यां०भ्यः, रमः । वि, आङ्, परि, इत्येवं पूर्वाद्रमतेः परस्मैपदं स्यात् । यथा—विरमति । आरमति । परिरमति ॥

ठहरताहै (रुकताहै) । खेलताहै । चारोंओर से खेलताहै । वि, आङ् और परि पूर्वक रमु धातु से परस्मैपद हो ॥ ८२ ॥

उपाच्च ॥ ८३ ॥

उपात्, च । उपपूर्वाद् रमतेः परस्मैपदं स्यात् । यथा—सोमदत्त-मुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ॥

ठहराताहै । उपपूर्वक रमु धातुसे परस्मैपद हो ॥ ८३ ॥

विभाषाऽकर्मकात् ॥ ८४ ॥

उपपूर्वाद्रमतेरकर्मकात् परस्मैपदं वा स्यात् । यथा--उपरमते, उपरमति वा । निवर्त्तते इत्यर्थः ॥

लौटताहै । उपपूर्वक अकर्मक रम धातु से विकल्प करके परस्मैपद हो ॥ ८५ ॥

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्योणेः ॥८६॥

बु०भ्यः, णेः । एभ्यो णयन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात् । यथा--बोधयति शास्त्रम् । योधयति काष्ठानि । नाशयति दुःखम् । जनयति सुखम् । अध्यापयति वेदम् । प्रावयति । प्रापयतीत्यर्थः । द्रावयति । विलापयतीत्यर्थः । स्रावयति । स्यन्दयतीत्यर्थः ॥

शास्त्रको बतलाताहै । लकड़ींचीरताहै । दुःखकोदूरकरताहै । सुखकोपैदाकरताहै । वेदकोपढ़ाताहै । पहुंचाताहै । विलापकराताहै । चुआताहै । बुध, युध, नश, जन, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु इनण्यन्तधातुओंसे परस्मैपदहो ॥ ८५॥

निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ ८६ ॥

नि०भ्यः, च अ । णयन्तनिगरणार्थेभ्यश्चलनार्थेभ्यश्चपरस्मैपदं स्यात् । यथा-निगारयति, आशयति, भोजयति । चलयति, कम्पयति ॥ (आदेः प्रतिषेधः) । आदयतेयज्ञदत्तेन ॥

खिलाताहै । कम्पाताहै । निगरण (निगलना) और चलनार्थ ण्यन्तधातुओंसे परस्मैपदहो ॥ ८६ ॥

अणावकर्म्मकाच्चित्तवत्कर्त्तृकात् ॥८८॥

अँणौ, अ०तॄ । चि०तॄ । अणयन्तो योधातुरकर्मकश्चित्तवत्कर्त्तृकस्तस्माद् णयन्तात्परस्मैपदंस्यात् । यथा-शेतेबालकस्तंमाताशाययति । आस्ते चैत्रस्तंमैत्रआसयति ॥

बालककोमाता सुलातीहै । मैत्र चैत्रकोबिठलाताहै । अण्यन्त अवस्थामें अकर्मक चेतनकर्त्तावाले ण्यन्तधातुसे परस्मैपदहो ॥ ८७ ॥

न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः ॥ ८८ ॥

एभ्यो णयन्तेभ्यः परस्मैपदं न स्यात् । यथा--पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्त्तयते । वादयते । वासयते (धेट उपसङ्ख्यानम्) । यथा--धापयेते शिशुमेकं समीची ॥

पिलाता है । रोकता है । फैलाता है । फिंकवाता है । मोह कराता है । पसन्द कराता है । नचाता है । कहलाता है । बसाता है । पा, दमि, आङ्+यम, आङ्+यस, परि+मुह, रुचि, नृति, वद, वस इन ण्यन्त धातुओं से परस्मैपद न हो ॥ ८८ ॥

वा क्यषः ॥ ८९ ॥

क्यषन्तात्परस्मैपदं वा स्यात् । यथा--लोहितायति, लोहितायते ॥

लाल होता है । क्यष् प्रत्यान्त धातु से विकल्प से परस्मैपद हो ॥ ८९ ॥

द्युद्भ्यो लुङि ॥ ९० ॥

द्युतादिभ्यो लुङि वा परस्मैपदं स्यात् । यथा--अद्युतत्, अद्योतिष्ट ॥

प्रकाशित हुआ । द्युतादि गणपठित धातुओं से विकल्प करके परस्मैपद हो ॥ ९० ॥

वृद्भ्यः स्यसनोः ॥ ९१ ॥

वृतादिभ्यः परस्मैपदं वा स्यात् स्ये सनि च परे । यथा-वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते । विवृत्सति, विवर्त्तिषते ॥

वर्त्ताव करेगा । वर्त्ताव करना चाहता है । वृतु आदि धातुओं से स्य सन् विषय में विकल्प से परस्मैपद हो ॥ ९२ ॥

लुटि च क्लृपः ॥ ९२ ॥

१-(७ । ३ । ३७) इतियुक् । २-अलोहितोलोहितो भवतीत्यत्रार्थे क्यष्, अकृत् सार्वधातुकयोरितिदीर्घः ।

लुटि स्य सनोश्च क्लृपेः परस्मैपदं वास्यात्। यथा—कल्प्तासि, कल्पितासे। कल्प्स्यति, कल्पिष्यते, कल्प्स्यते, चिक्लृप्सति, चिकल्पिषते, चिक्लृप्सते ॥

लुट्लकार स्य और सनप्रत्ययकेविषयमेंक्लृपधातुसेविकल्पसेपरस्मैपदहो ॥९२॥

इतिप्रथमाऽध्यायस्यतृतीयःपादः ॥

अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादारम्भः ॥

आकडारादेका सञ्ज्ञा ॥१॥

आ, कडारात्, एका, सञ्ज्ञा। इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव सञ्ज्ञा स्यात्। यापरानवकाशाच ॥

कडाराः कर्मधारये, इससूत्रपर्यन्त एक की एकही सञ्ज्ञा हो ॥ १ ॥

विप्रतिषेधे परं कार्य्यम् ॥ २ ॥

तुल्यबलविरोधे परंकार्य्यं स्यात्। यथा—वृक्षेभ्यः ॥

वृक्षों के लिये। विप्रतिषेध (तुल्यबलविरोध) में परको कार्य्य हो ॥ २ ॥

यू स्त्र्याख्यौ नदी ॥ ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसञ्ज्ञकौस्याताम्। यथा--कुमारी।बधूः ॥

बहू। स्त्रीलिङ्गवाचक ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द नदीसंज्ञक हों ॥ ॥ ३ ॥

नेयङुवङ्स्थानावस्त्री ॥ ४ ॥

न, इयङुवङ्स्थानौ, अस्त्री। इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौनदी

१-(७। २। ५९)। इतीट्। २-(७। २। ६०) इतिनेट्।

सञ्ज्ञकौ न स्याताम्, स्त्रीशब्दं विहाय। यथा—हे श्रीः!। हे भ्रूः!॥

हेशोभा। हे भौंह स्त्रीशब्द को छोड़कर स्त्रीलिङ्गवाचक इयङ् उवङ् स्थानी ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द नदीसंज्ञक न हों॥ ४॥

वामि॥ ५॥

वा, आमि। स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—श्रीणाम्, श्रियाम्। भ्रूणाम्, भ्रुवाम्॥

स्त्रीशब्दको छोड़कर इयङ् उवङ् स्थानी ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाचक शब्द आम्परेहो तो विकल्प से नदीसंज्ञकहों॥ ५॥

ङितिह्रस्वश्च॥ ६॥

ङिति, ह्रस्वः, च। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञकौ स्यातां ङिति सुपिपरे। यथा—मत्यै, मतये। धेन्वै, धेनवे। श्रियै, श्रिये। भ्रुवै, भ्रुवे॥

बुद्धि के लिये। गायके लिये। शोभा के लिये। भौंहके लिये। स्त्रीशब्द को छोड़कर इयङ् उवङ् स्थानी दीर्घ और ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिङ्गवाचक शब्द ङित् विभक्ति परे हों तो विकल्प से नदीसंज्ञक हों॥ ६॥

शेषो घ्यसखि॥ ७॥

शेषः, घि, असखि। सखिशब्दं विहाय ह्रस्वाविवर्णोवर्णौ घि सञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—अग्नये। भानवे। कृतये। धेनवे॥

अग्निकेलिये। सूर्य्यके लिये। कार्यके लिये। सखि शब्द को छोड़कर शेष इकारान्त और उकारान्त शब्द घिसंज्ञक हों॥ ७॥

पतिः* समास एव॥ ८॥

* नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबेऽथ पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ अत्र निरंकुशाः कवयः॥

पतिः, समासे, एव । पतिशब्दः समास एव घिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—प्रजापतये ॥

परमात्माके लिये । पति शब्द समास ही में घिसंज्ञक हो ॥ ८ ॥

षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ॥ ९ ॥

ष०क्तः, छन्दसि, वा । षष्ठ्यन्तेनयुक्तः पतिशब्दश्छन्दसिघिसंज्ञकोवास्यात् । यथा—कुलुञ्चानां पतये नमः, पत्ये वा ॥

डांकुओं के मालिक का सत्कार । षष्ठीयुक्तपतिशब्द छन्दोविषय में विकल्प से घिसंज्ञक हो ॥ ९ ॥

ह्रस्वं लघु ॥ १० ॥

ह्रस्वमक्षरं लघु सञ्ज्ञकं स्यात् ॥

ह्रस्व अक्षर लघुसंज्ञक हो ॥ १० ॥

संयोगे गुरु ॥ ११ ॥

संयोगेपरे ह्रस्वमक्षरंगुरुसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—शिक्षा । विप्रः ॥

संयोग परे हो तो ह्रस्व अक्षर गुरु संज्ञक हो ॥ ११ ॥

दीर्घं च ॥ १२ ॥

दीर्घञ्चाक्षरङ्गुरुसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—ईहाञ्चक्रे ॥

चेष्टा की । दीर्घ अक्षर भी गुरु संज्ञक हो ॥ १२ ॥

यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ॥ १३ ॥

यस्माद्यः प्रत्ययः क्रियते तदादिशब्दरूपं तस्मिन् प्रत्यये परेऽङ्ग-

सञ्ज्ञं स्यात् । यथा--कर्त्ता । करिष्यति । औपगवः ॥

जिस प्रकृति (धातु या प्रातिपदिक) से प्रत्यय विधान किया जावे उसप्रकृति प्रत्यय की अङ्गसंज्ञा हो ॥ १३ ॥

सुप्तिङन्तम् पदम् ॥ १४ ॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--ब्राह्मणाः पठन्ति ॥

ब्राह्मणपढते हैं । सुबन्त और तिङन्त पदसञ्ज्ञक हो ।. १४ ॥

नः क्ये ॥ १५ ॥

क्यचि, क्यङि, क्यषि च नान्तमेव पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--राजीयति[2] । राजायते[3] । चर्म्मायते, चर्म्मायति ॥

राजाके समान आचरण करता है । चर्मके सदृश होताहै । क्य प्रत्यय परे हो तो नान्त सुबन्त पदसंज्ञक हो ॥ १५ ॥

सिति च ॥ १६ ॥

सितिपरे पूर्वं पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--भवदीयम्[4] ॥

आपका । सित्प्रत्यय परे हो तो पूर्व की पदसंज्ञा हो ॥ १६ ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने ॥ १७ ॥

स्वादिषु, असर्वनामस्थाने । कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनाम स्थानेषु परेपूर्वं पदसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--राजभ्याम् । राजभिः । राजत्वम् । राजता । राजतरः । राजतमः ॥

सर्वनामस्थान वर्जित कप् (५ । ४ । १५१) प्रत्ययपर्यन्त स्वादि प्रत्यय परे हो तो पूर्वकी पदसंज्ञा हो ॥ १७ ॥

१—कर्त्तरिलुट् । २—(८ । २ । ७) इति नलोपः । (७ । ४ । ३३) इतीत्वम् । ३--(७ । ४ । २५) इस्यात्वम् । ४—(४ । २ । ११४) इतिछः । (८ । २ ३९) इति जश्त्वम् ।

यचिँ भम् ॥१८॥

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिषु सर्वनामस्थानेषु परेषु पूर्वं भसञ्ज्ञं स्यात् । यथा–गार्ग्यः । दाशरथिः ॥

दशरथका पुत्र । सर्वनामस्थान वर्जित यकारादि अजादि स्वादि प्रत्यय परे हों तो पूर्वकी भसञ्ज्ञा हो ॥ १८ ॥

तसौ मत्वर्थे ॥१९॥

तान्तसान्तौ भसञ्ज्ञकौ स्यातां मत्वर्थप्रत्यये परे । यथा--उदश्वित्वान्घोषः । यशस्वीपुमान् ॥

मट्ठेवाला आभीरका झोंपड़ा । यशवाला पुरुष । मत्वर्थ प्रत्यय परे हों तो तकारान्त और सकारान्त शब्द भसञ्ज्ञक हों ॥ १९ ॥

अयस्मयादीनि छन्दसि ॥ २० ॥

अयस्मयादीनि शब्दरूपाणि छन्दसि विषये निपात्यन्ते । यथा-- अयस्मयं वर्म । ससुष्टुभासऋक्वतागणेन । पदत्वात्कुत्वं भवत्वाज् जश्त्वं न भवति ॥

छन्द विषय में अयस्मयादि शब्द निपातित हैं ॥ २० ॥

बहुषु बहुवचनम् ॥ २१ ॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् । यथा--बाला अधीयते ॥

लड़के पढ़ते हैं । दो से अधिक के प्रयोग में बहुवचन हो ॥२१॥

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ॥ २२ ॥

द्व्येकयोः, द्वि॰ ने॰। द्वित्वैकत्वयोरिमे स्याताम् । यथा--बालौ पठतः। बालः पठति ॥

दोके कथन में दोवचन और एकके कथन में एकवचन हो ॥ २२ ॥

कारके ॥ २३ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहांसे आगे पचपनसूत्रतक कारकका अधिकार है ॥ २३ ॥

ध्रुवमपायेऽपादानम् ॥ २४ ॥

ध्रुवम्, अपाये, अपादानम् । अपाये यद्ध्रुवं तत्कारकमपादान सञ्ज्ञं स्यात् । यथा-ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात्पतति ॥

गांवसे आता है। दौड़ते हुये घोड़ेसे गिरता है। अपाय (वियोग) में जो ध्रुव (स्थिर) कारक है वह अपादानसंज्ञकहो ॥ २४ ॥

भीत्रार्थानांभयहेतुः ॥ २५ ॥

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात् । यथा-चौराद् बिभेति । पापात्त्रायते ॥

चोरसे डरता है। पापसेबचताहै। भयार्थ और रक्षार्थ धातुओंके प्रयोगमें भयहेतु कारक अपादानसंज्ञकहो ॥ २५ ॥

पराजेरसोढः ॥ २६ ॥

पराजेः, असोढः। परापूर्वस्य जयतेरसोढकारकमपादानसञ्ज्ञंस्यात्। यथा-अध्ययनात् पराजयते ॥

पढ़नेसे भागता है। परापूर्वक जि धातुके प्रयोगमें असोढ़ (जिसकोनहींसहसक्ता) कारक अपादानसंज्ञकहो ॥ २६ ॥

* अपाये यदुदासीनं चलंवा यदिवाचलम् । ध्रुवमेवातदावेशात्तदपादानमुच्यते ॥ १--[२. ३. २८]

इतिपञ्चमी ।

वारणार्थानामीप्सितः ॥ २७ ॥

वारणार्थानाम्, ईप्सितः । वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽर्थोऽपादानसञ्ज्ञंस्यात् । यथा--यवेभ्यःक्षेत्रे गावारयति ॥

खेतमें जौ से गौओं को हटाता है । वारणार्थ (हटाना) धातुओं के प्रयोग में ईप्सित (चाहाहुआ) अर्थवाला कारक अपादान संज्ञक हो ॥ २७ ॥

अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ २८ ॥

अन्तर्धौ, येन, अदर्शनम्, इच्छति । अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति तत्कारकमपादान सञ्ज्ञंस्यात् । यथा-अध्यापकान्निलीयतेबालः॥

बालकअध्यापकसेछिपताहै । छिपने में जिससे अदर्शन की इच्छा हो वह कारक अपादान संज्ञक हो ॥ २८ ॥

आख्यातोपयोगे ॥ २९ ॥

आख्याता, उपयोगे । नियमपूर्वक विद्यास्वीकारे वक्ताऽपादान सञ्ज्ञः स्यात् । यथा--उपाध्यायादधीते ॥

अध्यापकसे पढ़ता है । उपयोग (नियमपूर्वक पढ़ना) में आख्याता (अध्यापक) कारक अपादान संज्ञक हो ॥ २९ ॥

जनिकर्त्तुः प्रकृतिः ॥ ३० ॥

जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात् । यथा—काष्ठादग्निर्जायते ॥

काष्ठसे अग्नि पैदा होता है । जन धातु के कर्त्ता की जो प्रकृति (उपादान) है वह कारक अपादानसंज्ञक हो ॥ ३० ॥

भुवः प्रभवः ॥३१॥

भूकर्त्तुः प्रभवोऽपादानसञ्ज्ञः स्यात्।यथा—हिमवतो गङ्गाप्रभवति।। हिमालय (पर्वत) से गङ्गा निकलती है । भू धातु के कर्त्ता का प्रभव (उत्पत्ति स्थान) कारक अपादानसंज्ञकहो ॥ ३१ ॥

कर्मणा यमभिप्रैति स* सम्प्रदानम् ॥ ३२॥

कर्मणा, यम्, अभिप्रैति, सः, सम्प्रदानम् । दानस्यकर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा--छात्रायपुस्तकं ददाति (क्रिययायमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्) यथा--पत्येशेते ॥ (कर्मणः करणसञ्ज्ञा, सम्प्रदानस्य च कर्मसञ्ज्ञा वाच्या) घृतेन इन्द्राय यजते । घृतमिंद्राय ददातीत्यर्थः

विद्यार्थी के लिये पुस्तक है । कर्त्ता कर्म जिसको देने का अभिप्राय करे वह कारक सम्प्रदान संज्ञक हो ॥ ३२ ॥

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥ ३३ ॥

रुच्यर्थाना धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानसञ्ज्ञःस्यात् । यथा--रोचन्तेचैत्रायमोदकाः ॥

चैत्र को लड्डू अच्छेलगते हैं । रुचि अर्थवाले धातुओं के प्रयोग में जो प्रीयमाण (तृप्त होनेवाला) है वह कारक सम्प्रदान संज्ञक हो ॥ ३३ ॥

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥३४॥

* अनिराकरणात् कर्तुस्त्या गाङ्गं कर्मणेप्सितम् । प्रेरणानुमितिभ्यां वा लभते सम्प्रदानताम् ॥ १-(२ । ३ । १३) इति चतुर्थी ॥

एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टस्सम्प्रदानसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—यज्ञदत्ताय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा ॥

यज्ञदत्तको जताने के लिये प्रशंसा, दूर, स्थित और गाली देता है । श्लाघ, ह्नु स्था धातु और शपधातुके प्रयोगमें ज्ञीप्समान (जिसको जनानाचाहैं) कारक संप्रदान संज्ञकहो ॥ ३४ ॥

धारेरुत्तमर्णः ॥ ३५ ॥

धारेः, उत्तमर्णः । धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्णः सम्प्रदानसंज्ञःस्यात् । यथा—देवदत्तोयज्ञदत्ताय शतम्मुद्राधारयति ॥

देवदत्त यज्ञदत्तका सौ रुपयेसेऋणीहै । धारिधातुके प्रयोगमें उत्तमर्ण (ऋणदाता) कारकसंप्रदान संज्ञकहो ॥ ३५ ॥

स्पृहेरीप्सितः ॥ ३६ ॥

स्पृहेः, ईप्सितः । स्पृहेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—पुष्पेभ्यः स्पृहयति ॥

पुष्पोंको चाहताहै ॥ स्पृहि धातुके प्रयोगमें ईप्सित (जिसको लेनाचाहे) कारक सम्प्रदानसंज्ञकहो ॥ ३६ ॥

क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानांयंप्रतिकोपः ३७

क्रुधाद्यर्थानांप्रयोगे यं प्रतिकोपः ससम्प्रदानसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—दस्यवे क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति ॥

दस्यु (चोर, शत्रु) के लिये क्रोध, द्रोह, अक्षमा निन्दाकरता है । क्रुधार्थ, द्रुहार्थ, ईर्ष्यार्थ और असूयार्थ धातुओंके प्रयोगमें जिसके प्रति कोपहो वह कारक सम्प्रदान संज्ञकहो ॥ ३७ ॥

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोःकर्म्म ॥ ३८ ॥

क्रुधद्रुहोः, उपसृष्टयोः, कर्म । सोपसर्गयोरनयोर्यं प्रतिकोपस्तत्कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-यज्ञदत्तमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति ॥

यज्ञदत्तपरक्रोध, द्रोहकरताहै । उपसर्गयुक्त क्रुध और द्रुहधातुके प्रयोगमें जिसके प्रति कोपहो वह कारक कर्मसंज्ञकहो ॥

राधीक्ष्योर्यस्यविप्रश्नः ॥ ३९ ॥

राधीक्ष्योः, यस्य, विप्रश्नः । एतयोः कारकंसम्प्रदानं स्यात्, यदीयोविविधः प्रश्नः क्रियते । यथा-देवदत्तायराध्यति, ईक्षतेवा, पृष्टःसन् शुभाशुभं विज्ञापयतीत्यर्थः ॥

राधि और ईक्षधातुके प्रयोगमें जिसका विविधप्रश्नहो वह कारक सम्प्रदान संज्ञकहो ॥ ३९ ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता ॥ ४० ॥

आभ्यां परस्य शृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्त्तनरूपव्यापारस्य कर्त्ता सम्प्रदानं स्यात् । यथा-विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा । विप्रेण मह्यंदेहीति प्रवर्त्तितः प्रतिजानीत इत्यर्थः ॥

प्रति और आङ्पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में जो पूर्व का कर्त्ता वह कारक सम्प्रदानसंज्ञक हो ॥ ४० ॥

अनुप्रतिगृणश्च ॥ ४१ ॥

अ० गृणः, च । आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतं सम्प्रदानसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-होत्रेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति । होता प्रथमं शंसति, तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः ॥

अनु और प्रतिपूर्वक शब्दार्थ गृ धातु के प्रयोग में जो पूर्व (प्रस्ताव करते समय) का कर्त्ता वह कारक सम्प्रदानसञ्ज्ञक हो ॥ ४१ ॥

साधकतमं करणम् ॥ ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसञ्ज्ञं स्यात्। यथा-असिना हन्ति । लोचनाभ्यां पश्यति ॥

तलवारसे मारता है । आंखों से देखता है । क्रियाका जो साधकतम कारक वह करणसञ्ज्ञक हो ॥ ४२ ॥

दिवः कर्म्म च ॥ ४३ ॥

दिवस्साधकतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्याच्चात्करणसञ्ज्ञं च। यथा-अक्षै रक्षान् वा दीव्यति॥

पासों से खेलता है। दिव धातु का साधकतम कारक कर्म और करणसंज्ञक हो ४३

परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्॥४४॥

नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्। तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदानसञ्ज्ञं वा स्यात् । यथा--शतेन, शताय वा, परिक्रीतः॥

परिपूर्वक क्री धातु के प्रयोग में साधकतम कारक विकल्प से सम्प्रदानसञ्ज्ञकहो ४४

आधारोऽधिकरणम् ॥ ४५ ॥

कर्त्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसञ्ज्ञं स्यात्। यथा--भूमौ शेते । स्थाल्यां पचति ॥

भूमिपर सोता है। बटलोई में पकाता है। क्रियाका आधार कारक अधिकरणसंज्ञक हो ॥ ४५ ॥

अधिशीङ्स्थासां कर्म्म ॥ ४६ ॥

* क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम् । विवक्ष्यते यदा तत्र करणत्वं तदा स्मृतम् ॥ १-(२ । ३ ११) इति तृ० ।

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्मसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा--अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा शैलम् ॥

सोता है। स्थित होता है, बैठता है पहाड़पर। अधिपूर्वक शीङ् स्था और अस धातु का आधार कारक कर्मसञ्ज्ञक हो ॥ ४६ ॥

अभिनिविशश्च ॥ ४७ ॥

अभिनिविशः, च। अभिनीत्येतत् सङ्घातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्मसञ्ज्ञः स्यात्। यथा--अभिनिविशते सन्मार्गम्। परिक्रयणे सम्प्रदानमिति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्याऽन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न-कल्याणेऽभिनिवेशः ॥

अच्छे मार्गपर चलता है। अभि नि पूर्वक विश धातु का आधार कारक कर्मसञ्ज्ञक हो ॥

उपान्वध्याङ्वसः ॥ ४८ ॥

उपादिपूर्वस्यवसतेराधारःकर्मसञ्ज्ञःस्यात् । यथा--उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा पापी दुःखम् (अभुक्तयर्थस्य न) वने उपवसति ॥

पापी दुःख में रहता है। उप, अनु, अधि और आङ्पूर्वक वस धातु का आधार कारक कर्मसञ्ज्ञक हो ॥ ४८ ॥

कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म ॥ ४९ ॥

कर्त्तुः, ईप्सिततमम्, कर्म। कर्त्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञंस्यात्। यथा--ग्रामञ्जिगमिषति ॥

गांवको जानना चाहता है। क्रिया द्वारा कर्त्ता का ईप्सित (अत्यन्त इष्ट) कारक कर्मसंज्ञक हो ॥ ४९ ॥

तथायुक्तं चाऽनीप्सितम् ॥ ५० ॥

कर्त्तुः क्रियया यदनीप्सिततमं तत्कारकमपि कर्मसञ्ज्ञंस्यात् । यथा-ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति । विषंखादति मूढधीः ॥

गांवको जाता हुआ तृणों को छूता है । मूर्ख विष खाता है । क्रिया द्वारा कर्त्ता का अनीप्सित (जिसकी इच्छा न हो) कारक भी कर्मसंज्ञक हो ॥ ५० ॥

*अकथितं च ॥ ५१ ॥

अकथितं च यत्कारकं तत्कर्मसञ्ज्ञं स्यात् । यथा-परिगणन-मत्राक्रियते । दुहि याचि रुधि प्रच्छि भिक्षि चिञामुपयोगनिमित्तम-पूर्वविधौ । ब्रुविशासि गुणेन च यत्सचते तदकीर्त्तितमाचरितं कविना । यथा-गांदोग्धि पयः । नृपतिं भूमिं याचते । व्रजमवरुणद्धि गाम् । अश्वारोहं मार्गं पृच्छति । ग्राम्यं नरं गांभिक्षते । वृक्षमव-चिनोति फलानि । धार्म्मिकान् धर्म्मं ब्रूते, शास्तिवा ॥

गौ का दूध दुहा है । राजा से भूमि मांगता है । गौ को गोशाला में रोकता है । सवार से मार्ग पूछताहै । गांव के पुरुष से गौ को मागता है । वृक्षके फलों को बीनता है । धर्म्मात्माओं को धर्मकी शिक्षा करता है । अकथित (जिसके वास्ते कि कोई विधान न हो) कारक कर्मसंज्ञक हो ॥ ५१ ॥

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्म-काणामणि कर्त्ता सणौ ॥५२॥

ग०काणाम्, अणि,कर्त्ता,सः, णौ । गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मकाणा-मकर्मकाणां चाणौ यःकर्त्तासणौ कर्मस्यात् । यथा-भृत्यंग्रामंगम-यति । धार्मिकं धर्म्मं बोधयति । बालान्मोदकान्भोजयति । यज्ञ-

* अप्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम् । अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्त्तुश्चकर्मणः ॥

दत्तं वेदमध्यापयति । देवदत्तमासयति। (नीवह्योर्न) ॥ नाययति, वाहयतिवा, भारंभृत्येन ॥ (नियन्तृकर्तृकस्यवहेरनिषेधः) ॥ वाहयति रथंवाहान्सूतः ॥ (आदिखाद्योर्न) ॥ आदयति, खादयति वान्नंऽबटुना॥ (भक्षेरहिंसार्थस्यन) भक्षयतिबटुनाऽन्नम् ॥ (जल्पतिप्रभृतीनामुपसङ्ख्यानम्) ॥ जल्पयति, भाषयतिधर्म्मंपुत्रंदेवदत्तः ॥

नौकरको गांवकोभेजताहै ॥ धर्म्मात्माको धर्मबतलाताहै । लड़कोंको लड्डू खिलाताहै । यज्ञदत्तको वेदपढ़ाताहै । देवदत्तको बैठाताहै । गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक (भोजन) शब्दकर्मक और अकर्मकधातुओंका अण्यन्त अवस्थाका जोकर्त्ता वह ण्यन्तअवस्थामें कर्मसंज्ञकहो ॥ ९२ ॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥

हृक्रोः;अन्यतरस्याम् । हृक्रोरणौयःकर्त्ता सणौवाकर्म स्यात् । यथा-हारयति, कारयतिवा भृत्येन भृत्यं वाकटम् । (अभिवादिदृशोरात्मनेपदेवेतिवाच्यम्) ॥ अभिवादयते गुरुंदेवदत्तः, देवदत्तेनवा । दर्शयतेप्रभुंभक्तंभक्तेनवा ॥

नौकरसे चटाई लिवाजाताहै । बनवाताहै । हृ और कृधातुका अण्यन्त अवस्थाका कर्त्ता ण्यन्त अवस्थामें विकल्पसे कर्मसंज्ञकहो ॥ ५३ ॥

स्वतन्त्रः कर्त्ता ॥ ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्तृसञ्ज्ञः स्यात् । यथा-देवदत्तः पचति ॥

क्रिया में कथित स्वतन्त्र कारक कर्त्तासंज्ञक हो ॥ ५४ ॥

तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ५५ ॥

तत्प्रयोजकः, हेतुः, च । कर्त्तुः प्रयोजको हेतुसञ्ज्ञः कर्त्तृसञ्ज्ञश्च स्यात् । यथा—भवतीति भवन्, भवन्तं प्रेरयति-भावयति ॥

स्वतन्त्र कर्त्ता का जो प्रयोजक (प्रेरक) वह कारक हेतु और कर्त्तृसञ्ज्ञक हों ॥

प्रागीश्वरान्निपाताः ॥ ५६ ॥

प्राक्, ईश्वरात्, निपाताः । अधिरीश्वरेसूत्रमिति वक्ष्यति तदवधेर्निपाताऽधिकारोविज्ञेयः ॥

अधिरीश्वरे सूत्र तक निपातका अधिकार जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

चादयोऽसत्वे ॥ ५७ ॥

अद्रव्यार्थाश्चादयोनिपातसञ्ज्ञकाः स्युः । चादयः स्वरादिगणे पठ्यन्ते ॥

असत्व (अद्रव्य) के वाचक च आदि निपातसञ्ज्ञक हों ॥ ५७ ॥

प्रादयः ॥ ५८ ॥

अद्रव्यार्थाः प्रादयोनिपातसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, निस्, दुर्, दुस्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप । इमे प्रादयो विज्ञेयाः ॥

अद्रव्य वाचक प्र आदि निपातसंज्ञक हों ॥ ५८ ॥

उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ५९ ॥

प्रादयः[×] क्रियायोगे उपसर्गसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—प्रणयति ॥

बनाता है । क्रिया के योग में प्र आदि उपसर्गसंज्ञक हों ॥ ५९ ॥

१-(८ । ४ । १४) इति णत्वम् ।

गतिश्च ॥ ६० ॥

गतिः, च । प्रादयः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकाश्च स्युः । यथा-प्रकृत्य, प्रकृतम् । आरभ्य, अधिकृतम् ॥

क्रिया के योग में प्र आदि गतिसंज्ञक भी हो ॥ ६० ॥

ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥ ६१ ॥

ऊ० डाचः,च । इमे क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-ऊरीकृत्य, उररीकृत्य। शुक्लीकृत्य[2]। पटपटाकृत्य (कारिकाशब्दस्योपसङ्ख्यानम्) कारिका--क्रिया । कारिका कृत्य ॥

स्वीकार करके । सफ़ेद करके । पटपटकरके । ऊरी आदिशब्दच्विप्रत्ययान्त और डाच्प्रत्ययान्त क्रियाके योग में गतिसंज्ञक हों ॥ ६१ ॥

अनुकरणं चाऽनितिपरम् ॥ ६२ ॥

अनितिपरमनुकरणं क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञं स्यात् । यथा--खाट्कृत्य ॥

खखारकर । इतिशब्द जिससे परे न हो ऐसा अनुकरण क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हो ॥ ६२ ॥

आदरानादरयोः सदसती ॥ ६३ ॥

क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा-सत्कृत्य । असत्कृत्य॥

आदर करके । अनादर करके । आदर और अनादर अर्थ में सत् और असत् शब्द क्रिया के योग में गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ६३ ॥

१-(७ । १ । ३७) इति ल्यप् २-(७ । ४ । ३२) इतिईत्वम् ।

भूषणेऽलम् ॥ ६४ ॥

भूषणेयोऽलंशब्दः,स क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अलंकृत्य ॥

सजाकर । क्रिया के योग में भूषण अर्थ होने पर अलं शब्द गतिसंज्ञक हो ॥६४॥

अन्तरपरिग्रहे ॥ ६५ ॥

अन्तर, अपरिग्रहे। अन्तः शब्दोऽपरिग्रहेऽर्थे गतिसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अन्तर्हत्य। मध्ये हत्वेत्यर्थः ॥

अपरिग्रह (अस्वीकार) अर्थमें अन्तर शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हो ॥६५॥

कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते ॥ ६६ ॥

इमौ श्रद्धाप्रतीघातेगतिसञ्ज्ञकौस्याताम् । यथा—कणेहत्य पयःपिबति । अतिशयेनाभिलष्य । मनोहत्य पयः पिबति ॥

मन भरके दूध पीता है । कणे और मनस् शब्द श्रद्धाके प्रतीघात (अभिलाषानिवृत्ति) अर्थमें गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ६६ ॥

पुरोऽव्ययम् ॥ ६७ ॥

पुरस्, अव्ययम्। अव्ययं पुरस् शब्दः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा--पुरस्कृत्य । पूर्वस्मिन् देशे कृत्वेत्यर्थः ॥

आगे करके । क्रियाके योगमें पुरस् अव्यय गतिसंज्ञक हो ॥ ६७ ॥

अस्तं च ॥ ६८ ॥

अस्तमितिमान्तमव्ययं गतिसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—अस्तङ्गत्य ॥

छिपकर। अस्तम् अव्यय भी क्रियाके योग में गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ६८ ॥

अच्छ गत्यर्थवदेषु ॥ ६९ ॥

अच्छशब्दोऽव्ययं गत्यर्थेषु धातुषु वदतौ च गतिसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा-अच्छगत्य[1]। अच्छोद्य।

सामने जाकर। सामने कहकर। गत्यर्थ और वद धातु के योगमें अच्छ अव्यय गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ६९ ॥

अदोऽनुपदेशे ॥ ७० ॥

अनुपदेशे अदश्शब्दो गतिसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा-अदःकृत्य। अदः कृतम् ॥

स्वयं विचारके। स्वयं विचार किया। अनुपदेश में अदस् शब्द क्रियाके योग में गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ७० ॥

तिरोऽन्तर्धौ ॥ ७१ ॥

तिरस्, अन्तर्धौ। अन्तर्धौ तिरस् शब्दोगतिसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा-तिरोभूय ॥

छिपकर। अन्तर्धि (छिपना) अर्थ में तिरस् शब्द गतिसञ्ज्ञक हो ॥ ७१ ॥

विभाषा कृञि ॥ ७२ ॥

अन्तर्धौ तिरश्शब्दः करोतौ परे वा गतिसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा-तिरःकृत्य[2], तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा ॥

छिपकर। अन्तर्धि अर्थ में तिरस् शब्द कृञ् के योगमें विकल्पसे गतिसञ्ज्ञकहों॥७२

१- अच्छेत्यनुकरणत्वेऽविभक्तिकोनिर्देशः सुपांसुलुगितिविभक्तेर्लुप्तत्वात्। अभिशब्दस्यार्थ इतिआभिमुख्ये। अच्छोद्येति,। यजादित्वा सम्प्रसारणमुदकमच्छं गच्छति, अकलुषमित्यर्थः ॥ २-(८। ३। ४२) वेति सत्वम् ॥

उपाजेऽन्वाजे ॥ ७३ ॥

इमौ कृञि वा गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम् ॥ यथा—उपाजेकृत्य, उपाजे कृत्वा । अन्वाजे कृत्य, अन्वाजे कृत्वा ॥

दुर्बल की सहायता करके । उपाजे और अन्वाजे शब्द कृञ् के योगमें विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७३ ॥

साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ ७४ ॥

कृञि वा गतिसञ्ज्ञानि स्युः । (च्व्यर्थ इति वाच्यम्) ॥ यथा—साक्षात्कृत्य, साक्षात्कृत्वा । शीतं कृत्य, शीतं कृत्वा ॥

सामने करके । ठण्डा करके । साक्षात् आदि शब्द कृञ् के योग में विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७४ ॥

अनत्याधान उरसिमनसी ॥ ७५ ॥

अनत्याधाने, उरसिमनसी । अनत्याधानेऽर्थे उरसिमनसी शब्दौ कृञि वा गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा—उरसिकृत्य, उरसिकृत्वा । मनसिकृत्य, मनसिकृत्वा ॥

निश्चय करके । अनत्याधान (आधाराधेय) अर्थ में उरसि और मनसि शब्द कृञ् के योग में विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७५ ॥

मध्ये पदे निवचने च ॥ ७६ ॥

इमेऽनत्याधाने वा गतिसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा—मध्ये कृत्य, मध्ये कृत्वा । पदेकृत्य, पदेकृत्वा । निवचनेकृत्य, निवचने कृत्वा ॥

वाणी को वशमें करके । अनत्याधान अर्थ में मध्ये पदे और निवचने शब्द कृञ् के योग में विकल्प से गतिसञ्ज्ञक हों ॥ ७६ ॥

नित्यं हस्ते पाणावुपयमने ॥ ७७ ॥

नित्यम् , हस्ते, पाणौ , उपयमने। विवाहे हस्ते पाणौ शब्दौ नित्यं गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—हस्ते कृत्य। पाणौ कृत्य॥

विवाह कर। उपयमन (विवाह) अर्थ में हस्ते और पाणौ शब्द नित्य कृञ् के योग में गतिसंज्ञक हों ॥७७॥

प्राध्वम् बन्धने ॥ ७८ ॥

बन्धनेऽर्थे प्राध्वंशब्दः कृञि गतिसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा—प्राध्वङ् कृत्य ॥

बांधकर। बन्धन अर्थ में प्राध्वम् अव्यय कृञ् के योग में गतिसंज्ञक हो ॥७८॥

जीविकोपनिषदावौपम्ये ॥ ७९ ॥

जीविकोपनिषदौ, औपम्ये। औपम्ये विषये कृञीमौ गतिसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—जीविका कृत्य। उपनिषत्कृत्य॥

जीविका की तरह करके। उपनिषत् की नाईं करके। उपमा विषय में जीविका और उपनिषत् शब्द कृञ् के योग में गतिसंज्ञक हो ॥ ७९ ॥

ते प्राग्धातोः ॥ ८० ॥

तेगत्युपसर्गसञ्ज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः। यथा—न्यषेधीत्॥

मनैकिया। वे गति और उपसर्ग संज्ञक धातु से पूर्वप्रयुक्त हों ॥ ८० ॥

छन्दसि परेऽपि ॥ ८१ ॥

छन्दसि विषये गत्युपसर्गसञ्ज्ञकाः परेपि स्युः। यथा—यातिनिहस्तिना। हन्ति निमुष्टिना, निहन्ति मुष्टिना॥

१ उपनि पूर्वात्सदेः सत्सूद्विषेति क्विप्, सादिर प्रतेरिति षत्वम्।

हाथीपर जाता है । घूंसेसे मारता है । छन्दो विषय में गतिसंज्ञक और उपसर्ग संज्ञक धातु से परे भी हों ॥ ८१ ॥

व्यवहिताश्च ॥ ८२ ॥

व्यवहिताः, च । छन्दसिविषये व्यवहितांश्च गत्युपसर्गसञ्ज्ञका-दृश्यन्ते । यथा-आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि ॥ (आ) (मन्द्रैः) प्रशंसितैः (इन्द्र) परमैश्वर्य वर्द्धक (हरिभिः) अश्वैः (याहि) आगच्छ (यजु० अ० २० म० ५३) ॥

छन्दविषय में गति और उपसर्गसंज्ञक व्यवहित भी हों ॥ ८२ ॥

कर्म्मप्रवचनीयाः ॥ ८३ ॥

अधिकारोऽयम् । विभाषा कृञि (१ । ४ । ९८) ॥

इस सूत्रतक कर्मप्रवचनीय का अधिकार है ॥

अनुर्लक्षणे ॥ ८४ ॥

अनुः, लक्षणे । लक्षणे द्योत्येऽनुः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-यज्ञमनुप्रावर्षत् ॥

यज्ञके पश्चात् वर्षा । लक्षण प्रकाशित होनेपर अनु शब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञक हो ८४

तृतीयार्थे ॥ ८५ ॥

तृतीयार्थे द्योत्येऽनुः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा-नदी-मनुवसति तपस्वी ॥

नदी के समीप तपस्वी रहता है । तृतीया के अर्थ में अनुशब्द कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ॥ ८५ ॥

१-(२ । ३ । ८) इति द्वितीया ।

हीने ॥ ८६ ॥

हीनेद्योत्येऽनुः कर्म्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—अन्वर्जुनं योद्धारः ॥

और योधा अर्जुन से न्यून हैं। हीन अर्थमें अनुशब्द कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ८६

उपोऽधिके च ॥ ८७ ॥

उपः, अधिके, च । हीनेऽधिके च द्योत्येउपेत्यव्ययं कर्मप्रवचनीयसंज्ञं स्यात् । यथा--उपदयानन्दं ब्रह्मचारिणः । उपाऽर्णकेपणः ॥

दयानन्द ब्रह्मचारिओंमें प्रथम हैं। पैसे से आना अधिक होताहै। हीन और अधिक अर्थ में उपशब्द कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ॥ ८७ ॥

अपपरी वर्जने ॥ ८८ ॥

इमौ वर्जने कर्मप्रवचनीयसंज्ञौस्यातान् । यथा—अपमथुरायावृष्टो-मेघः, परिमथुरायावा ॥

मथुराको छोड़कर मेघवर्षा । वर्जन अर्थमें अप और परिशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहों ॥ ८८ ॥

आङ् मर्यादावचने ॥ ८९ ॥

आङ्मर्यादायां कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—आपाटलि-पुत्राद्वृष्टोमेघः । आकुमारं यशः पाणिनेः ॥

पटनाको छोड़कर मेहवर्षा । लड़कोंतक पाणिनिका यशहै अर्थात् लड़केभीपाणिनिको जानतेहैं । मर्यादा अर्थमें आङ्कर्मप्रवचनीयसंज्ञकहो ॥ ८९ ॥

लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः ॥ ९० ॥

१-(२ । ३ । ९) इति सप्तमी । २—(२ । ३ । १०] इतिपञ्चमी ॥

एष्वर्थेषुविषयभूतेषु प्रत्यादयः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकाःस्युः। यथा—लक्षणे-वृक्षंप्रतिपर्यनुवा विद्योततेविद्युत्। इत्थम्भूताख्याने-साधुर्देवदत्तोमातरंप्रति पर्यनुवा।भागे-यदत्रमांप्रतिपर्यनुवास्यात्। वीप्सायाम्-वृक्षंवृक्षंप्रति पर्यनुवासिञ्चति ॥

वृक्षको लक्षकरके बिजुली चमकतीहै। माताकेलिये देवदत्तसज्जनहै। यहां कुछ मेरेलियेभीहो। प्रतिवृक्षको सींचताहै। लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग और वीप्सा अर्थमें प्रति, परि और अनुशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहो ॥ ९० ॥

अभिरभागे ॥ ९१॥

अभिः, अभागे। भागवर्जे लक्षणादावभिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकः स्यात्। यथा—वृक्षमभिविद्योततेविद्युत्। साधुर्देवदत्तोमातरमभि। वृक्षंवृक्षमभिसिञ्चति ॥

लक्षणइत्थं भूताख्यान औरवीप्सा अर्थमें अभिशब्दकर्म प्रवचनीयसंज्ञकहो॥ ९१ ॥

प्रतिःप्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥ ९२ ॥

एतयोरर्थयोः प्रतिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात्। यथा—अभिमन्युरर्जुनतः प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छतिमाषान् ॥

अर्जुनका प्रतिनिधि अभिमन्यु। तिलोंके बदलेमें उर्ददेताहै। प्रतिनिधि और प्रतिदान विषयमें प्रतिशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहो ॥ ९२ ॥

अधिपरी अनर्थकौ ॥ ९३ ॥

अनर्थकावधिपरीकर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञकौ स्याताम्। यथा—कुतोऽध्यागच्छति, कुतः पर्यागच्छति ॥

कहांसे आता है। अनर्थक अधि और परिशब्द कर्म प्रवचनीयसंज्ञकहों ॥ ९३ ॥

१—(२ । ३ । ११) इतिपञ्चमी।

सुः पूजायाम् ॥ ९४ ॥

पूजायामर्थे सुः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—सुस्तुतम् ॥

सम्यक् स्तुतिकी । पूजाअर्थमें सुशब्दकर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञकहो ॥ ९४ ॥

अतिरतिक्रमणे च ॥ ९५ ॥

अतिः, अतिक्रमणे, अ च । अतिक्रमणे पूजायांच, अतिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अति स्तुतमेव भवता । अतिसिक्तंभवता ॥

आपने सम्यक्स्तुतिकी । आपनेबहुतहीसींचा । अतिक्रमण और पूजा अर्थमें अतिशब्द कर्म प्रवचनीय संज्ञकहो ॥ ९५ ॥

अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्ग-गर्हासमुच्चयेषु ॥ ९६ ॥

एषुद्योत्येष्वपिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा—सर्पिषोऽपि स्यात् । अपिसिञ्चेन्मूलकसहस्रम् । अपिस्तुयाद् राजानम् । अपिस्तुयाद् वृषलम् । अपिसिञ्च ॥

कुछ घी भी हो । सम्भव है कि-सहस्र मूलिओं को सींचे । राजा की आज्ञा मान । निन्दनीय स्थल है-कि वृषल की वह स्तुति करे । इकट्ठा सींच । पदार्थ (स्तुति) सम्भावन (मुमकिन) अन्ववसर्ग (कामचारानुज्ञा) गर्हा (निन्दा) और समुच्चय अर्थ में अपि शब्द कर्म प्रवचनीयसंज्ञक हो ॥ ९६ ॥

अधिरीश्वरे ॥ ९७ ॥

अधिः, ईश्वरे । स्वस्वामिसम्बन्धेऽधिः कर्म्मप्रवचनीय सञ्ज्ञः स्यात् । यथा—अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः । ब्रह्मदत्तस्य स्वाः पाञ्चाला इत्यर्थः । अधिपञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः पञ्चालानां ब्रह्मदत्तः स्वामीत्यर्थः ॥

ईश्वर अर्थ में अधि शब्द कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञक हो ॥ ९७ ॥

विभाषा कृञि ॥ ९८ ॥

ईश्वरेऽर्थेऽधिः करोतौ वा कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । यथा-यदत्रमामधिकरिष्यति ॥

मुझे यहां स्वामी बनायेगा । कृञ्के योग में अधिशब्द विकल्प से कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो ॥ ९८ ॥

लः परस्मैपदम् ॥ ९९ ॥

लादेशाः परस्मैपदसञ्ज्ञकाः स्युः । यथा-तिप्, तस्, झि । सिप्, थस्, थ । मिप्, वस्, मस् । शतृक्वसू च ॥

लकार के स्थान में जो आदेश वे परस्मैपदसञ्ज्ञक हों ॥ ९९ ॥

तङानावात्मनेपदम् ॥ १०० ॥

तङानौ, आत्मनेपदम् । तङ् प्रत्याहारः, शानच् कानचौ चाऽऽत्मने पदसञ्ज्ञाः स्युः । यथा--त, आताम्, झ । थास्, आथाम्, ध्वम् । इट्, वहि, महिङ् । शानच् कानचौ च ॥

लकारके स्थान में जो तङ् और आन आदेश वह आत्मनेपदसंज्ञक हों ॥ १०० ॥

तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १०१

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमात्प्रथममध्यमोत्तमसञ्ज्ञाः स्युः । यथा—परस्मैपदेषु-तिप्, तस्, झि, इति प्रथमः । सिप्, थस्, थ, इति मध्यमः । मिप्, वस्, मस्, इत्युत्तमः । आत्मनेपदेषु त, आताम्, झ, इति प्रथमः । थास्, आथाम्, ध्वम्, इति मध्यमः । इट् वहि, महिङ्, इत्युत्तमः ॥

परस्मैपद और आत्मनेपदकेतिङ्के जो तीन १ त्रिक वेक्रमसे प्रथम मध्यम और उत्तम पुरुषसञ्ज्ञकहों ॥ १०१ ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचना-न्येकशः ॥ १०२ ॥

तानि, एक० नानि, एकशः । येलब्धप्रथमादिसञ्ज्ञास्तेतिङस्त्रय-स्त्रिका एकवचनद्विवचनबहुवचनसञ्ज्ञकाः स्युः एकैकंपदम् ॥

प्रत्येकत्रिकमें जो तीन १भागहैं वे एक२के प्रति क्रमसे एकवचनद्विवचनऔर बहुवचनसञ्ज्ञकहों ॥ १०२ ॥

सुपः ॥ १०३ ॥

सुपस्त्रीणित्रीणिवचनान्येकशएकवचनद्विवचनबहुवचनसञ्ज्ञकानिस्युः । यथा—सु इत्येकवचनम् । औ इति द्विवचनम् । जस् इतिबहुवचनम् एवंसर्वत्र ॥

सुप्के जो तीन २ भागहैं वे क्रमसे एक २ के प्रति एकवचन द्विवचन और बहुवचनसंज्ञकहों ॥ १०३ ॥

विभक्तिश्च ॥ १०४ ॥

विभक्तिः, च । सुप्तिङौ विभक्तिसञ्ज्ञकौ स्याताम् ।

सुप् और तिङ्के त्रिकोंके जोतीन २ भागहैं वेप्रत्येक विभक्तिसञ्ज्ञकहों ॥ १०४ ॥

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणेस्थानि-न्यपिमध्यमः ॥ १०५ ॥

युष्मदि, उपपदे, स० करणे, स्थानिनि, अपि, मध्यमः । तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेचमध्यमपुरुषः स्यात्। यथा–त्वम्पठसि। अप्रयुज्यमाने। पठसि ॥

तिङ्वाच्यकारक वाचक युष्मद् शब्दप्रयुक्तहो अथवानहो तो धातुसे मध्यम पुरुषहो ॥ १०५ ॥

प्रहासे चमन्योपपदेमन्यतेरुत्तम एकवच्च ॥ १०६ ॥

प्रहासे, च, मन्योपपदे, मन्यतेः, उत्तमः,एकवत्, च। प्रहासे गम्यमाने मन्योपपदेधातोर्मध्यमः स्यान्मन्यतेश्चोत्तमः सचैकार्थस्यवाचकः स्यात्। यथा–एहिमन्ये मोदकान्भोद्यसे भुक्तास्तेऽतिथिभिः। एतम्, एतवा, मन्येमोदकान् भोद्येथे, भोद्यध्वे, भोद्ये, भोद्यावहे, भोद्यामहे, इत्यादि। मन्यसे, मन्येथे, मन्यध्वे, इत्यादिरर्थः ॥

प्रहासअर्थमें मन्योपपद (मन्यजिसकेसाथहो) ऐसे धातुसे मध्यमपुरुषहो और मन्यधातुसे उत्तमपुरुषहो और वह एकार्थवाचकहो ॥ १०६ ॥

अस्मद्युत्तमः ॥ १०७ ॥

अस्मदि, उत्तमः। अस्मद्युपपदे समानाभिधेयेप्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽप्युत्तमपुरुषः स्यात्। यथा–अहम्पठामि, पठामि वा ॥

क्रियाकेसाथ समानाधिकरण प्रयुज्यमान वा अप्रयुज्यमान अस्मद्शब्दउपपदहो तो धातुसे उत्तमपुरुषहो ॥ १०७ ।

शेषे प्रथमः ॥ १०८ ॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमपुरुषः स्यात् । यथा–कःपठति, पठति वा ॥

क्रिया के साथ समानाधिकरण प्रयुक्त अथवा अप्रयुक्त शेष (अस्मद् युष्मद् से भिन्न) उपपद हो तो धातु से प्रथमपुरुष हो ॥ १०८ ॥

परः सन्निकर्षः संहिता ॥ १०९ ॥

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासञ्ज्ञः स्यात् । यथा—दध्योदनम् ॥

दही भात । वर्णों की अत्यन्त निकटता संहिता सञ्ज्ञक हो ॥ १०९ ॥

विरामोऽवसानम् ॥ ११० ॥

विरामः, अवसानम् । वर्णानामभावोऽवसानसञ्ज्ञं स्यात् । यथा—वेदः । गतः ॥

वर्णों के अभाव की अवसान सञ्ज्ञा हो ॥ ११० ॥

इति जीवारामशर्म्मकृतायां पाणिनिसूत्रवृत्तौ प्रथमाऽध्यायस्य चतुर्थपादः प्रथमाध्यायश्च समाप्तः ॥

अथ द्वितीयाऽध्यायारम्भः ।

प्रथमः पादः ।

समर्थः पदविधिः ॥ १ ॥

पदसम्बन्धी योविधिः स समर्थाश्रितः स्यात् ॥

पदविधि समर्थ के आश्रित हो (यह अधिकार सूत्र है) ॥ १ ॥

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ॥ २ ॥

सुप्, आमन्त्रिते, पराङ्गवत्, स्वरे । स्वरलक्षणे कर्त्तव्ये सुबन्तमामन्त्रिते परे परस्याङ्गवत् स्यात् । यथा—द्रवत्पाणी शुभस्पती । (अव्ययानां प्रतिषेधः) ॥ उच्चैरधीयानः । नीचैरधीयानः ॥

स्वरविधि करने में आमन्त्रित परे हो तो सुबन्त पराङ्गवत् हो ॥ २ ॥

प्राक् कडारात् समासः ॥ ३ ॥

कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्राक्समास इत्याधिक्रियते ॥

कडाराः कर्मधारये ॥ (२ । २ । ३८) इस सूत्रतक समास का अधिकार है ॥ ३ ॥

सह सुपा ॥ ४ ॥

सहेति योगो विभज्यते । सुबन्तं समर्थेन सह समस्यताम् । अयमप्यधिकारः ॥

सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो यह भी अधिकार है ॥ ४ ॥

अव्ययीभावः ॥ ५ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से अव्ययीभाव समास का अधिकार (२ । १ । २१) सूत्रतक है ॥ ५ ॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्त वचनेषु ॥ ६ ॥

विभक्त्यादिष्वर्थे यदव्ययं तत्समर्थेन सह समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा-विभक्तौ तावत्-स्त्रीषु, इत्यधिस्त्रि। समीपे-समाजस्य समीपमुपसमाजम्। मद्राणां समृद्धिः- सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः-दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो-निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययः--अतिहिमम्। निद्रासम्प्रतिनयुज्यते--इत्यतिनिद्रम्। पाणिनिशब्दस्य प्रकाशः,-इतिपाणिनि। रथस्यपश्चादनुरथम्। योग्यता वीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थः। रूपस्ययोग्यमनुरूपम्,अर्थमर्थं प्रति--प्रत्यर्थम्, शक्तिमनतिक्रम्य-यथाशक्ति। हरेः सादृश्य--सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेति--अनुज्येष्ठम्। सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। यथार्थत्वेनैवसिद्धे पुनः सादृश्यग्रहणंगुणभूतेऽपि सादृश्ये यथास्यादिति। क्षत्राणां सम्पत्तिः-सक्षत्रम्। ऋद्धेराधिक्यं-समृद्धिः,-अनुरूपमात्मभावः सम्पत्तिः, इतिभेदः। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अन्ते-अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते--साग्नि ॥

१-(२ । ४ । १८) इतिनपुंसकत्वम्। (१ । १ । ४७) इतिह्रस्वत्वम्। २-(६ । ३ । ८१)इतिसहस्य सः।

स्त्रिओंकी कथा । समाज के पास । मद्रोंकी की उन्नति । यवनों की अवृद्धि । मक्खिओं का अभाव । शीतका नाश । निद्राका न होना । यह पाणिनिशब्द लोक में प्रकाशित है । रथके पीछे, रूपके योग्य, हरेक अर्थके प्रति ताकृत के मुताबिक । हरिके सदृश । यथाज्येष्ठ । एकसाथ चक्र । मित्रके सदृश । क्षत्रिओं की सम्पति । ऋद्धिकी अधिकता । तृण सहित खाता है । अग्नि (जिस में अग्नि का सम्यग् वयानहो) ग्रन्थ तक पढ़ता है । विभक्तिवचन १ समीपवचन २ समृद्धिवचन ३ व्यृद्धिवचन ४ अर्थाभाववचन ५ प्रत्ययवचन ६ असम्प्रतिवचन ७ शब्दप्रादुर्भाववचन ८ पश्चाद् वचन ९ यथावचन १० अनुपूर्व्यवचन ११ यौगपद्यवचन १२ सादृश्यवचन १३ सम्पत्तिवचन १४ साकल्यवचन १५ और अन्तवचन १६ में जो अव्यय वह समर्थ सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव सञ्ज्ञक हो ॥ ६ ॥

यथाऽसादृश्ये ॥ ७ ॥

यथेत्येतदव्ययमसादृश्यैवर्त्तमानं सुपा सह समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा–यथाध्यापकम् ॥

जो २ अध्यापक । सादृश्य से भिन्न अर्थमें वर्त्तमान यथा अव्यय समर्थ सुवन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययी भाव संज्ञक हो ॥ ७ ॥

यावदवधारणे ॥ ८ ॥

यावत्, अवधारणे । यावदित्येतदव्ययमवधारणे वर्त्तमानं सुपा सह समस्यताम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । यथा- यावन्तः श्लोका स्तावन्तो बुध प्रणामाः--यावच्छ्लोकम् ॥

जितने श्लोक हैं उतने पण्डितों को प्रणाम हैं ॥ अव धारण अर्थमें वर्त्तमान यावत् अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययी भाव संज्ञक हो ॥ ८ ॥

सुप्प्रतिना मात्रार्थे ॥ ९ ॥

१-यत्परिमाणमेषांते । यत्तदेतेभ्यः-, इति वतुप् ।

सुपं, प्रतिना, मात्रार्थे। मात्रार्थे वर्त्तमानेनप्रतिना सह सुबन्तं समस्यताम्, अव्ययीभावश्चसमासः स्यात्। यथा—शाकस्य लेशः-शाकप्रति॥

मात्रा (कुछ) अर्थमें वर्त्तमान सुबन्त प्रतिके साथ समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ ९ ॥

अक्षशलाकासङ्ख्याः परिणा ॥ १० ॥

अक्षशलाकासङ्ख्याशब्दाः परिणासह समस्यन्ताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा—अक्षेण विपरीतं वृत्तम्—अक्षपरि। शलाकापरि। एकपरि ॥

पासेंका विरुद्ध पड़ना। अक्षशलाका और सङ्ख्यापरि के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ १० ॥

विभाषा ॥ ११ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से (२ । २ । १६) यहां तक विकल्प का अधिकार है ॥ ११ ॥

अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ॥ १२ ॥

अपपरि, बहिस्, अञ्चु इत्येते सुबन्ताः पञ्चम्यन्तेन सह वा समस्यन्ताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात्। यथा—अपेन्द्रप्रस्थं वृष्टोदेवः, अपेन्द्रप्रस्थात्। परीन्द्रप्रस्थम्, परीन्द्रप्रस्थात्। बहिर्वनम्, बहिर्वनात्। प्राग्वनम्, प्राग्वनात् ॥

दहली को छोड़कर मेघ बरसा। वन के बाहर। वन के पूर्व की दिशा में। अप, परि बहिस् और अञ्चु सुबन्त पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्तहों और वह समास अव्ययीभावसञ्ज्ञक हो ॥ १२ ॥

आङ् मर्यादाऽभिविध्योः ॥ १३ ॥

एतयोराङ् पञ्चम्यन्तेन वा समस्यन्ताम् , अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—आपाटलिपुत्रं वृष्टोमेघः, आपाटलिपुत्रात् । आबालं यशोदयानन्दस्य आबालेभ्यः ॥

पटनातकमेघवरसा । लड़केतकभी स्वामिदयानन्दको जानतेहैं । मर्यादा और अभिविधिअर्थमें वर्त्तमानजोआङ् वह पञ्चम्यन्त सुबन्तकेसाथ विकल्पसे समासको प्राप्तहो और वहसमास अव्ययी भावसंज्ञकहो ॥ १३ ॥

लक्षणेनाभिप्रतीआभिमुख्ये ॥ १४ ॥

लक्षणेन[३], अभिप्रती, आभिमुख्ये । आभिमुख्यद्योतकावभिप्रतीचिह्नवाचिनासह वासमस्येताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—अभ्यग्नि—शलभाःपतन्ति,अग्निमभि । प्रत्यग्नि,अग्निप्रति ॥

अग्निको लक्ष्यकरके पतङ्ग गिरतेहैं । आभिमुख्यद्योत्यहोतो अभिप्रति शब्दलक्षणवाचक सुबन्तकेसाथ विकल्पसे समासको प्राप्तहों और वहसमास अव्ययी भाव संज्ञकहो ॥ १४ ॥

अनुर्यत्समया ॥ १५ ॥

अनुः[१], यत्समया[३] । यंपदार्थंसमयाद्योत्यते तेनलक्षण भूतेनानुः समस्यताम्, अव्ययीभावश्चसमासः स्यात् । यथा—अनुवनमशनिर्गतः ॥

बनके पासहोकर बिजलीनिकलगई । जिसकासमीपवाचक अनुहो वह उसलक्षण वाचक सुबन्तके साथसमासको प्राप्तहो और वहसमास अव्ययीभावसंज्ञकहो ॥ १५ ॥

यस्यचाऽऽयामः ॥ १६ ॥

यस्य[६], च[अ], आयामः । यस्यदैर्घ्यमनुनाद्योत्यते तेनलक्षण भूतेनानुर्वा समस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—अनुगङ्गं—वाराणसी, गङ्गायाअनु ॥

गङ्गासी लम्बी२ काशी बसती है । जिसका आयाम (विस्तार) वाचक अनु हो वह उस लक्षण वाचक सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभावसञ्ज्ञक हो ॥ १६ ॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि[*] च[अ] ॥ १७ ॥

इमानि निपात्यन्ते । यथा—तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु-कालः ॥

गौ दुहनेका समय । तिष्ठद्गु आदि शब्द अव्ययीभाव समासमें निपातित हैं ॥ १७ ॥

पारे[१]मध्ये षष्ठ्या[२] वा[अ] ॥ १८ ॥

पार मध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा समस्येताम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । एदन्तत्वंचानयोर्निपात्यते पक्षेपष्ठीतत्पुरुषः । यथा—पारेगङ्गम्, पारंगङ्गायाः, गङ्गापारम् । मध्येगङ्गम्, मध्यंगङ्गायाः, गङ्गामध्यम् ॥

गङ्गापार । गङ्गाकावीच । पारे और मध्ये (एकारान्तनिपातित) शब्द षष्ठ्यन्त सुबन्तकेसाथ विकल्पसेसमासकोप्राप्तहो औरवहसमास अव्ययीभावसंज्ञकहो ॥ १८ ॥

सङ्ख्या[१] वंश्येन[२] ॥ १९ ॥

वंशोद्विधा-विद्ययाजन्मनाच । तत्रभवोवंश्यः । तद्वाचिना सह सङ्ख्यावासमस्यताम्, अव्ययीभावश्च समासः स्यात् । यथा—द्वौ-मुनीवंश्यौ—द्विमुनि । पाणिनिकात्यायनौ । व्याकरणस्य—त्रिमुनि ।

* तिष्ठद्गु, वहद्गु, आयतीगवम्—एतेकालवाचकाः । खले यवम्, खलेबुसम्, लूनयवम्, लूयमानयवम्, पूतयवम्, पूयमानयवम्, संहृतयवम्, संह्रियमाणयवम्, संहितबुसम्, ह्रियमाणबुसम्, एतेऽन्यपदार्थवृत्तयः । समभूमि, समपदाति, सम्भूमि, सम्पदाति, समम्भूमि, समम्प्रदाति,—षण्णां समत्वं भूमे रित्याद्यर्थः । (सुविनिर्दुर्भ्यष्षमम्)—एतस्यशोभनत्वादीत्यर्थः । आयतीसमम्, अपसमम्, पापसमम्, पुण्यसमम्, अत्रसर्वत्र समशब्दस्यसमाः संवत्सरइत्यर्थः । प्राह्ण, प्ररथ, प्रमृग, प्रदक्षिणम्—प्रगतत्वमह्न इत्याद्यर्थः । सम्प्रति—प्रतिगतस्य संगतत्व मित्यर्थे । तद्विपरीतार्थे—असम्प्रति, (इचकर्मव्यतिहारे) इतितिष्ठद्ग्वादिः ॥

विद्यातद्वतामभेदविवक्षया त्रिमुनिव्याकरणम् । पाणिनिकात्यायन-पतञ्जलयः एकविंशतिभारद्वाजम् । एकविंशतिर्भारद्वाजा वंश्या-इतिविग्रहः ॥

सङ्ख्या वाचक सुबन्त वंश्य वाचक सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो और वह समास अव्ययी भाव संज्ञक हो ॥ १९ ॥

नदीभिश्च ॥ २० ॥

नदीभिः[३], च[अ] । नदीभिः सङ्ख्या समस्यताम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । समाहारे चायमिष्यते । यथा—पञ्चनदम् ॥

पांचनदीओं का मेल । नदीवाचक सुबन्त के साथ सङ्ख्या वाचक सुबन्त समासको प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ २० ॥

अन्यपदार्थे च सञ्ज्ञायाम् ॥ २१ ॥

अन्यपदार्थे विद्यमानं सुबन्तं नदीभिः सह नित्यं समस्यताम्, सञ्ज्ञायां गम्यमानायाम्, अव्ययी भावश्च समासः स्यात् । यथा—उन्मत्तगङ्गम्, नामदेशः, लोहितगङ्गम् ॥

अन्यपदार्थ में वर्त्तमान सुबन्त नदीवाचक सुबन्त के साथ संज्ञागम्यमान होनेपर नित्य समासको प्राप्त हो और वह समास अव्ययीभाव संज्ञक हो ॥ २१ ॥

तत्पुरुषः ॥ २२ ॥

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ॥

यहां से (२ । २ । २१) तक तत्पुरुष समास का अधिकार है ॥ २२ ॥

द्विगुश्च ॥ २३ ॥

द्विगुः[१], च[अ] । द्विगुरपि तत्पुरुषसञ्ज्ञकः स्यात् । यथा—पञ्चराजम् ॥

१—राजाहः सखिभ्यष्टच्, तत्पुरुषस्याङ्गुलेसङ्ख्याव्ययादे रिति टजचौ तत्पुरुष निबन्धतो तथापि प्रकृति भेदाभेद विवक्षायां बहुवचनम् ॥

पांचराजाओंका संमूह । द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ २३ ॥

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्त प्राप्तापन्नैः ॥ २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रतादिप्रकृतिकैः सुबन्तैस्सह वा समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात् । यथा–कष्टंश्रितः, कष्टश्रितः । कान्तारमतीतः, कान्तारातीतः । दुःखंपतितः, दुःखपतितः । ग्रामंगतः, ग्रामगतः । तरङ्गानत्यस्तः, तरङ्गात्यस्तः । सुखंप्राप्तः, सुखप्राप्तः । सुखमापन्नः, सुखापन्नः । (गम्यादीनामुप सङ्ख्यानम्) ग्रामंगमी-ग्रामगमी । ओदनंबुभुक्षुः, ओदनबुभुक्षुः ॥

दुःखी । वनसे निकलाहुआ । दुःख में गिरा हुआ । गांवको गया । लहरों से नाश कियाहुआ, या आच्छादित । सुखी । सुखयुक्त । द्वितीयान्त सुबन्त श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न सुबन्तों के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ २४ ॥

स्वयं क्तेन ॥ २५ ॥

स्वयमित्येतत्सुबन्तं क्तान्तेनसह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा–स्वयंधौतौ पादौ ॥

अपने आप पैर धोये । स्वयम् अव्यय क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष सञ्ज्ञक हो ॥ २५ ॥

खट्वा क्षेपे ॥ २६ ॥

क्षेपे गम्यमाने खट्वाशब्दो द्वितीयान्तः क्तान्तेन सह ससस्यताम्,

१ गत्यर्थत्वात् (३ । ४ । ७२) इति कर्त्तरिक्तः ।

तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—खट्वारूढो जाल्मः। नित्य समासोऽयम्। अपथ प्रस्थित इत्यर्थः ॥

निन्दार्थ में द्वितीयान्त खट्वा शब्द क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २६ ॥

सामि ॥ २७ ॥

सामिशब्दः क्तान्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—सामिकृतम्। सामिभुक्तम्। सामिपीतम् ॥

आधाकिया। आधा खाया। आधा पिआ। सामिशब्द क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २७ ॥

कालाः ॥ २८ ॥

कालवाचिनो द्वितीयान्ताश्शब्दाः क्तान्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—मासप्रमितः-प्रतिपच्चन्द्रः। मासं परिच्छेत्तुमारब्ध वा नित्यर्थः ॥

काल वाचक द्वितीयान्त सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २८ ॥

अत्यन्तसंयोगे च ॥ २९ ॥

अत्यन्तसंयोगे गम्ये कालवाचिनो द्वितीयान्ताश्शब्दाः सुपा सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—मुहूर्त्तं सुखम् ॥

दोघड़ी का सुख। अत्यन्तसंयोग गम्यमान हो तो द्वितीयान्त कालवाचक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ २९ ॥

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ॥ ३० ॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृत गुणवचनेन, अर्थशब्देन चसह समस्यताम्,तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–शङ्कुलया खण्डः-शङ्कुला खण्डः। धान्येन अर्थो--धान्यार्थः ॥

सरौते से टुकड़ा किया। अन्नसे धन। तृतीयान्त सुबन्त तत्कृत (तृतीयान्त से हुये) गुण वचन और अर्थसुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ३० ॥

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥ ३१ ॥

तृतीयान्तमेतैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्।यथा–मासेनपूर्वः,मासपूर्वः।पितृसदृशः। मातृसमः। ऊनार्थे–माषोनम्। माषविकलम्। असिकलहः। वाङ्निपुणः। गुडमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः॥ (मिश्रग्रहणे सोपसर्गस्यापिग्रहणम्) (मिश्रंचानुपसर्गमसन्धौ, इत्यत्रानुपसर्गग्रहणात्)–गुणसंमिश्राधानाः ॥ (अवरस्योपसङ्ख्यानम्) ॥ मासेन अवरः–मासावरः ॥

पिताके तुल्य। माता के सदृश। मासे से कम। तलवार की लड़ाई। कहने में चतुर। गुड़धानी। शुभ आचारवाला। तृतीयान्त सुबन्त पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्षण सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ३१ ॥

कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥ ३२ ॥

कर्तरि, करणे च तृतीया कृदन्तेन सह बहुलम् समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–धर्म्मेण त्रातः-धर्म्मत्रातः। परशुना छिन्नः-परशुच्छिन्नः। बहुलग्रहणं सर्वोपाधि व्यभिचारार्थम्। तेन दात्रेण लूनवानित्यादौ न ॥

धर्म्म से बचायाहुआ। कुल्हाड़ी से काटागया। कर्त्ता करण वाचक तृतीयान्त सुबन्त कृदन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥३२॥

कृत्यैरधिकार्थवचने ॥ ३३ ॥

कृत्यैः, अधिकार्थवचने। स्तुतिनिन्दाप्रयुक्तमध्यारोपितार्थवचनमधिकार्थवचनम्। तत्रकर्त्तरि करणेच तृतीया कृत्यैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासःस्यात्। यथा—काकपेयानदी। कण्टक संचेयओदनः॥

कौवोंसे पीनेके योग्यनदी। कांटोंसे एकत्रकरने योग्यभात। अधिकार्थ वचन गम्यमान होतो कर्त्ता और करणमेंजो तृतीया वह कृत्यप्रत्ययों के साथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ३३ ॥

अन्नेन व्यञ्जनम् ॥ ३४ ॥

संस्कारक द्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेनसहसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात्। दध्नोपासिक्तओदनः—दध्योदनः॥

दहीसे संस्कारकियाहुआभात। व्यञ्जनवाचक तृतीयान्तसुबन्त अन्नवाचकसुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ३४ ॥

भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥ ३५ ॥

मिश्रीकरणवाचितृतीयान्तं सुबन्तं भक्ष्यवाचिसुबन्तेनसहसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात्। यथा—गुडेनमिश्राधानाः-गुडधानाः॥

तृतीयान्तमिश्रीकरण वाचकसुबन्त भक्ष्यवाचीसुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ३५ ॥

चतुर्थी तदर्थार्थ बलिहितसुखरक्षितैः ३६

यदर्थ, अर्थ, बलिहित, सुख, रक्षित इत्येतैः सह चतुर्थ्यन्तं सुबन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । तदर्थेनप्रकृतिविकृति भाव एव । यथा-कपाटायदारु, कपाटदारु । (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वाच्यम्) ॥ विप्रायायम्, विप्रार्थो वेदः । भूतबलिः । गोहितम् । नरसुखम् । गोरक्षितम् ॥

किवाड़ के लिये लकड़ी । ब्राह्मण के लिये वेद । प्राणि को भोजन । गौके लिये हितकारी । मनुष्य के लियेसुख । गौ के लिये रक्खा । चतुर्थ्यन्त सुबन्त तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षितसुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ३६ ॥

पञ्चमी[1] भयेन[2] ॥ ३७ ॥

पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयवाचिना सुबन्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-चोराद्भयम्-चोरभयम् । (भयभीत भीतिभीभिरितिवाच्यम्) वृकेभ्यो भीतः-वृकभीतः । वृकभीतिः । वृकभीः ॥

चोरसेडर । पञ्चम्यन्त सुबन्त भयवाचक सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ३७ ॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ३८

अप०स्तैः[3], अल्पशः । एभिस्सहाऽल्पं पञ्चम्यन्तंसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात् । यथा-सुखापेतः । कल्पनापोढः । चक्रमुक्तः । स्वर्गपतितः । तरङ्गापत्रस्तः । अल्पशःकिम् । प्रासादात्पतितः ॥

सुखसेयुक्त । कल्पनासे निकलाहुआ । चक्रसेभिन्न । सुखसेस्थित । लहरसे फेंका-हुआ । पञ्चम्यन्त सुबन्त अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त सुबन्तके साथ

समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ३८ ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि[1] क्तेन[3]॥ ३९ ॥

इमेपञ्चम्यन्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ताम्,तत्पुरुषश्च समासःस्यात्। यथा–स्तोकान्मुक्तः, अल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः, अभ्यासादागतः। दूरादागतः, विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रादागतः,।(पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः) इत्यलुक् ॥

थोड़े से छोड़ागया। पास से आया। दूर से आया। दुःखसे छूटा। स्तोकार्थ, अन्तिकार्थ, दूरार्थ और कृच्छ्र शब्द पञ्चम्यन्त सुबन्त क्तान्तके साथ समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ३९ ॥

सप्तमी[1] शौण्डैः[3] ॥ ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिःसहसमस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात्। यथा–अक्षेषुशौण्डः–अक्षशौण्डः ॥

पक्काज्वारी। सप्तम्यन्त सुबन्त शौण्डादि सुबन्तोंके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ४० ॥

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥ ४१ ॥

सि॰ न्धैः[3], च[अ]। एभिः सप्तम्यन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–इन्द्रप्रस्थसिद्धः। आतपशुष्कः। स्थालीपक्वः। चक्रबन्धः ॥

दहली में सिद्ध। घाम में सूखा। बटलोई में पका हुआ। चक्र में बन्धा हुआ। सप्तम्यन्त सुबन्त सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्धसुबन्त के साथ समास को प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४१ ॥

ध्वाङ्क्षेण[3] क्षेपे[7] ॥ ४२ ॥

निन्दागम्ये ध्वाङ्क्ष वाचिना सह सप्तम्यन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-पाठशालायां ध्वाङ्क्ष इव-पाठशाला ध्वाङ्क्षः॥

पाठशाला में कौआ की नाईं। निन्दागम्यमान हो तो सप्तम्यन्त सुबन्त ध्वाङ्क्ष (काक) वाचक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४२ ॥

कृत्यैर्ऋणे ॥ ४३ ॥

कृत्यैः, ऋणे। ऋणेगम्ये सप्तम्यन्तं कृत्यप्रत्ययान्तैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-मासेदेयमृणम्-मासदेयम्। ऋण ग्रहणं नियोगोपलक्षणार्थम्। पूर्वाह्णे गेयं साम॥

मास में अवश्य देने योग्य ऋण। ऋण गम्यमान हो तो सप्तम्यन्त सुबन्त कृत्य प्रत्ययान्त सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ४३

सञ्ज्ञायाम् ॥ ४४ ॥

सञ्ज्ञायां विषये सप्तम्यन्तं सुबन्तं सुपा सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-अरण्येतिलकाः॥

वनके तिल। सञ्ज्ञा विषयमें सप्तम्यन्त सुबन्त सुबन्तके साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४४ ॥

क्तेनाऽहोरात्रावयवाः ॥ ४५ ॥

अह्नो रात्रेश्चाऽवयवाःसप्तम्यन्ताः क्तान्तेन सह समस्यन्ताम्; तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा-पूर्वाह्णकृतम्। अपररात्रकृतम्॥

दिनके प्रथम प्रहरमें किया। रात्रिके दूसरे भागमें किया। अहरवयव और रात्र्यवयव सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४५ ॥

१- ६।३।९) इत्यलुक्।

तत्र ॥ ४६ ॥

तत्रेत्येतत्सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-तत्रभुक्तम् । तत्रपीतम् ॥

तत्र यह सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४६ ॥

क्षेपे ॥ ४७ ॥

क्षेपे गम्यमाने सप्तम्यन्तं क्तान्तेनसह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-भस्मनिहुतम् ॥

राखमें होमक्रिया । निन्दागम्यमान होतो सप्तम्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ४७ ॥

पात्रे सम्मितादयश्च ॥ ४८ ॥

पा० दयः, च । इमे क्षेपे निपात्यन्ते । यथा-पात्रेसम्मिताः । भोजनसमये एवसंगताः, नतुकार्ये । गेहेशूरः । गेहेनर्दी । आकृतिगणोयम् ॥

निन्दा अर्थमें पात्रे सम्मितादिक शब्द तत्पुरुष समासमें निपातितहैं ॥ ४८ ॥

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः-समानाधिकरणेन ॥ ४९ ॥

इमे समानाधिकरणेन सुपासह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-पूर्वं कृष्टं पश्चात् समीकृतम्-कृष्टसमीकृतम् । एकनाथः ।

१—(६ । ३ । १४) इत्यलुक् ।

सर्वच्छात्राः । जरद्धस्ती । पुराणान्नम् । नवपाठकाः । केवल वैयाकरणः ॥

जुतेहुयेमें पटेलालगाया । एकस्वामी । सर्वविद्यार्थी । वृद्धगज । पुरानाअन्न । नये पढ़नेवाले । सिर्फव्याकरणको जाननेवाला । पूर्वकाल, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल सुबन्तसमानाधिकरण सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह सँमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ४९ ॥

दिक्सङ्ख्ये सञ्ज्ञायाम् ॥ ५० ॥

समानाधिकरणेति—आपादपरिसमाप्तेरधिकारः । सञ्ज्ञायांविषये दिग्वाचिनः शब्दाः सङ्ख्याच समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्यन्ताम्,तत्पुरुषश्चसमासःस्यात् । यथा—पूर्वेषुकामशर्मा । पञ्चाम्राः॥

पचपेड़ा । सञ्ज्ञा विषय में दिशावाचक और सङ्ख्या सुबन्त समानाधिकरण सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ ५० ॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ॥ ५१ ॥

तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे परतः, समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये समानाधिकरणेन सुपासह समस्येताम् , तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—पूर्वस्यां शालायां भवः—पौर्वशालः । पूर्वशालाप्रियः । दिक्षु-समाहारो नास्ति । सङ्ख्यातद्धितार्थे । पञ्चनापितिः । उत्तरपदे । पञ्चगवधनः । समाहारे । दशकुमारि ॥

पूर्व दिशाकेघर में पैदा हुआ । पूर्वदिशाका गृह प्याराहै जिसको । पांच नापितोंकी सन्तान । पांच गौ ही धनहै जिसका ऐसा नर । दशबालिकाओंका समाहार (मेल) । तद्धितार्थ विषयमें उत्तरपद परे हो और समाहार अभिधेय हो तो दिशावाचक और सङ्ख्या सुबन्त समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष सञ्ज्ञक हो ॥ ५१ ॥

* (१ । २ । ४२) सूत्रके अनुसार इसपादकीसमाप्तितक तत्पुरुषसमासकी कर्मधारयसंज्ञा प्रत्येक, सूत्रमें समझनाचाहिये ॥ १-- (४ । २ । १०७) इतिञः ।

सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः ॥ ५२ ॥

सङ्ख्यापूर्वः, द्विगुः । तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः स्यात् । यथा—पञ्चसुस्थालीषुसंस्कृतः-पञ्चस्थालः।पञ्चनावप्रियः पञ्चपूली॥

पांच बटलोईओं में पकाहुआ । पांच नावों पर प्यार करनेवाला । पांच पूलिओं का संघात । तद्धितार्थ विषय में उत्तरपद परे हो और समाहार अभिधेय हो तो संख्यापूर्वक समास द्विगुसंज्ञक हो ॥ ५२ ॥

कुत्सितानि कुत्सनैः ॥ ५३ ॥

कुत्स्यमानानि कुत्सनैः सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—वैयाकरणखसूचिः ॥

ऊपर को देखने वाला व्याकरणी । कुत्सित वाचक सुबन्त कुत्सन वाचक सुबन्तों के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष सञ्ज्ञक हो ॥ ५३ ॥

पापाणके कुत्सितैः ॥ ५४ ॥

पाप, अणक इमे सुबन्ते कुत्सित वचनैस्सह समस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—पापनापितः । अणककुलालः ॥

पापी नाई । नीच कुम्हार । पाप और अणक सुबन्त कुत्सित वाचक सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ५४ ॥

उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ ५५ ॥

उपमानवाचीनि सुबन्तानि सामान्यवचनैः सुबन्तैः सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—घनः-इव श्यामः—घनश्यामः ॥

बादल के तुल्य काला । उपमानवाचक सुबन्त सामान्यवाचक सुबन्तों के साथ

१—(४ । २ । १५) इत्यण् । (४ । १ । ८८) इतिलुक् ।

समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ५५ ॥

उपमितं[1] व्याघ्रादिभिः[3] सामान्या-प्रयोगे ॥ ५६ ॥

सामान्या प्रयोगे उपमेयं व्याघ्रादिभिस्सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—पुरुषोऽयं व्याघ्रइव—पुरुषव्याघ्रः ॥

व्याघ्र के समान वीर नर। सामान्य (उपमानोपमेय के साधारण धर्म्म) का प्रयोग न हो तो उपमित (उपमेय) वाचक सुबन्त व्याघ्रादि उपमान वाचक सुबन्तोंके साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ५६ ॥

विशेषणं[1] विशेष्येण[3] बहुलम्[अ] ॥ ५७ ॥

भेदकं समानाधिकरणेन भेदेन सह बहुलं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्, क्वचिन्न। यथा—कृष्णसर्पः। रामोजामदग्न्यः ॥

काला सांप। जमदग्नि के पुत्र परशुराम। विशेषण वाचक सुबन्त विशेष्यवाचक समानाधिकरण सुबन्त के साथ बहुल करके समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ५७ ॥

पूर्वाऽपरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥ ५८ ॥

पूर्वा॰ वीराः[अ], च। इमे समानाधिकरणेन सहसमस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—पूर्ववैयाकरणः। अपरनैयायिकः। प्रथमाध्यापकः। चरमपुरुषः। जघन्यपुरुषः। समानपुरुषः। मध्यपुरुषः। मध्यमपुरुषः। वीरपुरुषः ॥

पहिला व्याकरणकाज्ञाता । दूसरा न्यायकाज्ञाता । पूर्व अध्यापक । पिछिला-पुरुष । नीचपुरुष । मध्यदशाकानर । वीरपुरुष । पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम, और वीर सुबन्त समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ ५८ ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ ५९ ॥

स्पष्टम् । (श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्त्तव्यम्) ॥ अ-श्रेणयः-श्रेणयः कृताः-श्रेणीकृताः ॥

जोकि पूर्वपङ्क्ति नहीं थीं उनको छिद्ररहित पङ्क्तिबनाया । श्रेणि आदि सुबन्त कृतादि समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ५९ ॥

क्तेन नञ्विशिष्टेनाऽनञ् ॥ ६० ॥

नञ्विशिष्टेन क्तान्तेनसहाऽनञ् क्तान्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च स-मासः स्यात् । यथा—कृतंच तदकृतंच कृताकृतम् । (कृतापकृता-दीनामुपसङ्ख्यानम्) ॥ कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीत-विपीतम् । गतप्रत्यागतम् इत्यादीनि ॥ (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्) ॥ शाकप्रियः पार्थिवः—शाकपार्थिवः ॥

नञ् भिन्न क्तान्त विशिष्ट सुबन्त क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ६० ॥

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ६१

एते पूज्यमानैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—सद्वैद्यः । महावैयाकरणः । परमपुरुषः । उत्तमपुरुषः । उत्कृष्ट-पुरुषः ॥

सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट सुबन्त पूज्यमान (सत्करणीय) वाचक सुबन्तों के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥६१॥

वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥ ६२ ॥

पूज्यमानवाचिसुबन्तमेभिस्सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—गोवृन्दारकः। गोनागः। गोकुञ्जरः॥

अच्छा बैल। पूज्यमान वाचक सुबन्त वृन्दारक, नाग, कुञ्जरसुबन्तोंकेसाथ समासको प्राप्तहो और वहसमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६२ ॥

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ ६३ ॥

जातिपरिप्रश्ने वर्त्तमानौ कतरकतमौ समर्थेनसुपासहसमस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—कतरकठः। कतमकलापः। गोत्रं च चरणैः सहेतिजातित्वम्॥

जातिके परिप्रश्नमेंवर्त्तमान कतर और कतमशब्द समर्थ सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहों और वहसमास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६३ ॥

किं क्षेपे ॥ ६४ ॥

क्षेपेगम्ये किमेतच्छब्दरूपं सुपासह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—कुत्सितोराजा--किंराजायोनरक्षति॥

निन्दार्थमें किम्शब्दसमर्थ सुबन्तकेसाथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ॥ ६४ ॥

पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः ॥ ६५ ॥

पोटादिभिः सहजातिवाचिसुबन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा--इभपोटा—पोटा स्त्रीपुंसलक्षणा । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित्कतिपयम् । गृष्टिः-सकृत्प्रसूता--गोगृष्टिः । धेनुः-नवप्रसूतिका-गोधेनुः । वशा-वन्ध्या-गोवशा । वेहद्-गर्भपातिनी-गोवेहद् । वष्कयणी-तरुणवत्सा-गोवष्कयणी । कठप्रवक्ता । कठश्रोत्रियः । कठाध्यापकः । कठधूर्त्तः ॥

जातिवाचक सुबन्त पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय,गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक और धूर्त्तसुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६९ ॥

प्रशंसावचनैश्च ॥ ६६ ॥

प्रशंसावचनैः, च । एतैस्सहजातिवाचि सुबन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासः स्यात् । यथा—गोमतल्लिका, गोमचर्चिका, गोप्रकाण्डम्, गवोद्धः, गोतल्लजः । प्रशस्ता गौरित्यर्थः । मतल्लिकादयो नियतलिङ्गाः, नतुविशेष्यनिघ्नाः ॥

जाति वाचक सुबन्त प्रशंसा वाचक सुबन्तोंके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६६ ॥

युवाखलतिपलितवलिनजरतीभिः ६७

युवशब्दः खलत्यादिभिः समानाधिकरणैः सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्चसमासःस्यात् । यथा—युवाखलतिः-युवखलतिः । युवतिःखलती-युवखलती । युवापलितः-युवपलितः । युवतिः पलिता-युवपलिता । युवावलिनः-युववलिनः । युवतिर्वलिना-युववलिना । युवाजरन्--युवजरन् । युवतिर्जरती-युवजरती ॥

जवानगञ्जा, जी । जवानवृद्ध, वृद्धा । युवशब्दखलति, पलित, वलिन और

जरती समानाधिकरण सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६७॥

कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥ ६८ ॥

कृत्यप्रत्ययान्ता स्तुल्यपर्यायाश्च सुबन्ताः अजातिवचनेन सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-भोज्योष्णम् । पानीयशीतम् । तुल्यश्वेतः । सदृशश्वेतः ॥

गर्मभोजन । ठण्डापानी । बराबर श्वेत । कृत्यप्रत्ययान्त और तुल्य पर्यायवाले शब्द जातिभिन्न समानाधिकरण सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ६८ ॥

वर्णो वर्णेन ॥ ६९ ॥

वर्णः, वर्णेन । वर्णो वर्णेन समानाधिकरणेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः ॥

काला हरिण । लाल हरिण । वर्णविशेष वाचक सुबन्त वर्णविशेष वाचक समानाधिकरण सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञकहो ६९

कुमारः श्रमणादिभिः ॥ ७० ॥

कुमारशब्दः श्रमणादिभिः समानाधिकरणैस्सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-कुमारीश्रमणा-कुमारश्रमणा ॥

सुन्दर कन्या । कुमारशब्द श्रमणादि समानाधिकरण सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ७० ॥

चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ ७१ ॥

चतुष्पादः, गर्भिण्या । चतुष्पाज्जातिवाचिनो गर्भिणीशब्देन सह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा-गोगर्भिणी ॥

ग्यावन गौ। चतुष्पाद्, वाचक सुबन्त गर्भिणी शब्द के साथ समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ ७१ ॥

मयूरव्यंसकादयश्च ॥ ७२ ॥

म० दयः, अ। इमे निपात्यन्ते। यथा—मयूरोव्यंसकः—मयूरव्यंसकः। छात्रव्यंसकः ॥

धूर्त्तमोर। मयूरव्यंसक आदि शब्द तत्पुरुष समास में निपातित हैं ॥ ७२ ॥

इति द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अथ द्वितीयाऽध्यायस्य द्वितीय पादारम्भः।

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥ १ ॥

पू० त्तरम्, ए० देशिना, ए० करणे। अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—पूर्वकायस्य—पूर्वकायः। अपरकायः। अधरकायः। उत्तरकायः ॥ (सर्वोप्येकदेशोऽह्नासमस्यताम्) ॥ सङ्ख्या विसायेति ज्ञापकात्। मध्याह्नः। सायाह्नः ॥

एक अधिकरण में एकदेशी सुबन्त के साथ पूर्व, अपर, अधर, और उत्तर शब्द समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ १ ॥

अर्द्धं नपुंसकम् ॥ २ ॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबेऽसौ समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा—अर्धं पिप्पल्याः—अर्धपिप्पली ॥

समअंशवाचक नपुंसकलिङ्ग अर्द्धशब्द एकाधिकरण में एकदेशी सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो ॥ २ ॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥

द्वि० तुर्याणि, अन्य० स्याम् । इमान्येकदेशिना सुबन्तेनसह समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—द्वितीयं भिक्षायाः--द्वितीयभिक्षा । षष्ठी समासपक्षे, भिक्षाद्वितीयं वा । तृतीयं भिक्षायाः-तृतीयभिक्षा, भिक्षा तृतीयं वा । चतुर्थं भिक्षायाः--चतुर्थभिक्षा, भिक्षाचतुर्थं वा । तुर्यं भिक्षायाः-तुर्यभिक्षा, भिक्षातुर्यं वा ॥

एकाधिकरण में एकदेशी सुबन्त के साथ द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्यशब्द समासको प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ३ ॥

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥ ४ ॥

इमे द्वितीयान्तेन सह वा समस्येताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—प्राप्तो जीविकाम्-प्राप्तजीविकः, जीविकाप्राप्तो वा । आपन्नो जीविकाम्-आपन्नजीविकः, जीविकापन्नो वा ॥

प्राप्त और आपन्न सुबन्त द्वितीयान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ४ ॥

कालाः परिमाणिना ॥ ५ ॥

परिच्छेद्य वाचिना सुबन्तेन सह कालाः समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—मासो जातस्य यस्यस—मासजातः । द्व्यहजातः । द्वयोरह्नोः समाहारः-द्व्यहः ॥

कालवाचक सुबन्त परिमाण वाचक सुबन्तोंके साथ समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ५ ॥

नञ्[1] ॥ ६ ॥

नञ्सुपासह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—नब्राह्मणः—अब्राह्मणः ॥

नञ्सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ६ ॥

ईषदकृता ॥ ७

ईषत्, अकृता । ईषदित्ययंशब्दोऽकृदन्तेन सुपासह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । (ईषद्गुणवचनेनेतिवाच्यम्) ॥

यथा—ईषद्रक्तम् । ईषत्पिङ्गलः ॥

ईषद् (कुछ) यह शब्द कृदन्त से भिन्न सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो ॥ ७ ॥

षष्ठी ॥ ८ ॥

षष्ठ्यन्तं सुबन्तं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा—आर्याणांसमाजः-आर्य्यसमाजः॥(कृद्योगाषष्ठी समस्य त इतिवाच्यम्) इध्मव्रश्चनः ॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ ८ ॥

याजकादिभिश्च ॥ ९ ॥

या० दिभिः, च । एभिः सह षष्ठ्यन्तं समस्यताम्, तत्पुरुषश्च स-

१—(६ । ३ । ७३) इति नस्यलोपः ।

मासः स्यात्। यथा-ब्राह्मणानां याजकः-ब्राह्मणयाजकः। (गुणन्तरेण तरलोपश्चेति वाच्यम्)। सर्वेषांश्वेततरः-सर्वश्वेतः। सर्वेषांमहत्तरः-सर्वमहान् ॥

(तत्स्थैश्चगुणैः षष्ठी समस्यतइतिवाच्यम्) ॥ चन्दनगन्धः ॥

षष्ठयन्त सुबन्त याजकादिके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ ९ ॥

न निर्धारणे ॥ १० ॥

निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यताम्। यथा-नृणां द्विजः श्रेष्ठः ॥

(प्रतिपदाविधाना षष्ठी न समस्यत इतिवाच्यम्) ॥ सर्पिषोज्ञानम् ॥

निर्धारण (पृथक्त्व) में जो षष्ठी वह समास को प्राप्त न हो ॥ १० ॥

पूरणगुणसुहितार्थ सदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ॥ ११ ॥

पूरणाद्यर्थैः, सदादिभिश्च षष्ठी न समस्यताम्। यथा-छात्राणां पष्ठः। गुणे--काकस्य कार्ष्ण्यम्। सुहितार्था तृप्त्यर्थाः। फलानां सुहितः। सति। छात्रस्य कुर्वन्, कुर्वाणो वा। अव्यये। ब्राह्मस्य कृत्वा। तव्ये। ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्। समानाधिकरणे। पाणिनेः सूत्रकारस्य। किं च स्यात्, पूर्वनिपातस्य नियमः ॥

षष्ठी सुबन्त पूरण आदिके साथ समासको प्राप्त न हो ॥ ११ ॥

* याजक, पूजक, परिचारक, परिषेचक, परिवेषक, स्नातक, अध्यापक, उत्सादक, उद्वर्त्तक, होतृ, पोतृ, भर्तृ, रथगणक, पत्तिगरण, वृत्, इतियाजकादिः। श्लो०- क्रियानुगतिमास्थायलोकेख्यातिमुपागताः। ये कान्ताः पाचकाद्यास्ते द्रष्टव्यायाजकादिषु ॥

क्तेन च पूजायाम् ॥ १२ ॥

मतिबुद्धीति सूत्रेण विहितो यः क्त स्तदन्तेन षष्ठी न समस्यताम्। यथा-राज्ञांमतो, बुद्धः, पूजितो वा ॥

राजाओं से सत्कारित । पूजार्थ में षष्ठ्यन्त सुबन्त क्तान्त सुबन्तके साथ समास को प्राप्त न हो ॥ १२ ॥

अधिकरणवाचिना च ॥१३॥

अधिकरणवाचिना क्तेन सह षष्ठी न समस्यताम् । यथा-इदमेषाम्, आसितम्, गतम्, भुक्तम्, वा ॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त अधिकरण वाचक क्तान्त सुबन्त के साथ समासको प्राप्त न हो १३

कर्मणि च ॥ १४॥

उभय प्राप्तौ कर्मणि । इति या षष्ठी सा न समस्यताम् । यथा-आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन ॥

जो ग्वाला नहीं वह गौओं को दुहे तो आश्चर्य है । कर्म में जो षष्ठी वह समास को प्राप्त न हो ॥ १४ ॥

तृजकाभ्यां कर्त्तरि ॥ १५ ॥

कर्त्रर्थतृजकाभ्यां षष्ठ्या न समासः स्यात् । यथा-अपांस्रष्टा । ओदनस्य पाचकः ॥

जलको बनानेवाला । भातका पकानेवाला । कर्त्रर्थतृच् और अक के साथ षष्ठी का समास न हो ॥ १५ ॥

कर्त्तरि च ॥ १६ ॥

कर्त्तरि षष्ठ्या अकेन सह समासो न स्यात् । यथा-भवतः शायिका ॥

आपकी बुलानेवाली। कर्त्ता में अक प्रत्यय के साथ षष्ठी का समास न हो॥१६॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥ १७ ॥

एतयोरर्थयोरकेन सह नित्यं षष्ठी समस्यताम् , तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–उद्दालकपुष्पभञ्जिका-क्रीडाविशेषस्य सञ्ज्ञा । जीविकायाम् । दन्तलेखकः ॥

दाँत बनानेवाला । क्रीडा और जीविका अर्थ में अकप्रत्यय के साथ षष्ठी नित्य समासको प्राप्त हो और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञकहो ॥ १७ ॥

कुगतिप्रादयः ॥ १८ ॥

इमे समर्थेन सुबन्तेन सह नित्यं समस्यताम् , तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । कुत्सितः पुरुषः-कुपुरुषः । गति-उररीकृतम् । प्रादयः।दुर्निन्दायाम् । दुष्पुरुषः। स्वतीपूजायाम् । सुपुरुषः। अतिपुरुषः ॥

कुशब्दगतिसञ्ज्ञक और प्रादि समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों और वह समास तत्पुरुषसञ्ज्ञक हो ॥ १८ ॥

उपपदमतिङ् ॥ १९ ॥

उपपदम्, अतिङ् । उपपदमतिङन्तं सुबन्तं समर्थेन सह नित्यंसमस्यताम्,तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा–कुम्भंकरोतीति-कुम्भकारः॥

तिङ्भिन्न उपपद सुबन्त समर्थ सुबन्तके साथ नित्यसमासको प्राप्तहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ १९ ॥

अमैवाव्ययेन ॥ २० ॥

अमा, एव, अव्ययेन । अमैवतुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात् । यथा--स्वादुङ्कारंभुङ्क्ते ॥

स्वादिष्टकरके खाताहै। यदि उपपदका समास अव्ययके साथ होतो अमूही अ-व्ययके साथहो और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ २० ॥

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥

तृ० तीनि, अन्यतरस्याम्। (उपदंशस्तृतीयायाम्) इत्यादीन्युपपदानि अमन्तेन अव्ययेन सहवा समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा--मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते, मूलकोपदंशम् ॥

मूलीको काटकर खाताहै। तृतीयाआदि उपपद सुबन्त अमूहीके साथ विकल्पसे समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ २१ ॥

क्त्वा च ॥ २२ ॥

तृतीयाप्रभृतीनि उपपदानि क्त्वान्तेन सहवा समस्यन्ताम्, तत्पुरुषश्च समासः स्यात्। यथा--उच्चैः कृत्य, उच्चैः कृत्वा ॥

ऊंचाकरके। तृतीया आदि उपपद सुबन्त क्त्वाप्रत्यय के साथभी विकल्पसे समासको प्राप्तहों और वह समास तत्पुरुष संज्ञकहो ॥ २२ ॥

शेषोबहुव्रीहिः ॥ २३ ॥

शेषः, बहुव्रीहिः। अधिकारोऽयम् ॥

शेषसमास (२ । २ । २८) सूत्र तक बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २३ ॥

अनेकमन्यपदार्थे ॥ २४ ॥

अनेकम्, अ० र्थे। अनेकं सुबन्त मन्यपदार्थे वर्त्तमानं समस्यताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात्। यथा-प्राप्तमुदकं यंग्रामम्-सम्प्राप्तोदकोग्रामः। ऊढोरथोयेन-सऊढोरथोवृषभः। उपहतमुदकं यस्मै-सउपहतोदकोऽतिथिः।

उद्धृत ओदनोयस्याः-सोदधृतौदनास्थाली । विशाले लोचनेयस्य-सविशाललोचनः । वीराः पुरुषा यस्मिन् ग्रामे-सवीरपुरुषोग्रामः । प्रथमार्थे तुन-वृष्टेदेवेगतः । (प्रादिभ्यो धातुजस्यवाच्योवा-चोत्तरपदलोपः) ॥ प्रपतितपर्णमस्य-प्रपर्णः । प्रपलाशः ॥ (नञोऽस्त्यर्थानां वाच्योवाचोत्तरपदलोपः) ॥ अविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः । अविद्यमाना भार्या यस्यसोऽभार्य्यः ॥ (अव्ययानांचबहुव्रीहिर्वक्तव्यः) ॥ उच्चैर्मुखः । नीचैर्मुखः ॥ (सप्तम्युपमान पूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च) ॥ कण्ठेस्थितः कालो यस्य स कण्ठेकालः । उष्ट्रस्य मुखमिव मुखं यस्य स उष्ट्रमुखः । खरमुखः ॥ (समुदायविकारषष्ठ्याश्चबहुव्रीहि रुत्तर पदलोपश्चेतिवाच्यम्) ॥ केशानां सङ्घातः-केशसङ्घातः । केशसंघातश्चूडाऽस्य केशचूडः । सुवर्णविकारोऽलङ्कारोऽस्य-सुवर्णाऽलङ्कारः ॥

अन्यपदार्थमें वर्त्तमान अनेक सुबन्त समर्थ सुबन्तके साथ समासको प्राप्तहो और वह समास बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २४ ॥

सङ्ख्ययाऽव्ययाऽऽसन्नाऽदूराऽधिक-सङ्ख्याःसङ्ख्येये[1] ॥ २५ ॥

सङ्ख्येयार्थया सङ्ख्यया तयासह अव्ययादयः समस्यन्ताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात् । यथा-दशानां समीपेयेसन्ति ते-उपदशाः । नव, एकादशवा । आसन्नविंशाः । विंशते रासन्नाइत्यर्थः । अदूरत्रिंशाः । अधिकचत्वारिंशाः । द्वौ वा त्रयो वा,-द्वित्राः । द्विरावृत्तादश-द्विदशाः[2] । विंशतिरित्यर्थः ॥

सङ्ख्येय अर्थमें जोसङ्ख्या उसके साथ अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और

१—(५ । ४ । ७३) इतिडच् ॥ २—(६ । ४ । १४२) इति तिशब्दलोपः ॥

सङ्ख्यावाचक शब्द समासको प्राप्तहों और वहसमास बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २५ ॥

दिङ्नामान्यन्तराले ॥ २६ ॥

दिङ्नामानि, अन्तराले। दिशो नामान्यन्तराले वाच्ये समस्यन्ताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात् । यथा-दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्चदिशोऽन्तरालम्-दक्षिणपूर्वा । आग्नेयमित्यर्थः ॥

दिशाओं का अन्तराल (बीच) वाच्य हो तो दिशाके नामवाचक अनेक सुवन्त समासको प्राप्तहों और वहसमास बहुव्रीहि संज्ञकहो ॥ २६ ॥

तत्रतेनेदमितिसरूपे ॥ २७ ॥

तत्र, तेन, इदम्, इति, सरूपे । सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपोपपदे, तृतीयान्तेच प्रहरणविषये, इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्यताम्, कर्मव्यतीहारे द्योते सच बहुव्रीहिः समासःस्यात् । यथा-केशेषु,केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तम्-केशाकेशि । दण्डैश्च दण्डैश्च, प्रहृत्येदं युद्धंप्रवृत्तम्-दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि ॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त समानरूप शब्द इदम् इस अर्थ में परस्पर समास को प्राप्त हों और वह समास बहुव्रीहि संज्ञक हो ॥ २७ ॥

तेन सहेति तुल्ययोगे ॥ २८ ॥

तेन,सह,इति ,तुल्ययोगे। तुल्ययोगे वर्त्तमानं सहेत्येतत्तृतीयान्तेन सह समस्यताम्, बहुव्रीहिश्च समासः स्यात् । यथा-पुत्रेण सह-सपुत्रः, सह पुत्रो वा, आगतः ॥

बेटेके सहित आया। तुल्ययोगमें वर्त्तमान सह शब्द तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास बहुव्रीहि संज्ञक हो ॥ २८ ॥

१—(६ । ३ । १३७ ,इतेदर्घित्वम् । (५।४ । १२७) इतीच् ।२-(६। ३।८२) इति वेह सहस्यसः ।

चार्थे द्वन्द्वः ॥ २९ ॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्त्तमानं समस्यताम्, द्वन्द्वश्च समासः स्यात्। समुच्चयाऽन्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराः--चार्थाः । परस्पर निरपेक्षस्य अनेकस्य एकस्मिन्नन्वयः-समुच्चयः । अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वे-अन्वाचयः । मिलितानामन्वयः-इतरेतरयोगः । समूहः-समाहारः । तत्र ईश्वरम्, गुरुं च भजस्वेति समुच्चये। भिक्षामट गां चानयेत्यन्वाचये च । न समासः, असामर्थ्यात् । पाणी च पादौ च-पाणिपादम्, इतीतरेतरयोगे । अहं च त्वं च ते च तत्र गच्छामः समाहारे ॥

चकार के अर्थ में वर्त्तमान अनेक सुबन्त समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो और वह समास द्वन्द्व संज्ञक हो ॥ २९ ॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ ३० ॥

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । यथा-कष्टश्रितः । शङ्कुलाखण्डः । कपाटदारु। वृकभयम् । वेदविद्या । अक्षशौण्डः ॥

समास में उपसर्जन संज्ञक का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३० ॥

राजदन्तादिषु परम् ॥ ३१ ॥

एषुपर मुपसर्जनं प्रयोज्यम् । यथा-दन्तानां राजा-राजदन्तः । (धर्मादिष्वनियमः) ॥ अर्थधर्म्मौ, धर्म्मार्थौ ॥

राजदन्तादि गण में उपसर्जन संज्ञकका पर प्रयोग हो ॥ ३१ ॥

द्वन्द्वे घि ॥ ३२ ॥

द्वन्द्वे समासे घि सञ्ज्ञं पूर्वं स्यात्।यथा-कविश्च काकश्च=कविकाकौ ॥

१-(२।४।२) इति नपुंसक एकत्वम् ।

द्वन्द्व समास में घिसञ्ज्ञक का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३२ ॥

अजाद्यदन्तम् ॥ ३३ ॥

अजादि, अन्तम् । द्वन्द्वे समासेऽजाद्यन्तं पूर्वं स्यात् । यथा-अश्वेन्द्ररथाः ॥

द्वन्द्व समास में अजाद्यन्त का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३३ ॥

अल्पाच्तरम् ॥ ३४ ॥

द्वन्द्वे समासेऽल्पाच्तरं पूर्वं प्रयोज्यम् । यथा-प्लक्षन्यग्रोधौ ॥ (ऋतुनक्षत्राणां समानाक्षराणामानुपूर्व्येण) ॥ हेमन्तशिशिरवसन्ताः । कृत्तिकारोहिण्यौ । (लघ्वक्षरं पूर्वम्) ॥ कुशकाशम् ॥ (अभ्यर्हितं च) ॥ तापसपर्वतौ ॥ (वर्णानामानुपूर्व्येण) ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ॥ (भ्रातुर्ज्यायसः) ॥ रामलक्ष्मणौ ॥ (सङ्ख्याया अल्पीयस्याः) ॥ द्वित्राः । त्रिचतुराः । नवतिशतम् ॥

पीपल और वर्गद । द्वन्द्व समास में अल्प अच् वाले का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३४ ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥ ३५ ॥

बहुव्रीहौ समासे सप्तम्यन्तं विशेषणं च पूर्वं प्रयोज्यम् । यथा-कण्ठेकालः । चित्रगुः ॥ (सर्वनामसङ्ख्ययोरुपसङ्ख्यानम्) ॥ सर्वश्वेतः । द्विशुक्लः ॥ (मिथोऽन्ययोः समासे सङ्ख्यापूर्वम्) ॥ द्व्यन्यः ॥ (वाप्रियस्य) ॥ गुडप्रियः, प्रियगुडः ॥ (गड्वादेः परासप्तमी) ॥ गडुकण्ठः । क्वचिन्न वहेगडुः ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेषण का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३५ ॥

निष्ठा ॥ ३६ ॥

बहुव्रीहौ समासे निष्ठान्तं पूर्वं स्यात् । यथा—कृतकृत्यः । (जातिकालसुखादिभ्यः परानिष्ठा वाच्या) ॥ सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजातः । प्रायिकं चेदम्-कृतकटः ॥

बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त का पूर्व प्रयोग हो ॥ ३६ ॥

वाऽहिताग्न्यादिषु ॥ ३७ ॥

एषु वा निष्ठान्तं पूर्वं प्रयोज्यम् । यथा—आहिताग्निः, अग्न्याहितः ॥

रक्खाहुआ अग्नि । आहिताग्न्यादि में निष्ठान्त शब्द का विकल्प से पूर्व प्रयोग हो ॥ ३७ ॥

कडाराः कर्म्मधारये ॥ ३८ ॥

कडारादयः शब्दाः कर्मधारये समासे वा पूर्वं प्रयोज्याः । यथा—कडारजैमिनिः, जैमिनि कडारः ॥

कर्मधारय समास में कडार आदि शब्दों का विकल्प से पूर्व प्रयोग हो ॥ ३८ ॥

इति द्वितीयाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः

अथ द्वितीयाध्यास्य तृतीयः पादः ॥

अनभिहिते ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से आगे अनभिहित (जिसमें प्रत्यय न हुआ हो उस) का अधिकार है ॥ १ ॥

कर्म्मणि द्वितीया ॥ २ ॥

अनुक्ते कर्म्मणि द्वितीया विभक्तिः स्यात् । यथा—पाठं पठति ॥ (उभसर्वतसोः कार्य्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीया ऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते) ॥ उभयतो ग्रामम् । सर्वतोग्रामम् । धिग्यज्ञदत्तम् । उपर्युपरि ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । अधोऽधोग्रामम् ॥ (अभितः परितः समया निकषाहा प्रतियोगेषु दृश्यते) ॥ अभितोग्रामम् । उभयत इत्यर्थः । परितोग्रामम् सर्वतइत्यर्थः । समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । हा देवदत्तम् । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ॥

अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति हो ॥ २ ॥

तृतीया च होश्छन्दसि ॥ ३ ॥

छन्दसि विषये जुहोतेः कर्मणि कारके तृतीया स्याच्चाद्द्वितीया । यथा—यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति, यवागूं वा ॥

हव्य पदार्थ को अग्नि में डालता है । छन्दो विषय में हु धातु के कर्मकारक में विकल्प से तृतीया विभक्ति हो ॥ ३ ॥

अन्तराऽन्तरेणयुक्ते ॥ ४ ॥

आभ्यांयोगेद्वितीयास्यात् । यथा—अन्तरा त्वां च मां च नदी । धर्म्ममन्तरेण न सुखम् ॥

तेरे और मेरे बीच में नदी है । विना धर्म के सुख नहीं । अन्तरा और अन्तरेण के योगमें द्वितीया विभक्ति हो ॥ ४ ॥

१-पञ्चम्या स्तसिल् । धिग्निन्दार्थोऽयम् । उपर्युपरीति (८ । १ । ७) इति द्वित्वम् । २-समया निकषा शब्दौ समीपवचनौ गृह्येते ।

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ॥ ५ ॥

कालाध्वनोः, अत्यन्तसंयोगे। इह द्वितीयाविभक्तिः स्यात्। यथा-मासमधीते। क्रोशं कुटिलानदी ॥

लगातार मासभर पढ़ताहै। लगातार एककोसतक टेढ़ी नदीहै। अत्यन्त संयोग गम्यमान होतो काल और अध्ववाचक शब्दोंमें द्वितीया विभक्तिहो ॥ ५ ॥

अपवर्गे तृतीया ॥ ६ ॥

अपवर्गः-फलप्राप्तिः। तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे-तृतीयाविभक्तिःस्यात्। यथा-दिवसेन, क्रोशेन वा, अनुवाकोऽधीतः ॥

एक दिवसमें अथवा एक कोशमें अनुवाक पढ़ा। अपवर्ग गम्यमान होतो काल और अध्वके अत्यन्त संयोगमें तृतीया विभक्तिहो ॥ ६ ॥

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ ७ ॥

शक्तिद्वयमध्ये यौकालाध्वनौ ताभ्यामिमे विभक्ती स्याताम्। यथा-अद्यभुक्त्वाहं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्तास्मि। कर्त्तृशक्त्योर्मध्ये-ऽयंकालः। इहस्थोयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्यति। कर्त्तृकर्म-शक्त्योर्मध्येऽयं देशः।

मैं आज खाकर दोदिनमें खाऊंगा। यहां एककोशतक यह निशाना मारताहै। कारकोंके मध्यमें जोकाल और अध्व (मार्ग) वाचक शब्द उनसे पञ्चमी और सप्तमी विभक्तिहो ॥ ७ ॥

कर्मप्रवचनीययुक्तेद्वितीया ॥ ८ ॥

अनेन योगे द्वितीया विभक्तिः स्यात्। यथा-यज्ञमनुप्रावर्षत् ॥

कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया विभक्ति हो ॥ ८ ॥

यस्मादाधिकं यस्यचेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ ९ ॥

यस्मात्, अ० मं, यस्य, च, ई० स्र, तत्र. सं० मी। अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी विभक्तिः स्यात्। यथा—उपखार्य्यां द्रोणः। अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः, अधिपञ्चालेषु ब्रह्मदत्तः॥

खारी का द्रोण १६ वां अंश है अर्थात् खारी १२ मन ३२ सेरकी और द्रोण ३४ सेरका होता है। जिससे अधिक और जिसका ईश्वर वचन हो उस कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी विभक्ति हो ॥ ९ ॥

पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १० ॥

पञ्चमी, अपाङ्परिभिः। एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमीविभक्तिः स्यात्। यथा—अपमथुरायाः, परिमथुराया वृष्टोमेघः। आपाटलि पुत्राद् वृष्टोमेघः, आकुमारंयशः पाणिनेः॥

अप, आङ्, परि इन कर्मप्रवचनीयों के योग में पञ्चमी विभक्ति हो ॥ १० ॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ ११ ॥

तत्रकर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी विभक्तिः स्यात्। यथा—अभिमन्युरर्जुनात्प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्॥

अर्जुनका प्रतिनिधि अभिमन्यु। तिलोंसे उर्द बदलताहै। जिससे कि प्रतिनिधि और प्रतिदान (बदला) कियाजावेउसकर्मप्रवचनीयके योगमें पञ्चमी विभक्तिहो ॥ ११ ॥

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १२ ॥

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्म्मणिकारके इमे स्याताम्। यथा–ग्रामम्, ग्रामाय वा व्रजति ॥

गांव को जाता है। चेष्टा गम्यमान हो तो अध्व (मार्ग) वर्जित गत्यर्थक धातुओं के कर्म्म कारक में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १२ ॥

चतुर्थी सम्प्रदाने ॥ १३ ॥

सम्प्रदाने कारके चतुर्थी विभक्तिः स्यात्। यथा–छात्राय पुस्तकं ददाति ॥

सम्प्रदानकारक में चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १३ ॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्म्मणि स्थानिनः १४

क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य तस्यस्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य धातोस्तुमुनः कर्म्मणि चतुर्थी विभक्तिः स्यात्। यथा–फलेभ्यो-व्रजति। फलान्याहर्त्तुं व्रजतीत्यर्थः ॥

क्रियार्था क्रिया जिसके उपपदहो उस अप्रयुज्यमान धातुके कर्म कारक में चतुर्थी विभक्तिहो ॥ १४ ॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥ १५ ॥

तुमर्थात्,च, भाववचनात्। (भाववचनाश्च) इति योगेन योविहितोघञ् तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यथा–यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः ॥

तुमर्थ भाववचन प्रातिपदिकसे चतुर्थी विभक्तिहो ॥ १५ ॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्-योगाच्च ॥ १६ ॥

नमः०योगात्, च । एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । यथा—नमो ब्रह्मणे । स्वस्ति प्रजाभ्यः । अग्नयेस्वाहा । स्वधापितृभ्यः । अलंमल्लोमल्लाय । वषडग्नये ॥

ईश्वर के लिये नमस्कृति । प्रजाके लिये कल्याण । अग्नि के लिये स्वाहा । मातापिता को जल । मल्लमल्ल के लिये पर्याप्त है । अग्नि के लिये देना । नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषड् इन के योग में चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १६ ॥

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ॥ १७ ॥

मन्य० णिँ, अनादरे, विभाषा, अप्राणिषु । प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणिकारके चतुर्थीवास्यादनादरे । यथा—न त्वां तृणंमन्ये, तृणाय वा॥(अप्राणिष्वित्यपनीय नौकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्)॥ तेन न त्वां नावमन्नं वा मन्ये । न त्वां शुने, श्वानं वा मन्ये ॥

अनादर गम्यमान हो तो प्राणि वर्जित मन्य धातु के कर्म कारक में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति हो ॥ १७ ॥

कर्त्तृकरणयोस्तृतीया ॥ १८ ॥

अनभिहिते कर्त्तरि, करणे, च तृतीया स्यात् । यथा—केनेदं कृतम् । वाचावक्ति । (प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्) ॥ प्रकृत्याचारुः । प्रायेण याज्ञिकः । सुखेन दुःखेन वा प्रयातीत्यादि ॥

यह किसने किया । वाणी से कहता है । अनभिहित कर्त्ता और करण में तृतीया विभक्ति हो ॥ १८ ॥

१—(प०) उपपदविभक्तेः कारकाविभक्तिर्बलीयसी । यथा—नमस्करोमि भवन्तम् ॥
२—आदरे-अशमानं दृषदंमन्येमन्ये काष्ठमुलूखलम् । अन्धायास्तं सुतं मन्ये यस्य माता न पश्यति ॥

सहयुक्तेऽप्रधाने ॥ १९ ॥

सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात् । यथा-पुत्रेणसहागतः पिता । एवं साकम्, सार्द्धम् ॥

पितामय अपने पुत्र के आया । सहार्थ (साहित्य) से युक्त अप्रधान में तृतीया विभक्ति हो ॥ १९ ॥

येनाऽङ्गविकारः ॥ २० ॥

येनाङ्गेन विकृतेन आङ्गिनो विकारोलच्यते ततस्तृतीया स्यात् । यथा-अक्ष्णा काणः । अक्षि सम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः ॥

जिस अङ्गके विकृत होने से अङ्गीका विकार लक्षित हो उससे तृतीया विभक्ति हों ॥ २० ॥

इत्थंभूतलक्षणे ॥ २१ ॥

कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात् । यथा-किं भवता कमण्डलुना मस्करी दृष्टः ॥

क्या आपने कमण्डलु वाला संन्यासी देखा है । इत्थं भूत लक्षण (ऐसाचिह्न) में तृतीया विभक्ति हो ॥ २१ ॥

सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्म्मणि ॥ २२ ॥

सञ्ज्ञः, अन्यतरस्याम्, कर्मणि । संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि कारके तृतीया वा स्यात् । यथा-पित्रा, पितरं वा संजानीते ॥

पिता को सम्यक् जानता है । सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्मकारक में विकल्प से तृतीया विभक्ति हो ॥ २२ ॥

हेतौ ॥ २३ ॥

हेत्वर्थे तृतीया स्यात् । यथा–विद्यया यशः ॥

विद्या से यश । हेतु वाचक शब्द में तृतीया विभक्ति हो ॥ २३ ॥

अकर्त्तर्यृणे पञ्चमी ॥ २४ ॥

अकर्त्तरि, ऋणे, पञ्चमी । कर्तृवर्जितं यद्दणं हेतुभूतं ततः पञ्चमी स्यात् । यथा–सहस्राद्बद्धः ॥

सहस्र मुद्रा का ऋणी है । कर्तृ वर्जित ऋण हेतु में पञ्चमी विभक्ति हो ॥२४॥

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ २५ ॥

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात् । यथा–जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः ॥

मूर्खता से बँधा है । स्त्रीलिङ्ग भिन्न गुण हेतु में विकल्प से पञ्चमी विभक्ति हो २५

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ २६ ॥

हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योते षष्ठी स्यात् । यथा–पठनस्य हेतोर्वसति ॥

पढ़ने के कारण रहता है । हेतु शब्द के प्रयोग में हेतु द्योत्य हो तो षष्ठी विभक्ति हो ॥ २६ ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ २७ ॥

सर्वनाम्नः, तृतीया, च, । सर्वनाम्नोहेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात्, षष्ठी च । यथा–केन हेतुना वसति, कस्य हेतोर्वा (निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्) ॥ किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मान्निमित्ताद्, कस्यनिमित्तस्य, कास्मिन्निमित्ते । एवं हि किं कारणं को हेतुः, किं प्रयोजनमित्यादि ॥

किसकारण से रहता है। सर्वनाम वाचक हेतु के प्रयोग में हेतु द्योत्य हो तो तृतीया और षष्ठी विभक्ति हो ॥ २७ ॥

अपादाने पञ्चमी ॥ २८ ॥

अपादाने कारके पञ्चमी स्यात्। यथा—ग्रामादायाति॥ (ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च) ॥ प्रासादात् प्रेक्षते । आसनात्प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य, आसने उपविश्य, प्रेक्षत इत्यर्थः । श्वशुराल्लज्जते । श्वशुरंवीक्ष्येत्यर्थः ॥ (प्रश्नाख्यानयोश्चवाच्या)॥ कुतोभवान्, इन्द्रप्रस्थात् ॥ (यतश्चाध्वकालनिर्माणंतत्रपञ्चमी) ॥ वनाद्ग्रामोयोजनं योजनेनवा ॥ (तद्युक्तात्काले सप्तमी वाच्या) कार्तिक्याआग्रहायणीमासे॥ (अध्वनः प्रथमा सप्तमीच वाच्या) मुरादाबादतस्सम्भलश्चत्वारि योजनानि चतुर्षुवेति ॥

गांवसे आताहै । अपादानकारकमें पञ्चमी विभक्तिहो ॥ २८ ॥

अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ २९ ॥

एभियोंगे पञ्चमी स्यात् । अन्यइत्यर्थग्रहणम् । यथा—अन्यो, भिन्नो वा देवदत्ताद् । अराद्वनात् । ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः । इतरो देवदत्तात् । दिशि दृष्टः शब्दो दिक्छब्दः । तेन सम्प्रति देशकालवृत्तिना ग्रामात्पूर्वो वृक्षः । योगेऽपिभवति । चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः । प्राग्ग्रामाद् । आच्¹ । दक्षिणाग्रामाद् । आहि । दक्षिणाहिग्रामाद् ॥

देवदत्त से भिन्न । वनके पास या दूर । देवदत्त से विरोधी । बिनाज्ञानके मुक्ति नहीं होती । गांव से पहिला वृक्ष, चैत्रसे पहिला फागुन । गांव से पूर्वकी ओर ।

१-(५ । ३ । ३७, ३८) इत्याजाही प्रत्ययौ ।

गांव से दक्षिण की ओर या दूर। अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूत्तर-पद, आच्, और आहिशब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति हो ॥ २९ ॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥ ३० ॥

षष्ठी, अतसर्थप्रत्ययेन। एतद्योगे षष्ठी स्यात्। यथा—नगरस्य दक्षिणतः ॥

नगर के दक्षिण की ओर। अतसर्थ प्रत्ययके योग में षष्ठी विभक्ति हो ॥३०॥

एनपा द्वितीया ॥ ३१ ॥

एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात्। एनपेति योगविभागात् षष्ठ्यपि। यथा—दक्षिणेन ग्रामम्, ग्रामस्य वा। दक्षिणस्यामदूर इत्यर्थः ॥

एनप् प्रत्ययान्त के योगमें द्वितीयाविभक्ति हो ॥ ३१ ॥

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ३२ ॥

पृ० नानाभिः, तृतीया, अन्यतरस्याम्। एभिर्योगे तृतीया स्यात्, पञ्चमीद्वितीये च। अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चयार्थम्। पञ्चमी द्वितीये चाऽनुवर्त्तेते। यथा—पृथक् सोमदत्तेन, सोमदत्ताद्, सोमदत्तं वा। विना सोमदत्तेन, सोमदत्ताद्, सोमदत्तं वा। नाना सोमदत्तेन, सोमदत्तात्, सोमदत्तं वा ॥

विना सोमदत्तके [१]। पृथक्, विना और नाना शब्द के योगमें तृतीया पञ्चमी और द्वितीया विभक्ति हो ॥ ३२ ॥

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्याऽसत्त्ववचनस्य ॥ ३३ ॥

१-(५ । ३ । ३५) इत्येनप्।

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे कारके तृतीयासप्तम्यौ स्याताम् । यथा-स्तोकेन, स्तोकाद्वामुक्तः । अल्पेन, अल्पाद्वा मुक्तः । कृच्छ्रेण, कृच्छ्राद्वा मुक्तः । कतिपयेन, कतिपयाद्वा मुक्तः ॥

थोड़े या कुछ से छूटा२ । दुःखसे दूर हुआ । कुछसे छूटा । असत्व (अद्रव्य) वाचक स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय इनके करण कारक में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३३ ॥

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥३४॥

दू० कार्थैः, षष्ठी, अन्यतरस्याम् । एभिर्योगे षष्ठीपञ्चम्यौस्याताम् । यथा-दूरम्, निकटम्, ग्रामस्य, ग्रामाद्वा ॥

गांव से दूर, पास । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दोंके योग में षष्ठी और पञ्चमी विभक्ति हो ॥ ३४ ॥

दूरान्तिकार्थेभ्योद्वितीया च ॥ ३५ ॥

दू० कार्थेभ्यः, द्वितीया, च । एभ्योद्वितीयास्याच्चात् पञ्चमीतृतीये च ॥ प्रातिपदिकार्थ मात्रे विधिरयम् । यथा-ग्रामस्यदूरम्, दूरात्, दूरेण वा । नगरस्य-अन्तिकम्, अन्तिकात्, अन्तिकेन वा ॥

शहर के पास । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दों से द्वितीया पञ्चमी और तृतीया विभक्ति हो ॥ ३५ ॥

सप्तम्यधि करणे च ॥ ३६ ॥

सप्तमी, अधिकरणे, च । अधिकरणे कारके सप्तमी स्यात्, चाद्दूरान्तिकार्थेभ्यश्च । यथा-स्थाल्यां पचति, मोक्षे इच्छामि । वनस्य दूरे, अन्तिके वा ॥ (क्तस्येन् विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्या-

नम्) ॥ अधीती व्याकरणे । अधीतमनेनेति विग्रहे । (इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८) इतिकर्त्तरीनिः ॥ (साध्वसाधु प्रयोगे-च) ॥ साधुर्देवदत्तो मातरि । असाधुःपितरि ॥ (निमित्तात्-कर्मयोगे) ॥ निमित्तमिह फलम् । योगः-संयोगः समवायात्मकः ॥ चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥ १ ॥ हेतौ तृतीयाऽत्र प्राप्ता तन्निवारणार्थम् । सीमा—अण्डकोशः । पुष्कलको-गन्धमृगः । चमरीम्-मृगीं चमरोमृगभेद विशेषः ॥

बटलोई में पकाता है । दूरार्थ, अन्तिकार्थ और अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३६ ॥

यस्य^६ च^अ भावेन भावलक्षणम् ॥ ३७ ॥

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततस्सप्तमी स्यात् । यथा-गोषु दुह्यमानासु गतः ॥

जिस की क्रिया स अन्य क्रिया लक्षित हो उससे सप्तमी विभक्ति हो ॥ ३७ ॥

षष्ठी^१ चा^अऽनादरे ॥ ३८ ॥

अनादराऽधिक्ये भावलक्षणे षष्ठी सप्तम्यौ स्याताम् । यथा-रुदति, रुदतोवा प्राव्रजीत् ॥

पुत्रादिको रोताहुआ छोड़कर संन्यासी होगया । जिसकी क्रियासे अधिक अनादरसहित इतर क्रिया लक्षित होवे उससे षष्ठी और सप्तमी विभक्तिहो ॥ ३८ ॥

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभू-प्रसूतैश्च ॥ ३९ ॥

स्वामी०प्रसूतैः,च। एभिः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्याताम्। यथा—क्षेत्रस्य, क्षेत्रेवास्वामी। भूमेः, भूम्यांवेश्वरः। भूमेः, भूम्यांवाधिपतिः। भूमेः, भूम्यांवादायादः। मम, मयिवा साक्षी। तस्य, तस्मिन्वा प्रतिभूः। गवां, गोषुवाप्रसूतः॥

खेतका मालिक। भूमिका स्वामी। भूमिका हिस्सेदार। मेरा गवाह। उसका ज़ामिन। गौओं का ही अनुभव है जिसको। स्वामिन्, ईश्वर, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, और प्रसूत शब्दके योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो॥ ३९॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चाऽसेवायाम्॥४०॥

आभ्यां योगे षष्ठी सप्तम्यौ स्यातां तात्पर्येऽर्थे। यथा—आयुक्तो-व्यापारितः,आयुक्तः कुशलोवा पुस्तक लेखने,पुस्तक लेखनस्य वा॥

तात्पर्य के लिये पुस्तक लिखता है। आसेवा गम्यमान हो तो आयुक्त और कुशल शब्दों के योगमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो॥ ४०॥

यतश्च निर्धारणम्॥ ४१॥

यतः, च,निर्धारणम्। जातिगुणक्रियासञ्ज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्,यतस्ततषष्ठीसप्तम्यौ स्याताम्। यथा—नृणां नृषु वा विप्राः श्रेष्ठाः। गवां गोषु वा कृष्णाबहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा यज्ञदत्तः पटुः॥

मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। गौओं में काली गाय अधिक दूध देनेवाली है। जानेवालों में दौड़नेवाला शीघ्री है। विद्यार्थिओं में यज्ञदत्त चतुर है। जिससे निर्धारण हो उस में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हो॥ ४१॥

पञ्चमी विभक्ते:॥ ४२॥

विभागो विभक्तं निर्धारणस्य यत्रभेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्। यथा— माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः ॥

पटना निवासिओं से मथुराके निवासी बड़े धनी हैं। जिस निर्द्धारणके आश्रय में विभक्त (विभाग) हो उस में पञ्चमी विभक्ति हो ॥ ४२ ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायांसप्तम्यप्रतेः।४३।

सा० भ्याम्, अर्चायाम्, सप्तमी, अप्रतेः। आभ्या योगे सप्तमी स्यादर्चायां, न तु प्रतेः प्रयोगे । यथा—मातरि साधुर्निपुणो वा ॥ (अप्रत्यादिभिरिति वाच्यम्) ॥ साधुर्निपुणोवा मातरंप्रति, पर्यनुवा ॥

माता की सेवा करनेवाला। अर्चागम्यमान हो तो प्रतिभिन्न साधु और निपुण शब्दके योग में सप्तमी विभक्ति हो ॥ ४३ ॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ ४४ ॥

आभ्यां योगे तृतीया स्याचात् सप्तमी। यथा—प्रसितः, उत्सुकोवा केशैः, केशेषु वा ॥

बालों के संभालने में लगाहुआ। प्रसित और उत्सुक के योग में तृतीया आर सप्तमी विभक्ति हो ॥ ४४ ॥

नक्षत्रे च लुपि ॥ ४५ ॥

लुबन्तान्नक्षत्रशब्दात्तृतीया सप्तम्यौ स्याताम्। अधिकरणे-यथा— पुष्येण, पुष्ये वा पायसमश्नीयात् ॥

पुष्य में खीर खावे। लुबन्त नक्षत्र वाचक शब्द से तृतीया और सप्तमी विभक्तिहो४५

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचन-

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ ४६ ॥

प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे, परिमाणमात्रे, सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। यथा-उच्चैः। नीचैः। बालः। कुमारी। वनम्। द्रोणः। खारी। एकः। द्वौ। बहवः॥

प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और वचन(सङ्ख्या मात्र में प्रथमा विभक्ति हो ॥ ४६ ॥

सम्बोधने च ॥ ४७ ॥

सम्बोधनेऽपि प्रथमा स्यात्। हे नर! ॥

सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति हो ॥ ४७ ॥

साऽऽमन्त्रितम् ॥ ४८ ॥

सम्बोधने या प्रथमा तदन्त मामन्त्रितसञ्ज्ञं स्यात्। आमन्त्रितप्रदेशा आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवद् इत्येवमादयः यथा-अग्नेनयसुपथा ॥

हे परमात्मन्! सुमार्गपर चला। सम्बोधन में जो प्रथमा वह आमन्त्रितसंज्ञक हो ॥ ४८ ॥

एकवचनं सम्बुद्धिः ॥ ४९ ॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसञ्ज्ञं स्यात्। हे बटो! ॥

अयि लड़के। सम्बोधन का जो एकवचन वह सम्बुद्धि संज्ञक हो ॥ ४९ ॥

षष्ठी शेषे ॥ ५० ॥

कर्म्मादिभ्योऽन्यः प्रातिपदिकार्थ व्यतिरक्तः स्वस्वामिसम्बन्धादिः शेषः तत्र षष्ठी स्यात्। यथा-मनुष्यस्य धर्म्मः ॥

१-(७ । ३ । १०८) इति गुणादेशः । (६ । १ । ६९) इति सुलोपः ।

शेष स्व स्वामि आदि सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ५० ॥

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ॥ ५१ ॥

ज्ञः, अविदर्थस्य, करणे । जानातेरज्ञानार्थस्यकरणे कारके शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात् । यथा—सर्पिषोज्ञानम् ॥

घृतका ज्ञान है परन्तु वास्तव में घृत नहीं है । विदर्थ (ज्ञानार्थ) से भिन्न ज्ञा धातु के शेष करण कारक में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ५१ ॥

अधीगर्थदयेशां कर्मणि ॥ ५२ ॥

एषां कर्म्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । यथा—मातुः स्मरति । सर्पिषोदयनमीशनंवा ॥

माताको यादकरता है । घृतकादेना अथवा ऐश्वर्यत्व । अधीगर्थ (स्मरणार्थ) दय, ईश इनधातुओंके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५२ ॥

कृञः प्रतियत्ने ॥ ५३ ॥

कृञः कर्मणि कारके शेषे षष्ठी स्याद् गुणाधाने । यथा—एधोदकस्योपस्कुरुते ॥

कृञ् धातुके शेष कर्ममें प्रतियत्न गम्यमान होनेपर षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५३ ॥

रुजार्थानांभाववचनानामज्वरे ॥ ५४ ॥

रु० नाम्, भाव० नाम्, अज्वरे । भावकर्त्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां कर्मणि कारके शेषे षष्ठी स्यात् । यथा—चौरस्य रुजति रोगः ।पिशुनस्यामयत्यामयः॥ (अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्) ॥ चौरं संतापयति तापः ॥

चोरको रोग प्राप्त होताहै । चुग़लको रोग प्राप्त होताहै । ज्वर वर्जित रुजार्थक भाववाचक धातुओंके शेष कर्ममें षष्ठी विभक्तिहो ॥ १४ ॥

आशिषि नाथः ॥ ५५ ॥

आशीरर्थस्यनाथतेःकर्मणि कारके षष्ठी स्यात् । यथा—मधुनो नाथते ॥

मिष्टका आशीर्वाद देताहै । आशीर्वाद अर्थ में नाथ धातुके शेष कर्म कारकमें षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५१ ॥

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ॥ ५६ ॥

हिंसार्थानामेषां शेषे कर्म्मणिकारके षष्ठी स्यात् । यथा—चौरस्योज्जासनम् । निप्रौ-संहतौ, विपर्यस्तौ, व्यस्तौवा । चौरस्यनिप्रहणनम्, प्रणिहननम्, निहननम्, प्रहणनम् वा । चौरस्योन्नाटनम् । चौरस्यक्राथनम् । चौरस्यपेषणम् ॥

चौरके लिये दुःख । हिंसार्थ में जासिनि प्र हन नाट क्राथ और पिष धातुके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५६ ॥

व्यवहृपणोस्समर्थयोः ॥ ५७ ॥

शेषे कर्मणि कारके षष्ठी स्यात् । द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थत्वम् । यथा—शतस्य—व्यवहरणंपणनंवा ॥

सौसे क्रय विक्रय करता है अथवा जुआ खेलता है । समानार्थ व्यवहृ और पण धातुके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५७ ॥

दिवस्तदर्थस्य ॥ ५८ ॥

दिवः, तदर्थस्य । द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि कारके षष्ठी स्यात् । यथा—सहस्रस्य दीव्यति ॥

हज़ार से क्रय विक्रय करता है याजुआ खेलता है । तदर्थ (क्रय विक्रय द्यूतार्थ) दिव धातुके शेष कर्म में षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५८ ॥

विभाषोपसर्गे ॥ ५९ ॥

विभाषा, उपसर्गे। उपसर्गे सति दिवस्तदर्थस्य कर्मणि कारके वा षष्ठी स्यात् । यथा—सहस्रस्य, सहस्रंवा प्रतिदीव्यति ॥

उपसर्ग पूर्वक तदर्थ दिवधातुके शेष कर्म कारक में विकल्प से षष्ठी विभक्तिहो ॥ ५९॥

द्वितीया ब्राह्मणे ॥ ६० ॥

ब्राह्मणविषये प्रयोगे दिवस्तदर्थस्यकर्मणिकारके द्वितीया स्यात् । यथा—गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः ॥

इसकी सभा में उसदिन गौ का क्रय विक्रय या जुआ खेलें । ब्राह्मण ग्रन्थ विषयक प्रयोग में व्यवहारार्थ दिवधातु के कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति हो ६०

प्रेष्य ब्रुवोर्हविषोदेवतासम्प्रदाने॥६१॥

प्रेष्यब्रुवोः, हविषः, देव० दाने । देवता सम्प्रदानार्थे वर्त्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणोर्हविर्विशेषस्य वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात् । यथा—अग्नये घृतस्य हविषः-प्रेष्य, अनुब्रूहि वा ॥

अग्निके लिये घृत दे या रख । देवता सम्प्रदान गम्यमान हो तो प्रेष्य और ब्रुव धातु के हविष प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६१ ॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ६२ ॥

षष्ठी स्यात् । यथा-पुरुष मृगश्चन्द्रमसः, चन्द्रमसे वा ॥

शुद्धस्वरूप जगदीशके लिये । छन्दविषय में चतुर्थी के अर्थमें बहुल करके षष्ठी हो ॥ ६२ ॥

यजेश्च करणे ॥ ६३ ॥

यजेः, च, करणे । छन्दसिविषये यजेः करणे कारके बहुलं षष्ठी स्यात् । यथा—घृतस्य घृतेन वा यजते ॥

घीसे यजन करता है। छन्द विषयमें यज धातु के करण कारक में बहुल करके षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६३ ॥

कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे॥ ६४ ॥

कृत्वोर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे षष्ठी स्यात् । यथा—पञ्चकृत्वोऽह्नो भुङ्क्ते । द्विरह्नोऽधीते ॥

दिनमें पांच वार खाता है। दोवार दिन में पढ़ता है । कृत्वोर्थ प्रत्ययों का प्रयोग हो तो काल वाचक तथा अधिकरण में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६४ ॥

कर्त्तृकर्मणोः कृति ॥ ६५ ॥

कृत्प्रयोगे कर्त्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात् । यथा—ईश्वरस्य कृतिः । जगतः कर्त्ता विधाता वै ॥

ईश्वरका वनाया । जगतकाकर्त्ता ईश्वर ही है । कृत्प्रत्यय के सम्बन्ध होनेपर कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६५ ॥

उभयप्राप्तौ कर्मणि ॥ ६६ ॥

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात् । यथा—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपालकेन। (अकाकारयोः स्त्रीप्रत्य-

१- ५ । ४ । १७) इति कृत्वसुच् । २ (५ । ४ । १८) इति सुच् ।

ययोः प्रयोगेनेति वाच्यम्) ॥ भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम् ॥ (शेषे विभाषा) ॥ विचित्रा जगतः कृतिरीश्वरस्य, ईश्वरेण वा ॥

कृत्प्रत्यय के सम्बन्ध में कर्त्ता कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त हो तो कर्ममें ही हो ॥ ६६ ॥

क्तस्य च वर्त्तमाने ॥ ६७ ॥

वर्त्तमानार्थस्य क्तस्य प्रयोगे षष्ठी स्यात् । यथा—राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ॥

राजाओं का इष्ट, राजाओं का ज्ञात, राजाओं का सत्कारित । वर्त्तमान में (३ । २ । १८८) विहित क्तप्रत्यय के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६७ ॥

अधिकरणवाचिनश्च ॥ ६८ ॥

अ० चिनः, च । क्तस्य प्रयोगे षष्ठी स्यात् । यथा—इदमेषा मासितम्, शयितं, गतं, भुक्तं वा ॥

यह इनकी बैठक, सोना, जाना, खाना है । अधिकरण वाची क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति हो ॥ ६८ ॥

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ॥ ६९ ॥

एतेषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात् । यथा--लादेशः- कुर्वन्, कुर्वाणो वा सृष्टिमीश्वरः । उ--सभां दिदृक्षुः । उक--दैत्यान् घातको रामः । (कमेरनिषेधः) ॥ वेश्यायाः कामुकः खलः । अव्ययम्--जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्त्तुम् । निष्ठा--रामेण हता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् रामः । खलर्थाः--ईषत्करः प्रपञ्चस्तेन । तृन्निति प्रत्याहारः-शतृ शानचाविति (३ । २ । १२४) तृनो (३ । २ । १३५) नकारात् । शानन्-सोमंपवमानः । चानश्-आत्मानं मण्डयमानः । शतृ-

वेदमधीयन्। तृन्-कर्त्ता लोकान्॥ (द्विषः शतुर्वा) ॥ चौरस्य, चौरं वा द्विषन् ॥

ईश्वर सृष्टिको करताहुआ। सभा को देखने की इच्छा करनेवाला। दैत्यों को मारने वालेराम। वेश्यावाजदुष्ट। संसार को बनाकर, सुखसे करने को। रामने दैत्यों को मारा। उसने थोड़ा प्रपञ्च किया। सोम को पवित्र करता हुआ। अपने आपको सजाता हुआ। वेदको पढ़ता हुआ। लोकों का बनाने वाला। चोरसे द्वेष करता हुआ। ल, उ, उक्, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ और तृन् प्रत्ययान्त के योगमें षष्ठी विभक्ति न हो ॥ ६९ ॥

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ ७० ॥

अकेनोः, भवि० र्ययोः। भविष्यत्यकस्य, भविष्यदाधमर्ण्योर्थेन-च प्रयोगे षष्ठी नस्यात्। यथा—साधून् पालकोव्रजति। ग्रामंगामी, शतंदायी ॥

सज्जनों का पालन करने वाला जाता है। गांवको जानेवाला, सौदेनेवाला। भविष्यकालमें विहित अक भविष्यत् और आधमर्ण्य अर्थ में विहितइन इसके योगमे षष्ठी विभक्तिनहो ॥ ७० ॥

कृत्यानां कर्त्तरि वा ॥ ७१ ॥

कृत्याना प्रयोगे कर्त्तरि वा षष्ठी स्यात्। यथा—तेन, तस्य वा लेखो लेख्यः ॥

उसको लेख लिखना चाहिये। कृत्य प्रत्ययके प्रयोगहोनेपर कर्त्ता में विकल्प से षष्ठीहो ॥ ७१ ॥

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्य-तरस्याम् ॥ ७२ ॥

तुल्यार्थैः, अतुलोपमाभ्याम्, तृतीया, अन्यतरस्याम्। तुलोपमा-

१-(३। २। १२८) इति शानन्।

शब्दौ वर्जयित्वा तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात् पक्षे षष्ठी। यथा--तुल्यः, सदृशः, समो वा देवदत्तस्य देवदत्तेन वा ॥

देवदत्तके सदृश। तुला और उपमाभिन्न तुल्यार्थ शब्दोंके योग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति विकल्पसे हो ॥ ७२ ॥

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशल-सुखार्थहितैः ॥ ७३ ॥

चतुर्थी, च, आशिषि,आयु० हितैः। एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा स्यात् पक्षे षष्ठी। यथा-आशिषि-आयुष्यं,चिरञ्जीवितं देवदत्ताय देवदत्तस्य वाभूयात्। एवमेव मद्रम्, भद्रम्, कुशलम्, निरामयम्; सुखम्, शम्, अर्थः, प्रयोजनम्, हितम्, पथ्यम्, वाभूयात् ॥

हे परमात्मन्! देवदत्त सुखपूर्वक रहे। आशिष् अर्थगम्यमान होतो आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित के योगमें षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति हो ॥ ७३ ॥

इतिद्वितीयाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

द्विगुरेकवचनम् ॥ १ ॥

द्विगुः,एकवचनम्। द्विग्वर्थः समाहारः समास एकवचनं स्यात्। यथा-दशपूलाः समाहृताः—दशपूली ॥

दशपूलों का समूह। द्विगु अर्थवाला समाहार समास एकवचनहो ॥ १ ॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥ २ ॥

द्वन्द्वः,च, प्रा० नाम्। एषां द्वन्द्व एकवत्स्यात्। यथा—पाणिपादम्। मार्दङ्गिकपाणविकम्। रथिकाश्वारोहम् ॥

१—(२।४।१७) इतिनपुंसकत्वम्। (४।१।२१) इतिङीप्।

हाथपैर। मृदङ्गऔर ढोल वजाने वाले। रथवान् और सवार। प्राण्यङ्ग, तुर्याङ्ग और सेनाङ्गों का द्वन्द्व समास एकवचनहो ॥ २ ॥

अनुवादे चरणानाम् ॥ ३ ॥

चरणानां द्वन्द्व एकवत्स्यादनुवादेगम्ये ॥ (स्थेणोर्लुङीतिवक्तव्यम्) ॥यथा-उदगात्कठकालापम् । प्रत्यष्ठात्कठकौथुमम् ॥

अनुवाद गम्यमान होतो चरणवाचकों का द्वन्द्व एकवचनहो ॥ ३ ॥

अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥ ४ ॥

अ० क्रतुः, अ० सकम् । यजुर्वेदे विहितो यः क्रतुः तद्वाचिनामनपुंसकलिङ्गानां द्वन्द्वे एकवत्स्यात् । यथा-अर्काश्वमेधम् ॥

अर्क और अश्वमेध (यज्ञ)। नपुंसक भिन्न अध्वर्युक्रतु (यजुर्वेद में कथितवड़ेनाम) वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचनहो ॥ ४

अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ॥ ५ ॥

अध्ययनतः, अ० ख्यानाम् । अध्ययन निमित्तेन प्रत्यासन्ना आख्या येषां तेषां द्वन्द्व एकवत्स्यात् । यथा-अष्टाध्यायी महाभाष्यम् ॥

अष्टाध्यायी और महाभाष्य। अध्ययन निमित्त से अविप्रकृष्टाख्यों (एक दूसरे के पश्चात् पढ़ने योग्य ग्रन्थों) का द्वन्द्व एकवत्‌हो ॥ ५ ॥

जातिरप्राणिनाम् ॥ ६ ॥

जातिः, अ० नाम् । प्राणिवर्जितजातिवाचिनां द्वन्द्वएकवत् स्यात् । यथा--आराशस्त्रि ॥

आरा और आरी। प्राणिवर्जित जाति वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचन हो॥६॥

* चरणशब्दः कठकाला पादिषु शाखा भेदेषु मुख्यस्तदध्यायिषु पुरुषेषु गौणः ।

विशिष्टलिङ्गोनदीदेशोऽग्रामाः ॥७॥

विशिष्टलिङ्गः, नदीदेशः, अग्रामाः । ग्रामवर्जितनदीदेशवाचिनां भिन्नलिङ्गानां समाहारेद्वन्द्वएकवत् स्यात् । यथा—गङ्गा च शोणश्च--गङ्गाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च-कुरुकुरुक्षेत्रम् ॥

गङ्गा और शोण । कुरु और कुरुक्षेत्र । ग्रामवर्जित भिन्नलिङ्ग नदी वाचक और देश वाचकों का द्वन्द्व एकवचन हो ॥ ७ ॥

क्षुद्रजन्तवः ॥ ८ ॥

एतेषां समाहारे द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा--दंशाश्च मशकाश्च-दंशमशकम् ॥

डांस और मसे । क्षुद्र जन्तु वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवत् हो ॥ ८ ॥

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ ९ ॥

येषां नित्यो विरोधस्तद्वाचिनां शब्दानां द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा—मार्जारमूषकम् । अहिनकुलम् ॥

बिलार और मूसा । सांप और नौला । जिनका आपस में नित्य विरोध है उनको कहनेवाले शब्दों का द्वन्द्व एकवचन हो ॥ ९ ॥

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ १० ॥

शूद्राणाम्, अनि० नाम् । अबहिष्कृतानां शूद्राणां द्वन्द्व एकवत् स्यात् । यथा—तक्षाऽयस्कारम् ॥

बढ़ई और लुहार । अनिरवसित (जिनके पात्र या हाथ का द्विज जल पीसक्ते हैं) शूद्र वाचक शब्दोंका द्वन्द्व एकवचन हो ॥ १० ॥

गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ ११ ॥

इमानि यथोच्चारितानि साधूनि स्युः । यथा-गवाश्वम् । दासीदासमित्यादि ॥

बैल और घोड़ा । गवाश्व आदि शब्द द्वन्द्व समास में नपुंसकलिङ्ग एक वचनान्त निपातित हैं ॥ ११ ॥

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ॥ १२ ॥

वृक्षादीनां दशानां द्वन्द्वो वैकवत्स्यात् । यथा--प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः।रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः।कुशकाशम्,कुशकाशाः । व्रीहियवम्, व्रीहियवाः।दधिघृतम्, दधिघृते । गोमहिषम्,गोमहिषाः।शुकबकम्, शुकबकाः । अश्ववडवम्, अश्ववडवौ । पूर्वापरम्, पूर्वापरे । अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ॥ (फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तु धान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति वाच्यम्) ॥ बदराणि च आमलकानि च-बदरामलकम् ॥

पाकुड़ और बड़ । रुरु पृषत (मृग भेद) । कुश और काश । धान और जौ । दही और घी । बैल और भैंसे । तोता, बगुला । घोड़ा, घोड़ी । पहिले, दूसरे । नीचे, ऊपर के । वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्व, वडव, पूर्वापर और अधरोत्तर शब्द का विकल्प से द्वन्द्व एकवत् हो ॥ १२ ॥

विप्रतिषिद्धं चाऽनधिकरणवाचि ॥ १३ ॥

विरुद्धार्थानामद्रव्यवाचिनां शब्दानां द्वन्द्वो वैकवत्स्यात् । यथा-शीतोष्णम्, शीतोष्णे ॥

१-(२ । ४ । २७) इतिपूर्ववल्लिङ्गम् ॥

सर्दी और गर्मी । अद्रव्यवाचक परस्पर विरोधवाले शब्दों का द्वन्द्व विकल्प से एकवचन हो ॥ १३ ॥

न दधिपय आदीनि ॥ १४ ॥

नैतान्येकवत्स्युः । यथा—दधिपयसी । वाङ्मनसे ॥
दही और दूध । वाणी और मन । दधि पय आदि का द्वन्द्व एकवचन न हो ॥ १४ ॥

अधिकरणैतावत्त्वे च ॥ १५ ॥

द्रव्यसङ्ख्यावगमे द्वन्द्वो नैकवत्स्यात् । यथा—दशदन्तोष्ठाः ॥
दस दांत और ओष्ठ । अधिकरण (वाच्य वस्तु) का परिमाण गम्यमान हो तो द्वन्द्व एकवचन न हो ॥ १५ ॥

विभाषा समीपे ॥ १६ ॥

अधिकरणैतावत्त्वस्य समीपे द्वन्द्वो वैकवत्स्यात् । यथा—उपदशं-दन्तोष्ठम् । उपदशाः-दन्तोष्ठाः ॥
लग भग नव या एकादश दांत और होठ । अधिकरण वस्तु के परिमाण की सीमा गम्यमान हो तो विकल्प से द्वन्द्व एकवत् हो ॥ १६ ॥

स नपुंसकम् ॥ १७ ॥

सः, नपुंसकम् । समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । यथा—पञ्चपूली । पाणिपादम् ॥ (अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियांभाष्यते) ॥ पञ्चमूली ॥ (आवन्तो वा) ॥ दशखट्वी, दश खट्वम् ॥ (अनो नलोपश्च वा द्विगुः स्त्रियाम्) ॥ सप्ततक्षी, सप्ततक्षम् ॥ (पात्रादिभ्यः प्रतिषेधो वाच्यः) ॥ पञ्च पात्रम्, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम् ॥

जिस को समाहार में एकवचन कहा है वह द्विगु वा द्वन्द्व समास नपुंसक लिङ्ग हो ॥ १७ ॥

अव्ययीभावश्च ॥ १८ ॥

अव्ययीभावः, अ च । अयं च नपुंसकं स्यात् । यथा--अधिस्त्रि । उपकुमारि ॥

अव्ययी भाव समास भी नपुंसकलिङ्ग हो ॥ १८ ॥

तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ॥ १९ ॥

तत्पुरुषः, अन० रयः । नञ्समासं कर्मधारयं च विहायाऽन्यस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् । अधिकारोऽयम् ॥

नञ् और कर्मधारय समास को छोड़ कर शेष तत्पुरुष समास नपुंसकलिङ्ग हो १९

सञ्ज्ञायां कन्थोशीनरेषु ॥ २० ॥

सञ्ज्ञायाम्, कन्था, उ० षु । कन्थान्तस्तत्पुरुषः क्लीवं स्यात साचे दुशीनरदेशोत्पन्नायाः कन्थायाः सञ्ज्ञा । यथा--सुशमस्य अपत्यानि-सौशमयः । तेषां कन्था--सौशमिकन्थम् ॥

उशीनर देशीय कन्था की संज्ञा गम्यमान हो तो कन्थान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २० ॥

उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् २१

उपज्ञान्त उपक्रमान्तश्च तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्, तयोरुपज्ञायमानोपक्रमयमाणयोरादिः प्राथम्यं चेदाख्यातुमिष्यते । यथा--पाणिनेरुपज्ञा-पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थः । नन्दोपक्रमं द्रोणः ॥

पाणिनिका ईजाद किया ग्रन्थ (अष्टाध्यायी) । नन्दका चलाया हुआ द्रोण ।

उपज्ञा और उपक्रम के आदि के कथन की इच्छा हो तो उपज्ञान्त और उपक्रमान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २१ ॥

छाया बाहुल्ये ॥ २२ ॥

छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् पूर्वपदार्थबाहुल्ये गम्ये। यथा--इक्षूणां छाया-इक्षुच्छायम् ॥

ईखकी छाया। पूर्वपदार्थ में बाहुल्य गम्यमान हो तो छायान्त तत्पुरुष नपुंसक-लिङ्ग हो ॥ २२ ॥

सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा ॥ २३ ॥

राजपर्यायपूर्वः, अमनुष्यपूर्वश्च सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्। यथा -ईश्वरसभम् । (पर्यायस्यैवेष्यते)॥ नेह, राजसभा। रक्षः सभम्। राजसभा। राक्षससभा ॥

राजपर्याय पूर्वक और अमनुष्य पूर्वक सभान्त तत्पुरुष नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २३ ॥

अशाला च ॥ २४ ॥

सङ्घातार्था या सभा तदन्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्। यथा—स्त्रीसभम्॥

स्त्रियों का संघात। सङ्घात अर्थवाला सभान्त तत्पुरुष नपुंसक लिङ्ग हो ॥ २४ ॥

विभाषा सेनासुराच्छायाशाला-निशानाम् ॥ २५ ॥

एतदन्तस्तत्पुरुषो वा क्लीबं स्यात्। यथा—क्षत्रियसेनम्, क्षत्रिय-सेना। यवसुरम्, यवसुरा। कुड्यच्छायम्, कुड्यच्छाया। पाठशा-लम्, पाठशाला। श्वनिशम्, श्वनिशा ॥

क्षत्रियों की सेना। जौ की मदिरा। भित्तिकी छाया। पाठशाला। कुत्तों की

रात । सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा जिनके अन्तमें हों ऐसा तत्पुरुष विकल्प से नपुंसकलिङ्ग हो ॥ २५ ॥

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २६ ॥

अनयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात् । यथा—कुक्कुटमयूर्यौ इमे । मयूरी कुक्कुटौ—इमौ । (द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधोवाच्यः) ॥ पञ्चसुकपा लेषु संस्कृतः पुरोडाशः-पञ्चकपालः । प्राप्तोजीविकाम्-प्राप्तजीविकः । अलं कुमार्य्यै-अलङ्कुमारिः । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः-निष्कौशाम्बिः ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परेके तुल्य लिङ्ग हो ॥ २६ ॥

पूर्ववदश्ववडवौ ॥ २७ ॥

पूर्ववत्, अश्ववडवौ । अश्ववडवयोः पूर्ववल्लिङ्गं स्यात् । यथा-- अश्वश्च वडवा च-अश्ववडवौ । अश्ववडवान् । अश्ववडवैः ॥

द्वन्द्व समास में अश्व और वडवा शब्द का पूर्ववत् लिङ्ग हो ॥ २७ ॥

हेमन्तशिशिरावहोरात्रेचच्छन्दसि ॥ २८

हेम० रौ, अहो० त्रे, च, छं० सि । हेमन्तशिशिरौ, अहोरात्रे, इत्येतयोश्छन्दसि विषये पूर्ववल्लिङ्गं स्यात् । यथा—हेमन्तश्च शिशिरं च—हेमन्तशिशिरौ । अहोरात्रे ॥

हेमन्त (मार्गशिर और पौष) और शिशिर (माघ और फाल्गुन) । दिनरात । छन्दविषय में हेमन्त शिशिर और अहोरात्र शब्दों का पूर्ववत् लिङ्गहो ॥ २८ ॥

रात्राह्नाहाः पुंसि ॥ २९ ॥

इत्येतेपुंसि भाष्यन्ते । यथा—अहोरात्रः । पूर्वाह्णः । द्व्यहः । (सं-

इष्ट्या। पूर्वं रात्रं क्लीबम्) ॥ द्विरात्रम्। त्रिरात्रम् ॥

दिनरात। दिनकाप्रथमभाग। दो दिन। रात्र, अह्न और अह पुंल्लिङ्गमेंहों ॥ २९ ॥

अपथं नपुंसकम् ॥ ३० ॥

अपथशब्दो नपुंसकं स्यात्। यथा—अपथानि गाहते मूढः।

मूर्ख कुमार्गों में चलता है। अपथशब्द नपुंसक लिङ्गहो ॥ ३० ॥

अर्धर्चाः पुंसि च ॥ ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसिक्लीबे च स्युः। यथा—अर्धर्चः, अर्धर्चम् ॥

आधामन्त्र। अर्द्धर्च आदिशब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में भीहों ॥ ३१ ॥

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ३२

इदमः, अन्वादेशे, अश्, अनुदात्तः, तृतीयादौ। अन्वादेश विषयस्येदमोऽनुदात्तोऽशादेशः स्यात्तृतीयादौ विभक्तौ। यथा-इमकाभ्यां-छात्राभ्यां रात्रिरधीता, अथो आभ्यामहरप्यधीतम् ॥

इनदोनों विद्यार्थियों ने रात दिन पढ़ा। अन्वादेश (कथित को पुनः कहने) में इदम्शब्द को अनुदात्त अश् आदेश हो तृतीयादि विभक्तिपरे होंतो ॥ ३२ ॥

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौचानुदात्तौ ॥ ३३ ॥

एतदः, त्रतसोः, त्रतसौ, च, अनुदात्तौ। अन्वादेशविषये एतदोऽश् स्यात्, स चाऽनुदात्तस्त्रतसोः परतः, तौ चाऽनुदात्तौ स्याताम्। यथा-एतस्मिन्नगरे सुखंवसामः। अथोऽत्राधीमहे अतो नगन्तास्मः ॥

इसनगर में सुखपूर्वक रहतेहैं और यहां पढ़तेहैं इसवास्ते यहां से न जांयगे। त्र और तस्प्रत्यय परे होंतो अन्वादेश में एतद्शब्द को अनुदात्त अश् आदेश हो और वे त्र और तस् अनुदात्त भी हों ॥ ३३ ॥

*—(५।३।७१) इत्यकच्।

द्वितीयाटौस्स्वेनः ॥ ३४ ॥

द्वितीयाटौस्सु, एनः । द्वितीया, टा, ओस् इत्येतेषु परतः, इदमेतदोरनादेशः स्यादन्वादेशे।यथा—अनेनव्याकरणमधीतम्—एनंन्यायमध्यापयेति । अनेन छात्रेण रात्रिरधीता—एनेनाहरप्यधीतम् । अनयोः पवित्रं कुलम्-एनयोः प्रभूतं स्वमिति । एतदः । एतं छात्रं गणितमध्यापय-एनं पदार्थविद्यामप्यध्यापय । एतेन छात्रेण रात्रिरधीता-एनेनाहरप्यधीतम् । एतयोश्छात्रयोः शोभनं शीलम्—एनयोः प्रभूतं यशः ॥ (एनदिति नपुंसकैकवचने वाच्यम्) ॥ इदं-कुण्डमानय—प्रक्षालयैनत् , परिवर्त्तयैनत् ॥

इसने व्याकरण पढ़लिया-इसको न्याय पढ़ा। इन दोनों का पवित्र कुल और अधिक धन है । इस छात्रका गणित पढ़ा और इसको पदार्थ विद्या भी पढ़ा। इस छात्रने रात पढ़ा और दिन में भी पढ़ा । इन दोनों विद्यार्थिओं का शोभन शील है और इन का अधिक यश भी है । द्वितीया, टा और ओस् परे हो तो अन्वादेश में इदम् और एतद् शब्द को अनुदात्त एन आदेश हो ॥ ३४ ॥

आर्द्धधातुके ॥ ३५ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

यहां से (२ । ४ । ९६) सूत्रतक आर्द्ध धातु का अधिकार है ॥ ३५ ॥

अदोजग्धिर्ल्यप्तिकिति ॥ ३६ ॥

अदः, जग्धिः, ल्यप्तिकिति । ल्यबितिलुप्तसप्तमीकम् । अदोजग्धिः स्याल्ल्यपितादौकिति च । यथा—विजग्ध्य । जग्धम् ॥

खाकर । खायाहुआ । ल्यप् और तकारादि कित् प्रत्यय परे हों तो अद् धातु को जग्धि आदेश हो ॥ ३६ ॥

लुङ्सनोर्घस्लृ ॥ ३७ ॥

लुँङ्सनोः, घस्लृ । अदोघस्लादेशः स्यात्, लुङि सनि च परे। यथा—अघसत् । जिघत्सति ॥

उसने खाया । वह खाना चाहता है । लुङ् और सन् परे हों तो अदे धातु को घस्लृ आदेश हो ॥ ३७ ॥

घञपोश्च ॥ ३८ ॥

घञँपोः, चँ । अदो घस्लादेशः स्यात्, घञि, अपि च परे । यथा—घासः । प्रघसः ॥

गौ आदि के खाने के तृणविशेष । घञ् और अप प्रत्यय परे हों तो अद् धातु को घस्लृ आदेश हो ॥ ३८ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ३९ ॥

छन्दसि विषये बहुलमदो घस्लादेशः स्यात् । यथा—घस्तान्नूनम् । सग्धिश्चमे ॥

निश्चय खाया । छन्द विषय में अद् धातु को बहुल करके घस्लृ आदेश हो ॥ ३९ ॥

लिट्यन्यतरस्याम् ॥ ४० ॥

लिटिँ, अन्यतरस्याम् । अदोघस्लृ वाऽदेशः स्याल्लिटि । यथा—जघास । आद ॥

उस ने खाया । लिट् लकार परे हो तो अद् धातु को विकल्प से घस्लृ आदेश हो ४०

वेञो वयिः ॥ ४१ ॥

वेञँः, वयिँः । वेञो वयिर्वास्याल्लिटि । यथा—उवाय, ऊयतुः, ऊयुः । ऊवतुः, ऊवुः । ववौ, ववतुः, ववुः ॥

वस्त्र विनने का ताना ताना । लिट् परे हो तो वेञ् धातु को विकल्प से वयि आदेश हो ॥ ४१ ॥

हनो वध लिङि ॥ ४२ ॥

हनः, वध, लिङि । हन्तेर्वधादेशः स्यादार्द्धधातुक विषये, लिङि परे । वधादेशोऽदन्तः । यथा—वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासुः ॥

मारे । आर्द्धधातुकविषय में हन् धातु को वध आदेश हो लिङ् लकार परे हो तो ॥ ४२ ॥

लुङि च ॥ ४३ ॥

लुङि च परे हन्तेर्वधादेशः स्यात् । यथा—अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः ॥

मारा । लुङ् लकार परे हो तो हन् धातु को वध आदेश हो ॥ ४३ ॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ४४ ॥

आत्मनेपदेषु, अन्यतरस्याम् । हनो वधादेशो वा स्याल्लुङ्यात्मनेपदेषुपरेषु । यथा—आवधिष्ट, आवधिषाताम्, आवधिषत । आहत, आहसाताम्, आहत ॥

आत्मनेपद में हन् धातु को विकल्प से वध आदेश हो लुङ् लकार रे हो तो ४४

इणो गा लुङि ॥ ४५ ॥

इणः, गा, लुङि । स्पष्टम् । यथा—अगात्, अगाताम्, अगुः ॥

गया । लुङ् परे हो तो इण् धातु को गा आदेश हो ॥ ४५ ॥

णौ गमिरबोधने ॥ ४६ ॥

---

१ (२ । ४ । ७७) इति सिचोलुक् ।

णौ, गमिः, अ० ने। इणो गमिः स्याण्णौ परे। यथा—गमयति। बोधने तु प्रत्याययति ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो अबोधनार्थ इण् धातु को गमि आदेश हो ॥ ४६ ॥

सनि च ॥ ४७ ॥

इणो गमिः स्यात्सनिपरे नतु बोधने। यथा—जिगमिषति। बोधने-प्रतीषिषति-अर्थान् ॥

जाना चाहता है। अर्थों की प्रतीति कराना चाहता है। सन् परे हो तो अबोधनार्थ इण् धातु को गमि आदेश हो ॥ ४७ ॥

इङश्च ॥ ४८ ॥

इङः, च। इङो गमिः स्यात्सनि परे। यथा—अधिजिगांसते ॥

वह पढ़ना चाहता है। सन् परे हो तो इङ् धातु को भी गमि आदेश हो ॥ ४८ ॥

गाङ् लिटि ॥ ४९ ॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि। यथा—अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे ॥

वह पढ़ा। लिट् परे हो तो इङ् धातु को गाङ् आदेश हो ॥ ४९ ॥

विभाषा लुङ्लृङोः ॥ ५० ॥

लुङि लृङि च परत इङो गाङ् वा स्यात्। यथा—अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत। अध्यैष्ट, अध्यैषाताम्, अध्यैषत। लृङि। अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत ॥

लुङ् और लृङ् परे हो तो इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश हो ॥ ५० ॥

१-(६।४।६६) इतीत्वम्।

णौ च संश्चङोः ॥ ५१ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ इङो वा गाङादेशः स्यात् । यथा-अधिजिगापयिषति, अध्यापिपयिषति । चङि । अध्यजीगपत्, अध्यापिपत् ॥

पढ़ाना चाहता है । पढ़ाताथा । सन् और चङ्परक णिच्परे हो तो इङ् धातु को विकल्प से गाङ् आदेश हो ॥ ५१ ॥

अस्तेर्भूः ॥ ५२ ॥

अस्तेः, भूः । अस्तेर्भूः स्यात् । यथा-भविता । भवितव्यम् । भवितुम् ॥

होगा । होनाचाहिये । होनेको । अस्धातु को भू आदेशहो ॥ ५२ ॥

ब्रुवो वचिः ॥ ५३ ॥

ब्रुवः, वचिः । ब्रुवोवचिरादेशः स्यात् । यथा-वक्ता । वक्तुम् । वक्तव्यम् ॥

कहने वाला । कहनेको । कहना चाहिये । ब्रूञ्धातु को वचि आदेशहो ॥ ५३ ॥

चक्षिङः ख्याञ् ॥ ५४ ॥

चक्षिङःख्याञादेशस्स्यात् । यथा-आख्याता । आख्यातुम् । आख्यातव्यम् । (ख्शादिरप्ययमादेश इष्यते) ॥ आक्शाता । आक्शातुम् । आक्शातव्यम् ॥ (वर्जनेख्शाञ्नेष्ठः) ॥ दुर्जनाः संचक्ष्याः । वर्जनीया इत्यर्थः ॥

वक्ता । कहने को । कहना चाहिये । चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेशहो ॥ ५४ ॥

वा लिटि ॥ ५५ ॥

लिटिपरे चक्षिङः ख्याञादेशो वा स्यात्। यथा—आचख्या। आचचक्षे ॥

कहाथा। लिट् लकारपरे होतो चक्षिङ् धातु को विकल्पसे ख्याञ् आदेशहो।५५।

अजेर्व्यघञपोः ॥ ५६ ॥

अजेः, वी, अघञपोः। घञमपंच विहाय, अजेर्वी इत्ययमादेशः स्यात्। यथा- प्रवायकः। प्रवणीयः। (वलादावार्धधातुके वेष्यते) ॥ प्रवेता, प्राजिता। प्रवेतुम्, प्राजितुम् ॥

फेंकने वाला। फेंकने योग्य। घञ और अप् प्रत्यय को छोड़ के अज धातु को वी आदेशहो। ५६ ॥

वा यौ ॥ ५७ ॥

अजेर्वी वादेशः स्याद्यौ। यथा--प्रवयणः, प्राजनः ॥

दण्ड। युप्रत्यय परे हो तो अज धातु को विकल्प से वी आदेश हो ॥ ५७ ॥

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः ५८

ण्य० तः, यूनि, लुक्, अणिञोः। ण्यप्रत्ययान्तात्, क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्ताद्, ऋष्यभि धायिनो गोत्रप्रत्ययान्ताद्, ञितश्च, परयोर्युवाभिधायिनोः अणिञो र्लुक्स्यात्। यथा—कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः। श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः। वासिष्ठः पिता, वासिष्ठः पुत्रः। तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः ॥

कुरुगोत्रीय (ब्राह्मण) पिता या पुत्र। श्वफल्क का पिता या पुत्र। वसिष्ठका पिता या पुत्र। तिकका पिता या पुत्र। ण्यप्रत्ययान्त, क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्त, ऋष्यभि धायी गोत्रप्रत्यान्त और ञित् प्रत्ययान्त से युवापत्य में विहित अण और इञ् प्रत्यय का लुक्हो ॥ ५८ ॥

पैलादिभ्यश्च ॥ ५९ ॥

पै० भ्यः, च । एभ्यो युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । (पीलायावा-इत्यण्) । तस्मात्--(अणोद्व्यच् इतिफिञ्) । तस्यलुक्-यथा-पैलःपिता पुत्रश्च । (तद्राजाच्चाणः) ॥ द्व्यञ् मगधेत्यण् एन्तादाङ्गशब्दाद् (अणोद्व्यचः) इति फिञो लुक्-आङ्गः पिता-पुत्रश्च ॥

पैलवंशीय पितायापुत्र । पैल आदिकों से परे युवप्रत्ययका लुक् हो ॥ ५९ ॥

इञः प्राचाम् ॥ ६० ॥

गोत्रे य इञ् तदन्ताद्युव प्रत्ययस्य लुक् स्यात् तच्चेद् गोत्रं प्राचां भवति । यथा-पन्नागारस्याऽपत्यम्-(अत इञ्) । (यञिञोश्च)-इतिफक् । पन्नागारिः--पितापुत्रश्च ॥

प्राग्देशीय गोत्रमें विहित जो इञ् तदन्त से विहित युव प्रत्ययका लुक्हो ॥ ६० ॥

न तौल्वलिभ्यः ॥ ६१ ॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुक् नस्यात् । यथा-तौल्वलिः-पिता तौल्वलायनः पुत्रः ॥

तौल्वलि (गोत्रीय) पिता, पुत्र । तौल्वलि आदि शब्दों से परे युव प्रत्यय का लुक् नहो ॥ ६१ ॥

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् ॥ ६२ ॥

तद्राजस्य, बहुषु, तेन, एव, अस्त्रियाम् । बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् स्यात् तदर्थकृते बहुत्वे, नतु स्त्रियाम् । यथा-अङ्गाः । वङ्गाः ॥

अङ्गदेशके राजे। वङ्गदेशके राजे। यदि उस तद्राजसंज्ञक प्रत्यय से ही बहुवचन हुआ होतो स्त्री लिङ्ग भिन्न बहर्थ में वर्त्तमान तद्राजसंज्ञक प्रत्ययका लुक्‌हो। ६२॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ ६३ ॥

यस्यादिभ्यः, गोत्रे। एभ्योऽपत्य प्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृतेबहुत्वे, नतु स्त्रियाम्। यथा—यस्काः॥

यस्क (गोत्रीय सन्तान)। स्त्री लिङ्ग भिन्न तत्कृत बहुवचन में वर्त्तमान यस्क आदि शब्दों से विहित गोत्र प्रत्यय का लुक् हो॥ ६३॥

यञञोश्च ॥ ६४ ॥

यञञोः, च। गोत्रे यञजन्त मञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात् तत् कृते बहुत्वे नतु स्त्रियाम्। यथा—गर्गाः। विदाः॥

गर्ग (गोत्रीय सन्तान)। विद (गोत्रीय सन्तान)। स्त्री लिङ्ग भिन्न तत्कृत बहुवचनमें वर्त्तमान यञ् और अञ् गोत्र प्रत्ययों का लुक् हो॥ ६४॥

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च ॥ ६५ ॥

अ० भ्यः, च। एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। यथा—अत्रयः। भृगवः। कुत्साः। वसिष्ठाः। गोतमाः। अङ्गिरसः॥

अत्रिगोत्रीय सन्तान। भृगुगोत्रीय सन्तान। कुत्सगोत्रीय सन्तान। वसिष्ठगोत्रीय सन्तान। गोतमगोत्रीय सन्तान। अङ्गिरागोत्रीय सन्तान। अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरस् शब्दों से परे स्त्रीलिङ्ग भिन्न तत्कृत बहुवचन में वर्त्तमान गोत्रप्रत्यय का लुक् हो॥ ६५॥

बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु ॥ ६६ ॥

बह्वचः, इञः, प्रा० तेषु । बह्वचः प्रातिपदिकाद् य इञ् विहितः प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्त्तते तस्य बहुषु लुक् स्यात्। यथा—पन्नागाराः। युधिष्ठिराः॥

पन्नागारगोत्रीय सन्तान। युधिष्ठिरगोत्रीय सन्तान। बह्वच् प्रातिपदिक से विहित प्राच्यगोत्र और भरतगोत्र में जो इञ् उसका बहुत्व में लुक् हो॥ ६६॥

न गोपवनादिभ्यः॥ ६७॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुङ् न स्यात्। बिदाद्यन्तर्गणोऽयम्। यथा—गौपवनाः॥

गोपवनगोत्रीय सन्तान। गोपवनादिकों से विहित गोत्रप्रत्यय का लुक् न हो॥ ६७॥

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे॥ ६८॥

तिक० भ्यः, द्वन्द्वे। एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुक् स्याद् द्वन्द्वे। यथा—तैकायनश्च-कैतवायनश्च। तिकादिभ्यः फिञ् तस्य लुक्-तिककितवाः॥

तिक और कितगोत्रीय सन्तान। तिकादि, कितवादिकों से परे द्वन्द्व समास में गोत्र प्रत्यय का बह्वर्थ में लुक् हो॥ ६८॥

उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे॥ ६९॥

उ० भ्यः, अन्य० स्याम्, अद्वन्द्वे। एभ्योगोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुग्वा स्याद् द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च। यथा—औपकायनाश्च-लामकायनाश्च। (नडादिभ्यः फक्)। तस्य लुक्—उपकलमकाः, औपकायन लामकायनाः, लमकाः, लामकायनाः॥

उपक और लमकगोत्रीय सन्तान। उपक आदिक शब्दों से परे द्वन्द्व और अद्वन्द्व समास में गोत्रप्रत्यय का बहुत्व में विकल्प से लुक् हो॥ ६९॥

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् ॥ ७० ॥

आ० योः, अग० नच् । एतयोरवयवस्य गोत्रप्रत्ययस्याऽणो यञश्च बहुषु लुक् स्यात्--अवशिष्टस्य प्रकृतिभागस्य यथा सङ्ख्यमगस्ति, कुण्डिनच्, इमावादेशौस्याताम् । यथा--अगस्तयः । कुण्डिनः ॥

आगस्त्य गोत्रीय सन्तान । कौण्डिन्य गोत्रीय सन्तान । आगस्त्य और कौण्डिन्यशब्दसे परे बह्वर्थ में गोत्र प्रत्यय का लुक् हो और उक्तशब्दों को क्रम से अगस्ति और कुण्डिनच् आदेशहों ॥ ७० ॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः ॥ ७१ ॥

सुपः, धा० योः । एतयोर वयवस्यसुपो लुक् स्यात् ॥ यथा--पुत्रीयति । कष्टश्रितः ॥

धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुपका लुक्हो ॥ ७१ ॥

अदिप्रभृतिभ्यः शपः ॥ ७२ ॥

लुक्स्यात् । यथा—अत्ति । हन्ति ॥

अद आदि धातुओं से परे शप् का लुक् हो ॥ ७२ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७३ ॥

छन्दसि विषये शपो बहुलं लुक्स्यात् । यथा—वृत्रं हनति वृत्रहा । अहिः शयते । अदादिभिन्नेऽपि क्वचिल्लुक् । त्राध्वं नो देवाः ॥

सूर्य्य बादल को नष्ट करता है । सर्प सोता है । देवता हमारी रक्षाकरें । छन्द विषय में शप् का लुक् बहुल करके हो ॥ ७३ ॥

यङोऽचि च ॥ ७४ ॥

यङः, अचि, च । अचिपरे यङो बहुलं लुक्स्यात् । यथा--लोलुवः । पोपुवः ॥

अच् परे हो तो यङ् का लुक् बहुलकरके हो ॥ ७४ ॥

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ ७५ ॥

शपः श्लुः स्यात् । यथा-जुहोति ॥

हवन करता है । जुहोति (हु) आदि से परे शप् को श्लु आदेश हो ॥७५॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७६ ॥

छन्दसिविषये बहुलं शपः श्लुः स्यात् । यथा-दाति । अन्यत्रापि पूर्णं विवष्टि ॥

देता है। पूर्ण कहता है । छन्द विषय में शप् को बहुल करके श्लु आदेश हो ७६

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ ७७ ॥

एभ्यः सिचो लुक्स्यात् । यथा-अगात् । अस्थात् । घु, अदात् । अपात् । अभूत् ॥

वह गया । वह ठहरा । दिया । पिया । हुआ । गाति, स्था, घुसञ्ज्ञक, पा, और भू धातु से परे सिच्का लुक् हो परस्मैपद विषय में ॥ ७७ ॥

विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ ७८ ॥

परस्मैपदेषु एभ्यः सिचो लुग्वा स्यात् । यथा-अघ्रात्, अघ्रा-

सीत् । अधात्, अधासीत् । अशात्, अशासीत् । अच्छात्, अच्छासीत् । असात्, असासीत् ॥

उसने सुगन्ध लिया । उसने पिआ । उसने छोटा किया । उसने छेदा । उसने समाप्त किया । परस्मैपद विषय में घ्रा, धेट्, शा, छा, और सा धातु से परे सिच् प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ७८ ॥

तनादिभ्यस्तथासोः ॥ ७९ ॥

तनादिभ्यः, तथासोः । तनादेः सिचो लुग्वा स्यात्तथासोः परतः । यथा—अतत, अतनिष्ट । अतथाः, अतनिष्ठाः ॥

उसने । तूने विस्तारित किया । त और थास् परे हो तो तनादि धातुओं से परे सिच् का विकल्प से लुक् हो ॥ ७९ ॥

मन्त्रेघसह्वरणशवृदहाद्वृच्कृगमिजनिभ्यो लेः ॥ ८० ॥

मन्त्रे, घस° ०भ्यः, लेः । मन्त्रे एभ्यो ले लुक्स्यात् । यथा—(घस्लृ, अदने) । अक्षन् । लोके, अघसन् । (ह्वृ, कौटिल्ये) । माह्वाः । लोके, अह्वाः । (णश, अदर्शने) । प्रणक् । लोके, अनशत् । वृ इति वृङ् वृञोः सामान्येन ग्रहणम् । आवाः । लोके, अवारीत् । (दह, भस्मीकरणे) । अधक् । अधाक्षील्लोके । (प्रा, पूरणे) । आप्राः । अप्रासील्लोके । (वृञ्, वरणे) । वर्क् । अवर्चील्लोके । (डुकृञ्, करणे) अकः, बहुवचनेऽक्रन् । (गम्लृ, गतौ) । अग्मन् । अगमँल्लोके । (जनी, प्रादुर्भावे) । अज्ञत । अजनि, अजनिष्ट लोके ॥

मन्त्र विषय में घस, ह्वर, णश, वृ, दह, आत्, वृञ्, कृ, गमि और जनि धातुओं से परे लि (लुङ् का चिह्न) का लुक् हो ॥ ८० ॥

आमः ॥ ८१ ॥

आमः परस्य लेर्लुक्स्यात् । यथा—ईहाञ्चक्रे ॥

चेष्टाकी । आम् से परे लि का लुक् हो ॥ ८१ ॥

अव्ययादाप्सुपः ॥ ८२ ॥

अव्ययात्, आप्सुपः । अव्ययादुत्तरस्यापः सुपश्च लुक्स्यात् । यथा--तत्र शालायाम् । कृत्वा ॥

वहां शाला में । करके । अव्यय से परे आप् और सुप् का लुक् हो ॥ ८२ ॥

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः ॥ ८३ ॥

न, अव्ययीभावात्. अतः, अम्, तु, अपञ्चम्याः । अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक्, तस्य पञ्चम्याविना अमादेशश्च स्यात् । यथा--उपकुम्भं तिष्ठति । उपकुम्भं पश्य ॥

घड़े के पास खड़ा है । घड़े के पास देख । अदन्त अव्ययी भावसे परे सुप् का लुक् न हो और पञ्चमी विभक्ति भिन्न सुप् को अम् आदेश हो ॥ ८३ ॥

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ ८४ ॥

तृतीयासप्तम्योः, बहुलम् । अदन्तादव्ययी भावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात् । यथा--उपकुम्भम्, उपकुम्भेन । उपकुम्भम्, उपकुम्भे । बहुलग्रहणात् सुमद्रमुन्मत्तगङ्गमित्यादौ सप्तम्या नित्यमम्भावः ।

अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी विभक्ति को बहुल करके अम् आदेश हो ॥ ८४ ॥

लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ ८५ ॥

लुडादेशस्य प्रथमपुरुषस्य परस्मैपदस्यात्मने पदस्य च डा, रौ, रस्, इमे क्रमात् स्युः । यथा--कर्त्ता, कर्त्तारौ, कर्त्तारः । आत्मने पदस्य । अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः ॥

लुट् लकारके प्रथम पुरुष को डा, रौ और रस् आदेश हों ॥ ८५ ॥

इति जीवाराम शर्म्मकृतायां पाणिनि सूत्रवृत्तौ द्वितीयाऽध्यायस्य चतुर्थपादः समाप्तश्च द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथतृतीयाऽध्यायारम्भः।

प्रथमःपादः।

प्रत्ययः ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् । आपञ्चमाध्यायपरि समाप्तेः ॥
यहां से लेकर पञ्चम अध्याय तक प्रत्यय का अधिकार है ॥ १ ॥

परश्च ॥ २ ॥

परः, च । अयमप्यधिकारः । प्रत्ययःपरः स्यात् ॥
यह भी अधिकार है कि प्रत्यय परे हो ॥ २ ॥

आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥

आ० त्तः, च।अयमप्यधिकारः।प्रत्ययस्याद्युदात्तः स्यात्।यथा—कर्त्तव्यम् ॥
करनाचाहिये । यह भी अधिकार है कि प्रत्यय का आदि उदात्त हो ॥ ३ ॥

अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ ४ ॥

सुपः पितश्च प्रत्यया अनुदात्ताः स्युः । यथा—दृशदः। पठति ॥
पत्थर । पढ़ता है। सुप् और तिप् प्रत्यय अनुदात्त हों ॥ ४ ॥

गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् । यथा-जुगुप्सते । तितिक्षते । चिकित्सति ॥

निन्दाकरना चाहता है । क्षमा करना चाहता है । चिकित्सा करना चाहता है। गुप् तिज और कित धातु से सन् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

मान्बधदान्शान्भ्योदीर्घश्चाभ्यासस्य ६

मान्० भ्यः, दीर्घः, च, अ०स्य । एभ्यो धातुभ्यः सन्नभ्यासस्य च-दीर्घादेशः स्यात् । यथा-मीमांसते । बीभत्सते । दीदांसते । शीशांसते ॥

मीमांसाकरताहै । बांधना चा० । काटना चा० । पैनाकरना चा० । मान्, बध, दान और शान धातुसे सन् प्रत्यय हो और इनके अभ्यासको दीर्घादेशहो॥ ६ ॥

धातोःकर्मणःसमानकर्तृकादिच्छायांवा ॥ ७ ॥

धातोः, कर्मणः, स०तं, इ०मं, वा । इषि कर्मको यो धातु रिषणैव समान कर्तृकस्तस्मा दिच्छायामर्थे वा सन् स्यात् । यथा-कर्त्तुमिच्छति-चिकीर्षति । गन्तुमिच्छति-जिगमिषति । (आशङ्कायामुपसङ्ख्यानम्) ।यथा-शङ्के पतिष्यति कूलम् । श्वासुमूर्षति । (इच्छासन्नन्तात्प्रतिषेधोवाच्यः) । यथा-चिकीर्षितुमिच्छति ॥

करना चाहता है। जाना चाहता है । समानकर्त्तृक इच्छाके कर्मोपपद धातुसे इच्छा अर्थ में विकल्पसे सन् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

सुप आत्मनः क्यच् ॥ ८ ॥

सुपः, आत्मनः, क्यच् । इषिकर्मणा एषितुरेवात्म सम्बन्धिनः सुब-

न्ता दिच्छायामर्थे वाक्यच् स्यात् । यथा—पुत्रमिच्छति—पुत्रीयति ॥

पुत्रकी इच्छा करता है। इच्छा कर्म सुबन्त से आत्मा के इच्छार्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

काम्यच्च ॥ ९ ॥

काम्यच्, च । आत्मेच्छायां सुबन्तकर्मणः काम्यच् च स्यात् । यथा—वस्त्रमात्मन इच्छति—वस्त्रकाम्यति ॥

वस्त्र की इच्छा करता है । इच्छा कर्म सुबन्त से आत्मा के इच्छार्थ में काम्यच् प्रत्यय भी हो ॥ ९ ॥

उपमानादाचारे ॥ १० ॥

उ०तँ, आँ० रे । उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे वा क्यच् स्यात् । यथा—पुत्रमिवाचरति—पुत्रीयतिच्छात्रम् । (अधिकरणाच्चेति वाच्यम्) । यथा—प्रासादीयति—कुट्यां रङ्कः । कुटीयते—प्रासादे ॥

विद्यार्थी से पुत्रके तुल्य वर्त्ताव करता है । उपमान वाची सुबन्त कर्म से आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ ११ ॥

कर्त्तुः, क्यङ्, सलोपः, च । उपमानात् कर्त्तुः सुबन्ता दाचारेऽर्थे वा क्यङ् स्यात् । सान्तस्य तु कर्त्तृ वाचकस्य लोपो वा स्यात् । (ओजसोऽप्सरसो नित्य मितरेषां विभाषया) ॥ यथा—पण्डित इवाचरति मूर्खः-पण्डितायते । ओजायते । अप्सरायते । यशायते, यशस्यते । विद्वायते, विद्वस्यते । त्वद्यते । मद्यते । अनेकार्थत्वे तु-

युष्मद्यते, अस्मद्यते ॥ (क्यङ् मानिनोश्च) । कुमारीवाचरति-कुमारायते । हरिणीवाचरति--हरितायते । गुर्वीव-गुरूयते । सपत्नीव--सपत्नायते, सपतीयते, सपत्नीयते । युवतिरिव-युवायते । पट्वी मृद्व्याविव-पट्वीमृद्वयते । (न कोपधायाः)-पाचिकायते ॥ (आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विब वा वक्तव्यः) ॥ यथा-अवगल्भते, अवगल्भायते । क्लीबते, क्लीबायते । होडते, होडायते ॥ (सर्वप्रातिपदिकेभ्य इत्येके) ॥ यथा-अश्व इवाचरति-अश्वायते । गर्दभायते । अश्वति । गर्दभति ॥

उपमान वाची सुबन्त कर्त्ता से आचार अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय और सकार का लोप भी विकल्प से हो ॥ ११ ॥

भृशादिभ्योभुव्यच्वेर्लोपश्च हलः॥१२

भृ० भ्यः, भुवि, अच्वेः, लोपः, च, हलः । अभूत तद्भाव विषयेभ्यो भृशादिभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् स्यात्, हलन्तानाञ्च लोपः । यथा-अभृशो भृशोभवति-भृशायते सुमनायते ॥

शीघ्र कारी होता है। प्रसन्न होताहै । अभूत तद्भाव विषयक भृशादि प्रातिपदिकों से भू के अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो और हलन्तों के अन्तका लोप हो।१२॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ १३ ॥

लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् स्यात् । यथा-लोहितायति, लोहितायते । पटपटायति, पटपटायते । (लोहितडाज्भ्यः क्यष् वचनं भृशादिष्वितराणि) ॥ यथा--अनीलो नीलो भवति-नीलायते, नीलायति पटः । अलोहिनी लोहिनी भवति-लोहिनीयति, लोहिनीयते खट्वा । अहरितं हरितं भवति--हरितायति, हरितायते शाटकम् ॥

१ (७ । ४ । २५) इति दैर्घ्यम् ॥

लाल होता है। पटर करता है। लोहित आदि और डाजन्त प्रातिपदिकों से भू के अर्थ में क्यष् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

कष्टाय क्रमणे ॥ १४ ॥

चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्। यथा--कष्टाय क्रमते-कष्टायते। पापं कर्त्तु मुत्सहते इत्यर्थः॥ (सत्त्रकक्षकष्ट कृच्छ्र गहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वाच्यम्)॥ कण्वम्-पापम्। सत्त्रादयोवृत्तिविषये पापार्थाः। तेभ्यो द्वितीयान्ते-भ्यश्चिकीर्षायां क्यङ् स्यात्। यथा--पापं चिकीर्षतीत्यस्वपद विग्रहः-सत्त्रायते, कक्षायते, कष्टायते, कृच्छ्रायते, गहनायते॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

कर्म्मणोरोमन्थ तपोभ्यां वर्त्तिचरोः॥ १५॥

क० र्णः, रो० भ्याम्, व० रोः। रोमन्थ तपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमेण-वर्त्तनायां चरणे, चार्थे क्यङ् स्यात्। यथा-रोमन्थं वर्त्तयति-रोमन्थायते गौः। (हनुचलन इतिवाच्यम्)॥ चर्वितस्यापकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः। अपानप्रदेशान्निसृतं द्रव्यमिहरोमन्थः। तदश्नातीत्यर्थः॥ (तपसः परस्मैपदं च)। तपश्चरति-तपस्यति॥

बैल जुगाली करता है। तप करता है। वृतु और चर धातुओं के रोमन्थ और तप कर्मों से क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥ १६ ॥

बा० भ्याम्, उँ० ने। उद्वमनेऽर्थे आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् स्यात्। यथा-बाष्पमुद्वमति-बाष्पायते। ऊष्मायते॥ (फेनाच्चेति वाच्यम्)। फेनायते॥

भाफ ऊपर को निकलता है। गर्मी ऊपर को आती है। उद्वमन अर्थ में बाष्प और ऊष्म कर्म्मों से क्यङ् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ १७ ॥

एभ्यः कर्म्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। यथा-शब्दं करोति-शब्दायते। वैरायते। कलहायते। अभ्रायते। कण्वायते। मेघायते। पक्षे-तत्करोतीति णिजपीष्यत इतिन्यासः। शब्दयति। (सुदिन दुर्दिननीहारेभ्यश्च)। यथा--सुदिनायते। दुर्दिनायते। नीहारायते ॥

शब्द करता है। वैर को करता है। झगड़े को करता है। बादल को करता है। पाप को करता है। धूम को करता है या बादल को करता है। शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ शब्द से करने अर्थ में क्यङ्प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

सुखादिभ्यः कर्त्तृवेदनायाम् ॥ १८ ॥

कर्त्तृवेदनायामर्थे सुखादिभ्यः कर्मभ्यः क्यङ् स्यात्। यथा-सुखं वेदयते-सुखायते। दुःखं वेदयते-दुःखायते ॥

सुखी होता है। दुखी होता है। कर्त्तृवेदनार्थ में (सुखादि कर्त्ता को प्राप्त होने में) सुखादि कर्म सुबन्तों से करण (करना) अर्थ में क्यङ प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ॥ १९ ॥

करणे इत्यनुवृत्तेः क्रिया विशेषे-पूजायां, परिचर्यायामाश्चर्ये च क्यच् स्यात्। यथा-नमस्यति-बुधान्। पूजयतीत्यर्थः। वरिवस्यति-गुरून्। शुश्रूषते इत्यर्थः। चित्रीयते। विस्मयते इत्यर्थः। विस्मापयते। इतीतर ॥

नमस्, वरिवस् और चित्रङ् कर्म सुबन्तों से करण अर्थ में क्यच् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ॥ २० ॥

पु०रांत, णिङ् । पुच्छ भाण्ड चीवर इत्येभ्यो णिङ् स्यात् करण विषये । (पुच्छा दुदसने, व्यसने, पर्यसने च) ॥ विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणम्--व्यसनम् । यथा--विपुच्छयते। उत्पुच्छयते।परिपुच्छयते । (भाण्डात् समाचयने) ॥ सम्भाण्डते । भाण्डानि समाचिनोति । राशी करोतीत्यर्थः । (चीवरा दर्जने परिधाने-च) । यथा- सञ्चीवरयते--भिक्षुः । चीवरा ण्यर्जयति, परिधत्तेवेत्यर्थः ॥

पुच्छ (पूंछ) भाण्ड (पात्र) और चीवर (वस्त्र) कर्म सुबन्तों से करण अर्थ में णिङ् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्योणिच् ॥ २१ ॥

मु० स्तेभ्यः, णिच् । मुण्डादिभ्यः सुबन्तकर्मभ्यऽकरणेऽर्थे-णिच् स्यात् । यथा--मुण्डंकरोति--मुण्डयति । मिश्रयति । श्लक्ष्णयति । लवणयति ॥ (व्रताद्भोजनतन्निवृत्त्योः)॥पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति॥(वस्त्रात्समाच्छादने)॥संवस्त्रयति। (हल्यादिभ्योग्रहणे)॥ (हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते) हलिं कलिं वा गृह्णाति--हलयति, कलयति । कृतं गृह्णाति--कृतयति । तूस्तानि विहन्ति-वितूस्तयति । तूस्तम्-केशाइत्येके । जटीभूताः कशाइतीतरे । पापमित्यपरे ॥

मुण्डन करता है । मिलान करता है । चिकना करता है । नमकीन करताहै । दूध का नियम करता है । कपड़े से ढकता है हलको पकड़ता है ।

मधुर शब्द करता है । सत्य ग्रहण करता है । बालों को साफ करता है । मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत और तूस्त कर्म्म सुबन्तों से करण अर्थ में णिच् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

धातोरेकाचोहलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥ २२ ॥

धातोः, एकाचः, हलादेः, क्रि० रे, यङ् । एकाचो हलादेर्धातोर्वर्त्तमानात् क्रियासमभिहारे यङ् स्यात् । यथा -पुनः पुनः पठति--पापठ्यते । भृशं ज्वलति-जाज्वल्यते॥ (सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः) । आद्यास्त्रयश्चुरादा वदन्ताः । यथा--सो सूच्यते । सोसूत्र्यते । मोमूत्र्यते । अटाट्यते । अरार्यते । अशाश्यते । प्रोर्णोनूयते ॥

बार२ पढ़ता है । लगातार जलता है । क्रिया के समभिहार (बार२ या लगातार) में वर्त्तमान हलादि एकाच् धातु से यङ प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ २३ ॥

कौटिल्ये गम्ये गत्यर्थाद् धातोर्नित्यं यङ्स्यात् । यथा -कुटिलं व्रजति-वाव्रज्यते । चाचल्यते ॥

कुटिल चलता है । कौटिल्य अर्थ में गत्यर्थ धातुओं से नित्य यङ्प्रत्यय हो ॥ २३ ॥

लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्योभावगर्हायाम् ॥ २४ ॥

लुपः० भ्यः, भा०याम् । एभ्यो धात्वर्थगर्हायामेवयङ् स्यात् ।

१-(७ । ४ । ८३) इत्यभ्यासदीर्घः ।

यथा--गर्हितं लुम्पति--लोलुप्यते । सासद्यते । चञ्चूर्यते । जञ्जप्यते । जञ्जभ्यते । दन्दह्यते । दन्दश्यते । निजेगिल्यते ॥

बुरा काटता है । बुरा रुकता है । बुरीतरह खाता है । निन्दित पाठ करता है । बुरी जमुहाई लेता है । निरर्थक जलता है । बुरा डसता है । बुरी तरह निगलता है । धात्वर्थ की निन्दा में लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश तथा गॄ धातुसे यङ् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

सत्यापपाशरूपवीणा तूलश्लोकसेनालोमत्वच वर्मवर्ण चूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ २५ ॥

सत्या० दिभ्यः, णिच् । एभ्यो णिच् प्रत्ययः स्यात् । यथा--सत्यं करोत्याचष्टे वा--सत्यापयति । (अर्थवेदयो: रापुग्वाच्यः) ॥ यथा--अर्थापयति । वेदापयति । पाशं विमुञ्चति--विपाशयति । रूपंपश्यति--रूपयति । वीणयोपगायति--उपवीणयति । तूलेनानुकुष्णाति--अनुतूलयति । तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः । श्लोकैरुपस्तौति--उपश्लोकयति । सेनया अभियाति--अभिषेणयाति । लोमान्यनु मार्ष्टि--अनुलोमयति । (त्वचसंवरणे) । घः । त्वचंगृह्णाति--त्वचयति । वर्मणा सन्नह्यति--संवर्म्मयति । वर्णंगृह्णाति--वर्णयति चूर्णैरवध्वंसते--अवचूर्णयति । चोरयति ॥

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण इन सुबन्तों और चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

हेतुमतिँ च ॥ २६ ॥

१--(७ । ४।८६) इत्यभ्यासनुगागमः । (७ । ४ । ८८) इत्युकारादेशः। २--(८ । ३। ६५ इतिषत्वम् ।

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् । यथा -भवन्तं प्रेरयति--भावयति । (णिचश्च) ॥ इति कर्त्तृगे फले आत्मनेपदम्--भावयते ॥ (आख्यानात्कृतस्तदाचष्टेकृल्लुक्प्रकृतिप्रत्ययापत्तिः प्रकृतितच्चकारकम्) ॥ यथा --चैत्रवधमाचष्टे--चैत्रं घातयति । मैत्र बन्धमाचष्टे--मैत्रं बन्धयति । राजागमनमाचष्टे- राजानमागमयति ॥ (आङ्लोपश्च कलात्यन्तसंयोगे मर्यादायाम्) ॥ यथा-आरात्रि विवासमाचष्टि--रात्रिंविवासयति । (चित्रीकरणे प्रापि) ॥ उज्जयिन्याः प्रस्थितो महिष्ममत्यां सूर्योद्गमनं सम्भावयते--सूर्यमुद्गमयति ॥

हेतुमान् (प्रयोजक)कर्त्ता वाच्य होतो धातुसे णिच् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ २७ ॥

क०भ्यः, यक् । एभ्यो धातुभ्योयक् स्यात । यथा- कण्डूयति, कण्डूयते ॥

खुजलाता है । कण्ड्वादि गण पठित धातुओं से यक् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ २८

गुपू०भ्यः, आयः । एभ्यो धातुभ्यआयप्रत्ययः स्यात् स्वार्थे । यथा--गोपायति । धूपायति । विच्छायति । पणायति । पनायति ॥

रक्षाकरता है । सन्ताप करता है । जाता है । व्यवहार करता है । स्तुति करता है । गुपू, धूप, विच्छि, पणि और पानि धातुओं से आय प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

ऋतेरीयङ् ॥ २९ ॥

ऋतेः, ईयङ् । (ऋतिः सौत्रो धातुः) अस्मादीयङ् स्यात् स्वार्थे ।

जुगुप्सायामयं धातुरिति बहवः। कृपायां चेत्येके। यथा--ऋतीयते॥
ऋति धातु से ईयङ् प्रत्यय हो॥ २९॥

कमेर्णिङ्॥ ३०॥

कमेः, णिङ्। कमेर्णिङ् प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे। यथा--कामयते॥
इच्छा करता है। कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो॥ ३०॥

आयादय आर्द्धधातुकेवा॥ ३१॥

आ०यः, आ०के, वा। आर्द्धधातुक विवक्षायामायादयः प्रत्यया वा स्युः। यथा--गोपायिष्यति, गोपिष्यति।
रक्षाकरेगा। आर्द्ध धातुक विवक्षा में आयादि प्रत्यय विकल्प से हों॥ ३१॥

सनाद्यन्ता धातवः॥ ३२॥

स०न्ताः, धा०वः। सन् आदिर्येषां ते सनादयः। सनादयोऽन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः। सनाद्यन्ताः समुदाया धातुसञ्ज्ञकाः स्युः। यथा--चिकीर्षति। पुत्रीयति। पुत्रकाम्यति॥
सनाद्यन्त समुदाय धातुसंज्ञक हो॥ ३२॥

स्यतासीलृलुटोः॥ ३३॥

लृ- इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम्। धातोः स्यतासी प्रत्ययौ स्यातां लृलुटोः परतः। यथा--करिष्यति। अकरिष्यत्। श्वः कर्त्ता॥
लृ (लृङ् लृट्) और लुट्लकार परे होतो धातुसे स्य और तासि प्रत्यय हों॥ ३३॥

सिब्बहुलं लेटि॥ ३४॥

सिप्, बहुलम् लेटि । लेटिपरे धातोर्बहुलं सिप् प्रत्ययः स्यात्। यथा—भाविषति, भाविषाति, भविषति, भविषाति, भवति, भवाति॥

होवे । लेट् लकार परे हो तो धातु से बहुल करके सिप् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥ ३५ ॥

का० यात्, आम्, अ० त्रे, लिटि । कास् धातोः प्रत्ययान्तेभ्यश्चाऽऽम् स्यादमन्त्रे लिटि ॥ (कास्यनेकाज् ग्रहणं कर्त्तव्यम्) । सूत्रे प्रत्ययग्रहणमपनीय तत्स्थानेऽनेकाच इतिवाच्यमित्यर्थः । यथा—कासाञ्चक्रे । लोलूयाञ्चक्रे । चुलुम्पाञ्चकार । दरिद्राञ्चकार ॥

निन्दित भाषण किया । काटा । दरिद्र हुआ । मन्त्र विषयको छोड़कर लिट् लकार परे हो तो कास् और प्रत्ययान्त धातुओं में आम् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

इजादेश्च गुरुमतोनृच्छः ॥ ३६ ॥

इ० देः, च, गु० तः, अ० च्छः । इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तस्मादाम् स्याल्लिटि । (आमोमकारस्यनेत्त्वम्) ॥ आस्कासोराम् विधानाज्ज्ञापकात् । यथा—ईहाञ्चक्रे । ऊहाञ्चक्रे ॥

चेष्टा की थी । वितर्कणा की थी । लिट् परे हो तो इजादि गुरुमान् धातु से आम् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

दयायासश्च ॥ ३७ ॥

दया० सः, च । दय,अय,आस् , एभ्य आम् स्याल्लिटि । यथा—दयाञ्चक्रे । अयाञ्चक्रे । आसाञ्चक्रे ॥

रक्षा की थी । गयाथा । बैठा था । लिट् लकार परे हो तो दय, अय, और आस् धातु से आम् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ३८ ॥

उ० भ्यः, अ० म्। एभ्योवाऽऽम् स्याल्लिटि। यथा–ओषाञ्चकार, उवोष। विदाञ्चकार, विवेद। जागराञ्चकार, जजागार ॥

जलाया था। जाना था। जागा था। लिट् लकार परे हो तो उष, विद और जागृ धातु से विकल्प से आम् प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

भीह्रीभृहुवांश्लुवच्च ॥ ३९ ॥

भी० वाम्, श्लुवत्, च। एभ्योवाऽऽम् स्याल्लिटि श्लाविवकार्यं च। यथा–बिभयाञ्चकार, बिभाय। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। बिभराञ्चकार, बभार। जुहवाञ्चकार, जुहाव ॥

भय किया था। लज्जा की थी। पोषण किया था। होम किया था। लिट् लकार परे हो तो भी, ह्री, भृ और हु धातु से विकल्प करके आम् प्रत्यय हो और आम् को मानकर श्लु वत् कार्य्य हो ॥ ३९ ॥

कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ ४० ॥

कृञ्, च, अनु० ते, लिंटि। आमन्ताल्लिट्पराः कृ भ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते। (आम् प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य)। इतियोगे कृञ् ग्रहण सामर्थ्यदनुप्रयोगेऽन्यस्यापीति विज्ञायते। तेन कृभ्वस्तियोगइत्यतः कृञो द्वितीयेति ञकारेण प्रत्याहाराश्रयणात् कृ भ्वस्ति लाभः। यथा–पाचयाञ्चकार। पाचयाम्बभूव। पाचयामास ॥

पकाया था। लिट् लकार परे हो तो आम् के पश्चात् कृञ् प्रत्याहार (कृञ्, अस्, भू,) का अनुप्रयोग हो ॥ ४० ॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ॥ ४१ ॥

वि० न्तु, इति, अ० म् । वेत्तेर्लोट्याम् गुणाभावो, लोटो लुक्, लोडन्त करोत्यनुप्रयोगश्च, वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते। इति शब्दात् । यथा—विदाङ्कुर्वन्तु, विदन्तु ॥

वे जानें । विद धातुको लोट् लकार प्रथम पुरुषके बहुवचन में आम् गुण का अभाव लोट्का लुक् और लोडन्त कृञ्का अनुप्रयोगकरके विकल्पसे निपातन कियाहै

अभ्युत्सादयां प्रजनयांचिकयांरमयामकः पावयांक्रियाद् विदामक्रन्नितिछन्दसि ॥ ४२ ॥

अ० मकः, पा० यात्, वि० न्, इति, छन्दसि । छन्दसिविषये ऽभ्युत्सादयामित्येवमादयोवानिपात्यन्ते । आद्येषु चतुर्षु लुङि आम् अक इत्यनुप्रयोगश्च । यथा—अभ्युत्सादयामकः । अभ्युदसीषददितिलोके । प्रजनयामकः । प्राजीजनदित्यर्थः । चिकयामकः । अचैषीदित्यर्थे चिनोतेराम् द्विर्वचनं कुत्वं च । रमयामकः । अरीरमत् । पावयांक्रियात् । पाव्यादितिलोके । विदामक्रन् । अवेदिषुः ॥

अभ्युत्सादयामक, प्रजनयामक, चिकयामक, रमयामक पावयांक्रियात् , और विदामक्रन् छन्दो विषय में निपातित हैं ॥ ४२ ॥

च्लि लुङि ॥ ४३ ॥

लुङि परे धातोश्च्लिः स्यात् ॥

लुङ् परे हो तो धातु से च्लि प्रत्यय हो ॥ ४३ ॥

च्लेः सिच् ॥ ४४ ॥

लुङि परे च्लेः सिजादेशः स्यात्। यथा—अकार्षीत्। अहार्षीत्॥

किया। हरलिया। लुङ् परे हो तो च्लि के स्थान में सिच् आदेश हो ।४४।

शलइगुपधादनिटः क्सः ॥ ४५ ॥

शलः,इ० तं, अनिटः,क्सः। इगुपधोयो धातुः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्ले क्सादेशः स्याल्लुङि। यथा—दुह—अधुक्षत्। लिह-अलिक्षत्॥

स्वाद लिया। दुहा। लुङ् परे हो तो शलन्त इगुपध, अनिट् धातुसे परे च्लि के स्थान में क्सादेश हो॥ ४५॥

श्लिष आलिङ्गने ॥ ४६ ॥

श्लिषः, आँ० ने। आलिङ्गने एव श्लिषः क्सादेशो नान्यत्र। यथा—अश्लिक्षत् देवदत्तः प्रमोदाम्॥

देवदत्त प्रमोदा से मिला। लुङ्परे हो तो श्लिष धातुसे परे आलिङ्गन अर्थ में च्लि को क्सादेश हो॥ ४६॥

न दृशः ॥ ४७ ॥

दृशेर्धातोः परस्य च्लेः क्सादेशो न स्यात्। यथा—अदर्शत्, अद्राक्षीत्॥

उसने देखा। दृशिर् धातु से परे च्लि को क्सादेश न हो॥ ४७॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ ४८ ॥

कर्त्तृवाचिनि लुङ्परे ण्यन्तेभ्यो धातुभ्यः श्रि द्रु स्रु इत्येतेभ्यश्च परस्य च्लेश्चङादेशः स्यात्। यथा—अचीकरत्। अशिश्रियत्। अदुद्रुवत्। असुस्रुवत्॥

उसने कराया। सेवा की। गया। णिजन्त और श्रि, द्रु तथा स्रु धातु से परे च्लि को चङ् आदेश हो ॥ ४८ ॥

विभाषा धेट्श्व्योः ॥ ४९ ॥

आभ्यां परस्य च्लेश्चङादेशो वा स्यात् कर्त्तृवाचिनि लुङि परे (चङि)--इति द्वित्वम्। यथा--अदधत्, अधात्। अधासीत्। अशिश्वियत्, अश्वत्, अश्वयीत् ॥

पिया। गया। धेट् तथा श्वि धातु से परे च्लि को विकल्प से चङ् आदेश हो कर्तृवाचक लुङ् परे हो तो ॥ ४९ ॥

गुपेश्छन्दसि ॥ ५० ॥

गुँपेः, छँन्दसि। छन्दसि विषये गुपेः परस्य च्लेश्चङादेशो वा स्यात्। यथा--गृहानजूगुपतम्। अगौप्तमित्यर्थः ॥

छन्दो विषय में गुप धातु से परे च्लि को विकल्प से चङ् आदेश हो ॥ ५० ॥

नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ ५१

छन्दसि एभ्यो धातुभ्यो णयन्तेभ्यः परस्य च्लेश्चङादेशो न स्यात्। यथा--ऊनयीः। औनिनदिति लोके। ध्वनयीत्। अदिध्वनदितिलोके। एलयीः। ऐलिदितिलोके। अर्दयीत्। आर्दिदातिलोके ॥

ऊन, ध्वन, इल तथा अर्द इन णिजन्त धातुओं से परे छन्दो विषय में च्लि को चङ् आदेश न हो ॥ ५१ ॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥ ५२ ॥

अ० भ्यः, अङ्। कर्त्तृवाचिनि लुङि परे एभ्यश्च्लेरङादेशः स्यात्। यथा--पर्यास्थत। अवोचत्। आख्यात् ॥

१-(७।४।२०) इति वच उम्।

फेंका । कहा । असु, वच तथा ख्या धातु से परे कर्तृवाचक लुङ् परे हो तो च्लि को अङ् आदेश हो ॥ ५२ ॥

लिपिसिचिह्वश्च ॥ ५३ ॥

लि० ह्वः, च । एभ्यः परस्य च्लेरङादेशः स्यात् । यथा—अलिपत् । असिचत् । आह्वत् । (आतोलोपः) ॥

लीपा । सींचा । बुलाया । लिप सिच तथा ह्वेञ् धातुओंसे परे च्लिको अङ्आदेशहो। ५३

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

आ० पुं, अ० म् । लिपि सिचि ह्वेञ् इत्येतेभ्य आत्मनेपदेषु परेषु च्लेरङादेशो वा स्यात् । यथा—अलिपत, अलिप्त । असिचत, असिक्त । आह्वत, आह्वास्त ॥

आत्मनेपद विषय में लिपि सिच तथा ह्वेञ् धातु से परे च्लि को विकल्प से अङ् आदेश हो ॥ ५४ ॥

पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ५५

श्यन् विकरण पुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङादेशः स्यात् परस्मैपदेषु परेषु । यथा—अपुषत् । अद्युतत् । अगमत् ॥

परस्मैपद प्रत्यय परे हों तो दिवाद्यन्तर्गत पुषादिगण, द्युतादिगण तथा लृ जिस धातुका इत् गया हो ऐसे धातु से परे च्लि को अङ् आदेश हो ॥५५॥

सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ ५६ ॥

स० भ्यः, च । एभ्यः परस्य च्लेरङादेशः स्यात् । यथा—असरत् । अशिषत् । आरत् ॥

गया । शिक्षा की । गया या प्राप्त हुआ । परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो सृ शासु तथा ऋ धातु से परे च्लि को अङ् आदेश हो ॥ ५६ ॥

इरितो वा ॥ ५७ ॥

इरितः, वा । इरितो धातोः परस्य च्लेरङादेशो वा स्यात् परस्मैपदेषु परेषु । यथा—अभिदत्, अभैत्सीत् ॥

काटा या चीड़ा । परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय परे हो तो जिसका इर् इत् गया हो ऐसे धातु से परे च्लि को विकल्प से अङ् आदेश हो ॥ ५७ ॥

जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥ ५८ ॥

जॄसादिभ्यो धातुभ्यः परस्य च्लेरङादेशो वा स्यात् । यथा—अजरत्, अजारीत् । अस्तभत्, अस्तम्भीत् । अम्रुचत्, अम्रोचीत् । अम्लुचत्, अम्लोचीत् । अग्रुचत्, अग्रोचीत् । अग्लुचत् अग्लोचीत् । अग्लुञ्चत्, अग्लुञ्चीत् । अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत् ॥

बुड्ढा हुआ । गया या प्राप्त हुआ । चुराया । गया । गया या बढ़ा । जॄस् आदि धातुओं से परे च्लि को विकल्प से अङ् आदेश हो ॥ ५८ ॥

कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ॥ ५९ ॥

कृ० भ्यः, छं० सि । छन्दसि विषये एभ्यः परस्य च्ले रङादेशः स्यात् । यथा—अकरत् । अमरत् । अदरत् । आरुहत् ॥

किया । मरा । हिंसाकी । चढ़ा । छन्दोविषय में कृ, मृ, दृ, तथा रुह धातु से परे च्लि को अङ् आदेश हो ॥ ५९ ॥

चिण् ते पदः ॥ ६० ॥

ते परे पदधातोः परस्य च्ले श्चिणादेशः स्यात् । यथा -उदपादि ॥

उत्पन्न किया । तशब्द परे हो तो पद धातु से परे च्लि को चिण आदेश हो ६०

दीपजनबुधपूरीतायिप्यायिभ्यो-ऽन्यतरस्याम् ॥ ६१ ॥

दी० भ्यः, अ० म् । एभ्यश्च्ले श्चिण् वाऽऽदेशः स्यादेकवचने त शब्दे परे । यथा-अदीपि, अदीपिष्ट । अजनि, अजनिष्ट । अबोधि, अबुद्ध । अपूरि, अपूरिष्ट । अतायि, अतायिष्ट । अप्यायि, अप्यायिष्ट ॥

प्रकाशित किया । हुआ । जाना । बढ़ा (पूर्ण हुआ) । रक्षा की । बढ़ा । एकवचन में तशब्द परे हो तो दीपी, जनी, बुध, पूरी, तायृ तथा ओप्यायी धातुओं से परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो ॥ ६१ ॥

अचः कर्मकर्त्तरि ॥ ६२ ॥

कर्मकर्त्तरि त शब्दे परे, अजन्ताद्धातोश्च्लेश्चिणादेशो वा स्यात् । यथा-अकारि, अकृत मोदकः स्वयमेव ॥

लड्डू अपने आप बनगये । कर्मकर्त्ता में तशब्द परे हो तो अजन्त धातुसे परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो ॥ ६२ ॥

दुहश्च ॥ ६३ ॥

दुहः, च । कर्मकर्त्तरि तशब्दे परे दुहश्च धातोः परस्य च्लेश्चिणादेशो वा स्यात् । यथा-अदोहि । पक्षे क्सः । लुग्वेति । पक्षे लुक्-अदुग्ध । अधुक्षत धेनुः स्वयमेव ॥

गाय अपने आप दुह गई । कर्मकर्त्ता में तशब्द परे हो तो दुह धातु से परे च्लि को विकल्प से चिण् आदेश हो ॥ ६३ ॥

न रुधः ॥ ६४ ॥

१--(६ । ४ । १०४) इतिलुक् ।

कर्मकर्त्तरि तशब्दे परे रुधधातोः परस्य च्लेश्चिणादेशो नस्यात् । यथा—अवारुद्ध धेनुस्स्वयमेव ॥

अपने आप गायरुकगई । कर्म कर्त्ता में तशब्द परे होतो रुधधातु से परे च्लि को चिण् आदेश न हो ॥ ६४ ॥

तपोऽनुतापे च ॥ ६५ ॥

तपः, अं० पे, च । कर्मकर्त्तरि अनुतापेच त शब्दे परे च्लेश्चिणादेशो न स्यात् । यथा—अन्वतप्त पापेन । पापंकर्त्तुः । तेनाभ्याहत इत्यर्थः । कर्मणि लुङ् । यद्वापापेन पुंसा कर्त्रा अशोचीत्यर्थः ॥

कर्म कर्त्ता तथा अनुताप अर्थ में तशब्द परे हो तो तप धातु से परे च्लि को चिण् आदेश न हो ॥ ६९ ॥

चिण् भावकर्मणोः ॥ ६६ ॥

भाव कर्म वाचिनि तशब्दे परे च्लेश्चिणादेशः स्यात् । यथा—अशायि भवता । अकारि घटः कुलालेन ॥

आपसे सोयागया । कुम्हारने घड़ा बनाया । भाव कर्म वाची तशब्द परे होतो धातु मात्रसे परे च्लि को चिण् आदेश हो ॥ ६६ ॥

सार्वधातुके यक् ॥ ६७ ॥

भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे धातोर्यक् प्रत्ययः स्यात् । यथा—शय्यते भवता । गम्यते ग्रामः ॥

आपसे सोया जाता है । गांव जायाजाता है (गांव को जाता है) । भाव तथा कर्म वाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धातु मात्र से यक् प्रत्यय हो ६७

कर्त्तरि शप् ॥ ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् प्रत्ययः स्यात् । यथा—भवति ॥

होताहै । कर्त्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धातु मात्र से शप् प्रत्यय हो ६८

दिवादिभ्यः श्यन् ॥ ६९ ॥

दिव इत्येव मादिभ्यो धातुभ्यः श्यन् प्रत्ययः स्यात् । शपोपवादः । यथा—दीव्यति । हलिचेति दीर्घः ॥

खेलताहै । दिवादि गण पठित धातुओं से श्यन प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

वा भ्राश भ्लाश भ्रमु क्रमु क्लमु त्रसि-त्रुटि लषः ॥ ७० ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे एभ्यो धातुभ्यो वा श्यन् स्यात् । यथा—भ्राश्यते, भ्राशते । भ्लाश्यते, भ्लाशते । भ्रम्यति, भ्रमति । भ्राम्यतीति तु दिवादौ वक्ष्यते । क्राम्यति, क्रामति । क्लाम्यति, क्लामति । त्रस्यति, त्रसति । त्रुट्यति, त्रुटति । लष्यति, लषति ॥

प्रकाशित होता है । अनवस्थित होता है२। टहलता है । ग्लानि करता है । उद्वेग करता है । तोड़ता है । इच्छा करता है । भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि तथा लष धातु से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

यसोऽनुपसर्गात् ॥ ७१ ॥

यसः, अ० त । यसोनुपसर्गाद् वा श्यन् स्यात् । यथा—यस्यति, यसति ॥

पुरुषार्थ करता है । उपसर्ग रहित यस धातु से विकल्प करके श्यन प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

संयसश्च ॥ ७२ ॥

१—(७ । ३ । ७६) इति दैर्घ्यम् ।

सम्, यसः, च । सम्पूर्वाच्च यसो वा श्यन् स्यात्। यथा—संयस्यति, संयसति ॥

सम् पूर्वक यस धातु से भी विकल्प से श्यन् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ॥ ७३ ॥

षुञ् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नुः स्यात्। यथा—सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति । हुश्नुवोरिति यण् ॥

स्नान, पीडन, मद्यनिकालना (उक्त कार्य) करता है । स्वादि गण पठित धातुओं से श्नु प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

श्रुवः शृ च ॥ ७४ ॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नु प्रत्ययश्च । शपोऽपवादः । श्नोर्ङि-त्त्वाद् धातोर्गुणो नो । यथाच—शृणोति, शृणुतः, शृण्वन्ति । (६ । ४। ८७) इति यण् ॥

सुनता है, वे दोनों सुनते हैं, वेसब सुनते हैं । श्रु धातु को शृ आदेश और श्नु प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥ ७५ ॥

अक्षः, अ० स्याम् । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे, अक्षो वा श्नुः स्यात्। पक्षे शप् । यथा—अक्ष्णोति, अक्ष्णुतः, अक्ष्णुवन्ति । अक्षति , अक्षतः, अक्षन्ति ॥

व्याप्त होता है । अक्षु धातु से विकल्प करके श्नु प्रत्यय हो कर्त्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो ॥ ७५ ॥

तनूकरणे तक्षः ॥ ७६ ॥

तनूकरणेऽर्थे तक्षधातोर्वाश्नुः स्यात्। यथा-तक्ष्णोति, तक्षतिकाष्ठम्॥

लकड़ी को छीलताहै। तनूकरण अर्थ में तक्षू धातुसे विकल्प करके श्नु प्रत्ययहो।७६।

तुदादिभ्यः शः ॥ ७७ ॥

तुदइत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः शः स्यात् । यथा-तुदति, तुदते ॥

पीडा करता है । तुदादिगण पठित धातुओं से श प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

रुधादिभ्यः श्नम् ॥ ७८ ॥

रुधिर् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्य श्नम् प्रत्ययः स्यात् । यथा-रुणद्धि । (श्नसोरल्लोपः) ॥

रोकता है या ढांकता है । रुधादि गण पठित धातुओं से श्नम् प्रत्यय हो ॥७८॥

तनादिकृञ्भ्य उः ॥ ७९ ॥

त० भ्यः, उः । तनु इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः कृञश्चो प्रत्ययः स्यात् । यथा-तनोति । करोति ॥

विस्तारित करता है। करताहै। तनादिगण पठित और कृञ धातु से उ प्रत्ययहो ७९

धिन्वि कृण्व्योरच ॥ ८० ॥

धि० व्योः,अ, च । अनयोरकारोऽन्तादेशः स्यादुप्रत्ययश्च । यथा-धिनोति । कृणोति ॥

तृप्त करता है । दुःख देता है । धिन्वि तथा कृन्वि धातु से उ प्रत्यय और इन के अन्त को अकारादेश हो ॥ ॥८०॥

क्र्यादिभ्यश्श्ना ॥ ८१ ॥

क्र्य० भ्यः, श्ना । डु-क्रीञ् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नाप्रत्ययः स्यात् । यथा—क्रीणाति ॥

बदलता है या रहन करता है । क्र्यादि गणपठित धातुओं से श्ना प्रत्यय हो॥८१॥

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ॥ ८२ ॥

स्तम्भु०भ्यः, श्नुः, च । एभ्यः श्नुश्चात् श्ना स्यात् । यथा—स्तभ्नोति, स्तभ्नाति । स्तुभ्नोति, स्तुभ्नाति । स्कभ्नोति, स्कभ्नाति । स्कुभ्नोति, स्कुभ्नाति । स्कुनोति, स्कुनाति । (स्तम्भ्वादयश्चत्वारो धातवः सौत्राः । सर्वेरोधनार्था इत्येके) माधवस्तु प्रथम तृतीयोस्तम्भार्थौ, द्वितीयोनिष्कोषणार्थः, चतुर्थोधारणार्थ इत्याह । पञ्चमस्तु ।(स्कुञ्-आप्रवणे) ॥

स्तम्भु आदि धातुओं से श्नु तथा श्ना प्रत्यय हो ॥ ८२ ॥

हलः श्नः शानज्झौ ॥ ८३ ॥

हलः, श्नः, शानच्, हौ । हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे । यथा—मुषाण ॥

चुरा । हि परे हो तो क्र्यादि हलन्त धातुओं से परे श्ना प्रत्यय को शानच् आदेश हो ॥ ८३ ॥

छन्दसि शायजपि ॥ ८४ ॥

छन्दसि, शायच्, अपि । छन्दसि विषये श्नः शानजादेशः स्याच्छायजपि । (हृग्रहोर्भश्छन्दसीति—हस्य भः) । यथा—ग्रभाय जिह्वया मधु । बधान देव सवितः ॥

छन्दो विषय में श्ना के स्थान में शानच् आदेश हो तथा शायच् भी ॥ ८४ ॥

व्यत्ययो बहुलम् ॥ ८५ ॥

व्यं० यः, बहुलम् । छन्दसि विषये विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्यात् । यथा—भेदति । भिनत्तीतिप्राप्ते । मरते । म्रियते इति प्राप्ते । नेषतु । नयतेर्लोट शप् सिपौद्वौ विकरणौ । तरुषेम । तरेमेत्यर्थः । तरते विंध्यादौ लिङ् उः सिप् शप् चेति त्रयो विकरणाः ॥

छन्दो विषय में विकरणों का बहुलता से व्यत्यय (विपर्य्यय) हो ॥ ८५ ॥

लिङ्याशिष्यङ् ॥ ८६ ॥

लिङि, आशिषि, अङ् । आशीर्लिङि परे धातोरङ् स्याच्छन्दसि । (वच उम्) ॥ यथा--मन्त्रं वोचे माग्नये । तच्छकेयम् ॥ (दृ-शेरग्वक्तव्यः) ॥ पितरं च दृशेयं मातरं च । अङि तु ऋदृशो-ऽङीति गुणः स्यात् स न ॥

छन्दोविषय में आशीर् लिङ् परे हो तो धातु से अङ् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ ८७ ॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत् स्यात् । यथा—पच्यते ओदनः स्वयमेव । भिद्यते काष्ठं स्वयमेव । अपाचि । अभेदि ॥

अपने आप भात पकता है । अपने आप लकड़ी चिरती है । पकाया । चीरा । कर्मदशाके तुल्य है क्रिया जिस में ऐसा कर्त्ता कर्म के सदृश हो ॥ ८७ ॥

तपस्तपः कर्मकस्यैव ॥ ८८ ॥

तपः. तपःकर्त्तस्य, एव। कर्त्ता कर्मवत् स्यात्। यथा–तप्यते तपस्तापसः। अर्जयतीत्यर्थः॥

तप कर्म तपधातु का कर्त्ता कर्मवत् हो॥ ८८॥

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ॥ ८९॥

एषां कर्मकर्त्तरि यक्चिणौ न स्याताम्। यथा–दुग्धे धेनुः स्वयमेव। अदुग्ध धेनुः स्वयमेव। प्रस्नुते धेनुः स्वयमेव। प्रास्नोष्ट धेनुः स्वयमेव। नमते दण्डः स्वयमेव। अनंस्त दण्डः स्वयमेव॥

अपने आप धेनु दुही जाती है। अपनेआप गाय दुही गयी। अपने आप गाय चूती है। अपनेआप गाय स्रावित हुई दण्ड अपने आप नमता है। दण्ड अपने आप नमा। कर्मकर्त्ता में दुह स्नु तथा नम धातुसे यक् तथा चिण् प्रत्यय न हों ८९

कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च ९०

अनयोः कर्मकर्त्तरि न यक् किन्तु–श्यन् परस्मैपदं च। यथा–कुष्यति, कुष्यते पादः। रज्यति, रज्यते वस्त्रम्॥

पैर खींचाजाता है। कपड़ा रंगाजाता है। कुष तथा रञ्ज धातु के कर्म कर्त्ता में यक् प्रत्यय न हो किन्तु पूर्वाओं के मत में श्यन् और परस्मैपद हो॥ ९०॥

धातोः॥ ९१॥

अधिकारोऽयमातृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः॥

तृतीय अध्याय की समाप्ति तक धातुका अधिकार है॥ ९१॥

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्॥ ९२॥

तत्र, उ० मं, स० स्थम्। अस्मिन् धात्वधिकारो यत्सप्तमी निर्दिष्टं तदुपपद संज्ञं स्यात्। यथा–(कर्मण्यण्)-कुम्भकारः॥

कुम्हार। इस धातु अधिकार में जो सप्तमी विभक्ति निर्दिष्टपद वह उपपद संज्ञक हो॥

कृदतिङ् ॥ ९३ ॥

कृत्, अतिङ्। अस्मिन् धात्वधिकारे तिङ् वर्जिताः प्रत्ययाः कृत्सञ्ज्ञकाः स्युः। यथा–कर्त्तव्यम्। करणीयम्॥

करनाचाहिये। इस धातु अधिकार में तिङ् भिन्न प्रत्यय कृत् संज्ञक हों। ९३।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥

वा० अ० पः, स्त्रि० म्। परिभाषेयम्। अस्मिन् धात्वधिकारे ऽसरूपो,ऽपवादः प्रत्ययः उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकार विहित प्रत्ययं वर्जयित्वा॥

स्त्रियाम् इस विषय को छोड़कर इस धातु अधिकार में असमान रूप तथा अपवाद रूप प्रत्यय विकल्प से बाधक हों॥ ९४॥

कृत्याः ॥ ९५ ॥

अधिकारोऽयं-ण्वुलः प्राक्॥

ण्वुल्तृचौ इस सूत्रके पूर्व२ कथित प्रत्यय कृत्संज्ञक हों॥ ९५॥

तव्यत्तव्यानीयरः ॥ ९६ ॥

धातोरिमेस्युः। तकाररेफौ स्वरार्थौ। कर्त्तव्यम्, करणीयं मया। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया। गन्तव्यम्, गमनीयं तेन। पठितव्यम्, पठनीयम् भवता। चेतव्यश्चयनीयोवाऽस्माभिर्धर्म्मः। सेवितव्या, सेवनीया वा युवाभ्यामम्बा॥ (वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च)॥ यथा–वसतीति–वास्तव्यः॥ (केलिमर उपसङ्ख्यानम्)॥

यथा-पचेलिमाः-माषाः । पक्तव्यः । भिदेलिमाः सरलाः । भेतव्याः । कर्मणि प्रत्ययः ॥

मुझे करना चाहिये । तुझे पढ़ना चाहिये । उसे जाना चाहिये । आपको पढ़ना चाहिये । हम को धर्म इकट्ठा करना चाहिये । तुम दोनों को माता की सेवा करना चाहिये । धातु से तव्यत् तव्य तथा अनीयर प्रत्यय हों ॥ ९६ ॥

अचोऽत् ॥ ९७ ॥

अचः, अत् । अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात् । यथा-चेयम् । जेयम् । पेयम् । गेयम् । देयम् ॥ (तकि शसि चति यति जनिभ्यो यद्वाच्यः)॥ यथा-तक्यम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जन्यम् ॥ (हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः) ॥ यथा-वध्यः । पक्षे वक्ष्यमाणोण्यत्-घात्यः ॥

इकट्ठा करना चाहिये । जीतना चाहिये । पीना चाहिये । गाना चाहिये । देना चाहिये । अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

पोरदुपधात् ॥ ९८ ॥

पोः, अ० धात् । पवर्गान्ताददुपधाद्धातोर्यत् स्यात् । यथा-लभ्यम् । शप्यम् ॥

प्राप्त होने योग्य । विरुद्ध कथन योग्य । जिसकी उपधा में अकार हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

शकिसहोश्च ॥ ९९ ॥

श० हो:, च । आभ्यां यत् स्यात् । यथा-शक्यम् । सह्यम् ॥

होसकने योग्य । सहने योग्य । शक्लृ तथा सह धातु से भी यत् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

१-(६ । ४ । ६५) इतीत्वम् ।

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ १०० ॥

ग० यमः, च, अ० र्गे। एभ्यश्चानुपसर्गेभ्यो यत् स्यात्। यथा—गद्यम्। मद्यम्। चर्य्यम्। यम्यम् ॥ (चरेराङिचागुरौ)॥ आचार्योदेशः। गन्तव्य इत्यर्थः॥

गाने योग्य। मदिरा। स्वीकार करने योग्य। शान्त होने योग्य। उपसर्गरहित गद, मद, चर तथा यम धातु से यत् प्रत्यय हो॥ १००

अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥ १०१ ॥

अ० र्याः, ग० षु। गर्ह्यपणितव्य निरोधेष्वर्थेषु अवद्य पण्यवर्या निपात्यन्ते। यथा—अवद्यम्—पापम्। पण्या—धेनुः। व्यवहर्तव्येत्यर्थः। अनिरोधोऽप्रतिबन्धः। तस्मिन् विषये वृङो यत्। शतेन—वर्या—वडवा॥

पाप। ख़रीदने योग्य गाय। सौ से स्वीकार करने योग्य घोड़ी। अवद्य, पण्य, तथा वर्या ये शब्द गर्ह्य, पणितव्य तथा अनिरोध अर्थ में यत्प्रत्ययान्त निपातितहैं॥

वह्यं करणम् ॥ १०२॥

वहेर्धातोः करणे यत् प्रत्ययो निपात्यते। यथा—वहन्त्यनेनेति-वह्यं शकटम्॥

वह धातु से करण अर्थ में यत् प्रत्ययान्त वह्य यह निपातित है॥ १०२॥

अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः॥ १०३॥

स्वामि वैश्यार्थे यत् प्रत्ययो निपात्यते। यथा--अर्य्यः--स्वामी वैश्यो वा ॥

स्वामी (मालिक) तथा वैश्य अर्थ में ऋ धातु से यत प्रत्ययान्त अर्य यह निपातित है ॥ १०३ ॥

उपसर्या काल्या प्रजने ॥ १०४ ॥

उपसर्येति निपात्यते काल्या चेत् प्रजने स्यात् । गर्भग्रहणे प्राप्तकाला-काल्या । उपसर्या-गौः । गर्भाधानार्थ वृषभेणोपगन्तु योग्येत्यर्थः ॥

प्रजन अर्थात् प्रथम गर्भ ग्रहण का काल जिसको प्राप्त हो तो उप उपसर्ग पूर्वकसृ धातु से उपसर्या यह निपातित है ॥ १०४ ॥

अजर्य्यं सङ्गतम् ॥ १०५ ॥

नञ्पूर्वाज्जीर्यतेः कर्त्तरि यत् संगतं चेद् विशेष्यम् । यथा-तेन संगत मार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतम् ॥

हे राम ! उस आर्य के साथ अजर्य (न्यूनता रहित) संगति को शीघ्र कर। संगत अर्थ में नञ् पूर्वक जॄ धातु से यत् प्रत्ययान्त अजर्य्य यह निपातित है १०५

वदः सुपि क्यप् च ॥ १०६ ॥

अनुपसर्गे सुबन्त उपपदे वदेर्भावे क्यप् यत्प्रत्ययौ स्याताम्। यथा-ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्मवद्यम् । ब्रह्म-वेदः तस्य वदनमित्यर्थः ॥

सुबन्त उपपद हो तो उपसर्ग रहित वद धातु से क्यप् तथा यत् प्रत्यय हों १०६

भुवो भावे ॥ १०७॥

भुवः, भावे । सुबन्त उपपदेऽनुपसर्गे भावे भूधातोः क्यप् स्यात्। यथा-ब्रह्मणो भावो ब्रह्म भूयम् ॥

१-(६ । १ । १५)--सम्प्रसारणम् ।

सुबन्त उपपद होतो उपसर्ग रहित भू धातुसे भावमें क्यप् तथा यत्प्रत्यय हों॥ १०७॥

हनस्त च ॥१०८॥

हनः, तः, च । अनुपसर्गे सुप्युपपदे हन्तेर्भावे क्यप् स्यात तकारश्चान्तादेशः । यथा—ब्रह्मणो हननम् ब्रह्महत्या । स्त्रीत्वं लोकतः ॥

सुबन्त उपपद होतो उपसर्ग रहित हन धातुसे भाव में क्यप् प्रत्यय और हनके अन्तको तकारादेशहो ॥ १०८ ॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥ १०९ ॥

एभ्यो धातुभ्यः क्यप् स्यात् । यथा—इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः । पुनः क्यबुक्तिः परस्यापि ण्यतो बाधनार्था । (शंसि दुहिगुहिभ्यो वा) ॥ सस्यम्, शंस्यम् । दुह्यम्, दोह्यम् । गुह्यम्, गोह्यम् ॥ (आङ् पूर्वादञ्जेः सञ्ज्ञायामुपसङ्ख्यानाम्) ॥ (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणादिषु) बाहुलकात् करणे क्यप् । अनिदितामिति न लोपः । यथा—आज्यम्-घृतम् ॥

एति, स्तु, शास्, वृ, दृ तथा जुषी धातु से क्यप् प्रत्यय हो ॥ १०९ ।

ऋदुपधाच्चाक्लृपि चृतेः ॥ ११० ॥

ऋ० तः, च, अ० तेः । क्लृपिचृती विहाय ऋकारोपधाच्च धातोः क्यप् स्यात् । यथा--वृत-वृत्यम् । वृध्-वृध्यम् ॥

वर्त्तावे । वढ़ना । क्लृप् तथा चृत धातु को छोड़कर इतर ऋकारोपध धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

ई च खनः ॥ १११ ॥

१-(६ । १ । ७२) इतिलुक् । २-(६ । ४ । ३४) --इतीत्वम् ।

खनतेर्धातोः क्यप् ईकारश्चान्तादेशः स्यात्। यथा--खेयम् (आद्गुणः) ॥

खन धातु से क्यप् प्रत्यय हो और इसके अन्त को ईकारादेश हो ॥ १११ ॥

भृञोऽसञ्ज्ञायाम् ॥ ११२ ॥

भृञः, अं० म्। असंज्ञायां विषये भृञो धातोः क्यप् स्यात्। यथा--भृत्याः--कर्मकराः भर्त्तव्या इत्यर्थः। क्रिया शब्दोऽयं न तु संज्ञा॥

असञ्ज्ञा विषय में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

मृजेर्विभाषा ॥ ११३ ॥

मृजेः, विभाषा। मृजेः क्यप् वा स्यात् पक्षेण्यत्। यथा--मृज्यः मार्ग्यः॥

मृज धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥ ११४ ॥

इमे सप्त क्यबन्ता निपात्यन्ते। राज्ञा सोतव्योऽभिषव द्वारा निष्पादयितव्यः। यद्वा लतात्मकः सोमो राजा स सूयते कण्ड्यतेऽत्रेति अधिकरणे क्यप्। निपातनाद् दीर्घः। यथा--राजसूयः, राजसूयम्-अर्धर्चादिः। सरत्याकाशे-सूर्यः। कर्त्तरि क्यप्। निपातना दुत्त्वम्। यद्वा (षू-प्रेरणे)--तुदादिः। सुवति कर्माणि लोकं प्रेरयति क्यपो रुट्। मृषोपपदाद् वदेः कर्माणि नित्यं क्यप्। मृषोद्यम्। विशेष्य निघ्नोऽयम्। उच्छ्राय सौन्दर्यगुणाः-मृषोद्याः। रोचतेः-रुच्यः। गुपे रादेः कत्वं च संज्ञायाम्। सुवर्ण रजतभिन्नं धनम्-कुप्यम्। गोप्य-

१--(७।३।५२) इतिकुत्वम्। (७।२।११४) इति वृद्धिः।

मन्यत्। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते--कृष्टपच्याः--कर्मकर्त्तरि न व्यथते अव्यथ्यः ॥

राजसूय आदि सप्त शब्द क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ११४ ॥

भिद्योद्ध्यौ नदे ॥ ११५ ॥

नदेऽभिधेये भिदेरुज्झेश्चक्यप्,उज्झेर्धत्वं निपात्यते।यथा-भिनत्ति-कूलम्--भिद्यः। उज्झत्युदकम्--उद्ध्यः ॥

नद (नदी) वाच्य हो तो भिद्य तथा उद्ध्य क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥

पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे ॥ ११६ ॥

नक्षत्रेऽभिधेयेऽधिकरणे क्यप् निपात्यते। यथा-पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः-पुष्यः। सिध्यन्त्यस्मिन्-सिध्यः ॥

नक्षत्र वाच्य होतो पुष धातु से पुष्य तथा सिध धातु से सिध्य क्यप् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ११६ ॥

विपूयविनीयजित्यामुञ्जकल्कहलिषु

वि०त्याः, मुं०षु। पूङ् नीञ् जिभ्यः क्यप्। यथा-विपूयोमुञ्जः रज्ज्वादि करणाय शोधयितव्य इत्यर्थः। विनीयः कल्कः-पिष्ट ओषधि विशेष इत्यर्थः। जित्यो हलिः। बलेन कृष्टव्य इत्यर्थः। कृष्ट समीकरणार्थ स्थूल काष्ठम्। सीतेत्यर्थः ॥

मुञ्ज अर्थ में विपूय, कल्क अर्थ में विनीय, और हलि अर्थ में जित्य ये क्रमशः विपूर्वक पूङ्, विपूर्वकणीञ्, और जी धातु से निपातित हैं ॥ ११७ ॥

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ ११८ ॥

(छन्दसीति वक्तव्यम्) । यथा-प्रतिगृह्यम् । अतिगृह्यम् । लोके तु-प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् ॥

छन्दो विषय में प्रति तथा अति पूर्वक ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

पदाऽस्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ॥ ११९ ॥

पदेऽस्वैरिणि बाह्यायां पक्ष्येचार्थे ग्रहेर्धातोः क्यप् स्यात् । यथा--अवगृह्यम्, प्रगृह्यम्-पदम् । अस्वैरी-परतन्त्रः । गृह्यकाः--शुकाः । पञ्जरादि बन्धनेन परतन्त्री कृता इत्यर्थः । बाह्यायाम् । ग्राम गृह्या सेना । ग्रामबहिर्भूतेत्यर्थः । स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् पुन्नपुंसकयोर्न । पक्ष्ये भवः--पक्ष्यः दिगादित्वाद्यत् । आर्य्यैर्गृह्यते--आर्य्यगृह्यः । तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः ॥

पद, अस्वैरि, बाह्या तथा पक्ष्य अर्थ में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

विभाषा कृवृषोः ॥ १२० ॥

कृञो वृषश्च वा क्यप् स्यात् । यथा--कृत्यम्, कार्य्यम् । वृष्यम्, वर्ष्यम् ॥

कृञ् तथा वृष धातु से विकल्प से क्यप् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

युग्यं च पत्रे ॥ १२१ ॥

युग्यमिति निपात्यते पत्रं चेत्स्यात् । यथा-पतत्यनेनेतिपत्रम्-वाहनमित्यर्थः । युग्यो गौः । युग्योऽश्वः । युग्यो हस्ती । अत्र क्यप् कुत्वं च निपात्यते ॥

पत्र (सवारी) अर्थ में युज धातु से क्यप् प्रत्ययान्त युग्य यह निपातित है ॥

१—(३ । १ । १२४) इति ण्यत्

अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ १२२ ॥

अं० द्, अ० म्। अमोपपदाद् वसे रधिकरणे ण्यत् वृद्धौ सत्यां पाक्षिकोह्रस्वश्च निपात्यते। यथा–अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कौ–अमावास्या, अमावस्या ॥

अमा उपपद हो तो वस धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त अमावस्य यह विकल्प से निपातित है ॥ १२२ ॥

छन्दसिनिष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्य खान्य देवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्य भाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ १२३ ॥

छन्दसीमे निपात्यन्ते। कृन्तते निस्पूर्वा क्यपि प्राप्ते ण्यत्। आद्यन्तयोर्विपर्यासः निसः षत्वं च। निष्टर्क्यं चिन्वीत। देव शब्दे उपपदे ह्वयते र्जुहोते र्वा क्यप् दीर्घश्च। स्पर्धते वा उ देवहूये। प्र उत् आभ्यां नयतेः क्यप्। प्रणीयः। उन्नीयः। उत्पूर्वाच्छिषेः क्यप्। उच्छिष्यः। मृङ्स्तृञ् ध्वृभ्यो यत्। मर्यः। स्तर्या। स्त्रियामेवायम्। ध्वर्यः। खनेर्यण्ण्यतौ। खन्यः, खान्यः। यजेर्यः। शुन्धध्वं देव्याय कर्मणे देवयज्यायै। आङ्पूर्वात् पृच्छेः क्यप्। आपृच्छ्यम्। सीव्यतेः क्यप् षत्वं च। प्रतिषीव्यः। ब्रह्मणि वदेर्ण्यत्। ब्रह्मवाद्यम्। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत्। भाव्यः। स्ताव्यः। उपपूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत् आयादेशश्च पृडे उत्तरपदे। उपचाय्यपृडम्। (हिरण्य इतिवाच्यम्)। उपचेयपृडमन्यत्। मृडसुखने। पृड चेत्यस्मादिगुपध लक्षणः कः ॥

निष्टर्क्यादि १८ शब्द इस सूत्र में निपातित हैं ॥ १२३ ॥

ऋहलोर्ण्यत् ॥ १२४ ॥

ऋहलोः, ण्यत्। ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातो र्ण्यत् स्यात्। यथा—आर्यस्य कार्यं भवता च वार्य्यम्। वाक्यं न वाच्यम् विपरीतबुद्धे!॥

ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय हो॥ १२४॥

ओरावश्यके ॥ १२५ ॥

ओः, आँ० के। उवर्णान्ताद् धातोर्ण्यत् स्यादवश्यं भावे द्योते। यथा—लाव्यम्। पाव्यम्॥

अवश्य काटने के योग्य। अवश्य साफकरने के योग्य। आवश्यक अर्थ द्योत्य हो तो उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो॥ १२५॥

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ।१२६।

आ० चमः, च। एभ्यो धातुभ्यः ण्यत् स्यात्। यथा—(षुञ्-अभिषवे)-आसाव्यम्। (यु-मिश्रणे)-याव्यम्। (टु-वप्-बीजसन्ताने) वाप्यम्। बीज सन्तानम्, क्षेत्रे विकिरणम्, गर्भाधानम् च। अयं छेदनेऽपिकेशान्—वपति। (रप, लप--व्यक्तायां वाचि)--राप्यम्, लाप्यम्। (त्रपूष्--लज्जायाम्)-त्राप्यम्। (चमु-अदने)-आचाम्यम्॥

आङ् पूर्वक सु, वपि रपि, लपि, त्रपि तथा चमु धातु से ण्यत् प्रत्यय हो १२६

आनाय्योऽनित्ये ॥ १२७ ॥

आनाय्यः, अं० त्ये। आङ् पूर्वान्नयते र्ण्यद्, आदेशश्च निपात्यते। यथा—आनाय्यो दक्षिणाग्नि विशेष एवेदम्। स हि गार्हपत्यादानीयतेऽनित्यश्च। सततमप्रज्वलनात्॥

यदि अनित्य अर्थ वाच्य हो तो आङ् पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त आनाय्य यह निपातित है ॥ १२७ ॥

प्रणाय्योऽसम्मतौ ॥ १२८ ॥

प्र० य्यः, अ० तौ । असम्मतावभिधेये प्रणाय्य इति निपात्यते । सम्मतिः प्रीति विषयी भवनं कर्म्मव्यापारः । तथा भोगेष्वादरोऽपि सम्मतिः । यथा-प्रणाय्यः-चौरः । प्रीत्यनर्हइत्यर्थः । प्रणाय्योऽन्ते वासी । विरक्त इत्यर्थः ॥

असम्मति अर्थ में प्र पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त प्रणाय्य यह निपातित है।

पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवास सामिधेनीषु ॥ १२९ ॥

पा० धाय्याः, मा० षु । पाय्यादयः शब्दा निपात्यन्ते यथासङ्ख्यं माने हविषि निवासे सामिधेन्यां चाभिधेयायाम् । यथा-मीयतेऽनेनेतिपाय्यम्-मानम् । ण्यद् धात्वादेः पत्वं च । आतो युगिति युक् । सम्यङ् नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति सान्नाय्यम् -हविर्विशेषः, ण्यदादेशः, समोदीर्घश्च निपात्यते । निचीयतेऽस्मिन्धान्यादिकं-निकाय्यः निवासः । अधिकरणे ण्यत् । आय्, धात्वादेः कुत्वं च निपात्यते धीयतेऽनया समिदिति--धाय्या--ऋक् ॥

मान, हविष्, निवास तथा सामिधेनी अर्थ में यथा क्रम पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य तथा धाय्या निपातित हैं ॥ १२९ ॥

क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ॥ १३० ॥

क्रतावभिधेये कुण्डपाय्य सञ्चाय्य इतीमौशब्दौ निपात्येते । पिबतेरधिकरणे यत् युक् च । यथा--कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोमः-कुण्डपा-

य्यः-क्रतुः। सम्पूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत्, आयादेशश्च। सञ्चीयतेऽस्मिन् सोमइति सञ्चाय्यः क्रतुः॥

क्रतु (यज्ञ) अर्थ में कुण्डपाय्य तथा सञ्चाय्य निपातित हैं॥ १३०॥

अग्नौपरिचाय्योपचाय्यसमूह्याः १३१

अग्नि धारणार्थे स्थलविशेषे इमोनिपात्यन्ते। परि, उप पूर्वाच्चिनोतेर्ण्यत्। सम्पूर्वाद् वहतेः सम्प्रसारणं दीर्घत्वं च। यथा-परिचाय्यः। उपचाय्यः। समूह्यं चिन्वीत॥

अग्नि धारणस्थल विशेष अर्थमें परिचाय्य, उपचाय्य तथा समूह्य निपातित हैं॥

चित्याग्निचित्ये च॥ १३२॥

चित्यशब्दोऽग्निचित्या शब्दश्च निपात्यते। यथा-चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्नेश्चयन मग्निचित्या॥

चित्य तथा अग्निचित्या निपातित हैं॥ १३२॥

ण्वुल्तृचौ॥ १३३॥

सर्व धातुभ्य इमौ स्याताम्। (कर्त्तरिकृद्)-इति कर्त्रर्थे। (युवोरनाकौ)-यथा-- कारकः। हारकः। कारिका। हारिका। कर्त्ता। हर्त्ता। कर्त्री। हर्त्री॥

धातु मात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों। १३३॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यचः १३४

न० भ्यः, ल्यु० चः। नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रहादेर्णिनिः, पचादेरच्

१-(७।३।४४) इत्यतइकारः। (४।१।४) इतिटाप्। २-(४।१।५)-इतिङीप्।

स्यात्। यथा—नन्दयतीति-नन्दनः। जनमर्दयतीति-जनार्दनः। मधुसूदनः। विशेषेण भीषयते इतिविभीषणः। लवणः नन्द्यादि गणेनिपातनाण्णत्वम्॥ ग्राही। स्थायी। मन्त्री। विषयी वृद्ध्य भावो निपातनात्। विषयी- इह षत्वमपि। परिभावी, परिभवी, पाक्षिको वृद्ध्याभावो निपात्यते। पचादिराकृतिगणः। पचः। श्वपच इत्यपि। पततीति पतः। पारापत इत्यपि। वदतीति-वदः। कुवदो यद्वद इत्यपि। वष्टीति—वशः। व्रणयतीति--व्रणः। रणयतीति--रणः। क्षमः। भरः। जार भरः। वृणोतीति--वरः। कन्या-वर-इत्यपि। गोपः। सर्पः। नर्त्तः। दर्शः। मेषः॥

गण पठित नन्द्यादि ग्रह्यादि तथ. पचादि धातुओं से क्रमशः ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हों॥ १३४॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः॥ १३५॥

एभ्यः कः स्यात्। यथा--क्षिपः। लिखः। बुधः। कृशः। जानातीति--ज्ञः। प्रीणातीति प्रियः। किरतीति--किरः॥

इक् प्रत्याहार जिसकी उपधा में हो तथा ज्ञा प्री ओर कृ धातु से क प्रत्यय हो १३५

आतश्चोपसर्गे॥ १३६॥

आतः, च, उं० र्गे। सोपसर्गेभ्य, आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कः स्यात्। यथा- प्रज्ञः। प्रस्थः। बलप्रदः॥

पण्डित। एक ऽ१ सेर। बलको देनेवाला। उपसर्गपूर्वक आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो॥ १३६॥

पाघ्राध्माधेट्दृशः शः॥ १३७॥

एभ्यो धातुभ्यः शः स्यात् । यथा- पिबतीति-पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । धया-कन्या । पश्यः ॥

पा, घ्रा, ध्मा, धेट् तथा दृशिर् धातु से श प्रत्यय हो ॥१३७॥

अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ॥ १३८ ॥

अ० तं, लि० भ्यः, च । अनुपसर्गेभ्यो लिम्पादिभ्यः शः स्यात् । यथा--लिम्पतीति-लिम्पः । विन्दः । धारयः । पारयः वेदयः । उद्देजयः । चेतयः । (सातिः-सुखार्थः -सौत्रो हेतुमण् ण्यन्तः सातयः । साहयः । (नौ लिम्पेर्वाच्यः) । निलिम्पाः देवाः ॥ (गवादिषु विन्देः सञ्ज्ञायाम्) । यथा--गोविन्दः । अरविन्दः ॥

लीपनेवाला । प्राप्त होनेवाला । धारण करने वाला । पालन करनेवाला । जतलानेवाला । कंपानेवाला । चेतनेवाला । सुखदाता । सहनेवाला । उपसर्ग रहित लिम्पादिधातुओं से श प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ १३९ ॥

द० त्योः, वि० षा । दाञो धाञश्च वाशः स्यात् । यथा--ददः, दायः । दधः, धायः ॥

दाता । धारणकरने वाला अथवा पोषण करनेवाला । डु-दाञ और डु धाञ् धातु से श प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ १४० ॥

ज्व० भ्यः, णः । इतिशब्द आद्यर्थः । ज्वलादिभ्यः क्सन्तेभ्यो वा णः स्यात् । पक्षे अच् । यथा--ज्वालः, ज्वलः । चालः, चलः ॥

(तनोते रूपसङ्ख्यानम्) ॥ अवतनोतीति-अवतानः ॥

आगकीलपट । चलनेवाला । ज्वल धातुसे लेकर कसपर्यन्त धातुओं से विकल्पसे ण प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

श्याऽऽद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसाऽवहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ १४१ ॥

श्या० सं०, च । श्यैङ् प्रभृतिभ्यो नित्यं णः स्यात् । यथा-अवश्यायः, प्रतिश्यायः । आत्-दायः । धायः । व्याधः । (स्रु-गतौ)-आङ् पूर्वः, सम्पूर्वश्च । आस्रावः, संस्रावः । अत्यायः । अव-सायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥

गमनकर्त्ता । दाता, धाता । बहेलिया । चूना, टपकना । गमनकर्त्ता । समाप्ति, विराम । हरण । चाटना, चटनी । अस्पर्श । दम, स्वास । श्यैङ्, आकारान्त, व्यध, आङ् + स्रु, सम् + स्रु अति + इण, अव + सा, अव + हृ, लिह, श्लिष और श्वस धातु से ण प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥

दुन्योरनुपसर्गे ॥ १४२ ॥

दुन्योः, अं० गे । णः स्यात् । यथा-दुनोतीति-दावः । नयतीति नायः ॥

अग्नि । नेता । उपसर्ग रहित टु दु तथा णीञ् धातु से ण प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

विभाषा ग्रहः ॥ १४३ ॥

ग्रहो णो वा स्यात् । पक्षेऽच् । व्यवस्थित विभाषेयम् । यथा-तेन जलचरे ग्राहः, ज्योतिषि-ग्रहः ॥

ग्रह धातुसे विकल्प करके ण प्रत्यय हो ॥ १४३ ॥

१-(७ । ३ । ६६) इतियुक् ।

गेहे कः ॥ १४४ ॥

गेहे कर्त्तरि ग्रहेः कः स्यात् । यथा—गृह्णाति-धान्यादिकमिति-गृहम् तात् स्थ्याद्-गृहाः—दाराः ॥

अवलायें । गेह (घर) कर्त्ता होने पर ग्रह धातु से क प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

शिल्पिनि ष्वुन् ॥ १४५ ॥

क्रियाकौशलम्-शिल्पम् । तद्वतिकर्त्तरि ष्वुन् स्यात् । (नृतिखनिरञ्जिभ्य एव)। यथा—नर्त्तकः, नर्त्तकी। खनकः, खनकी । (असि अके अने च रञ्जेर्न लोपो वाच्यः) । रजकः, रजकी ॥

शिल्पी कर्त्ता वाच्य हो तो नृति, खन तथा रञ्जधातु से ष्वुन् प्रत्यय हो ॥ १४५

गस्थकन् ॥ १४६ ॥

गैः, थकन् । शिल्पिनि कर्त्तरि गायतेः थकन् स्यात् । यथा—गाथकः, गाथिका ॥

गानेवाला (स्त्री)। शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

ण्युट् च ॥ १४७ ॥

शिल्पिनि कर्त्तरि गायते ण्युट् स्यात् । यथा—गायनः, गायनी ॥

गानेवाला (ली) । यदि शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से ण्युट् प्रत्यय हो ॥ १४७

हश्चव्रीहिकालयोः ॥ १४८ ॥

हः, च, व्री० योः । ओहाक ओहाङश्च ण्युट् स्यात्-व्रीहौ

काले च, कर्त्तरि । यथा—जहात्युदकमिति हायनो व्रीहिः । जहाति भावानिति-हायनोवर्षम्, जिहीते प्राप्नोतीति वा ॥

व्रीहि तथा काल अर्थमें ओहाक् तथा ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो ।१४८।

प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ॥ १४९ ॥

स्पष्टम् । समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लक्ष्यते । यथा—प्रवकः । सरकः । लवकः ॥

सुष्ठु गन्ता २ । सुष्ठु काटनेवाला । समभिहार अर्थ में प्रु, सृ तथा लू धातु से वुन् प्रत्यय हो ॥ १४९ ॥

आशिषि च ॥ १५० ॥

आशीर्विषयार्थ वृत्तेर्धातोर्वुन् स्यात् कर्त्तरि । यथा—जीवतात्—जीवकः । नन्दतात्—नन्दकः । आशीः प्रयोक्तृ धर्मः । आशासितुः पित्रादेरियमुक्तिः ॥

आशीर्वाद अर्थ में धातु से वुन् प्रत्यय हो ॥ १५० ॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तिमगात्.

अथ द्वितीयः पादारम्भः ।

कर्म्मण्यण् ॥ १ ॥

कर्म्मणि, अण् । कर्म्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात् । उपपद समासः । यथा—मोदकान् करोतीति—मोदककारः । कुम्भकारः । कुम्भकारी । (शीलिकामि भक्ष्या चरिभ्योणः) ॥ अणोऽपवादार्थं वार्त्तिकम् । ओदनशीलः, ओदनशीला । मोदककामः, मो-

दककामा । मांसभक्षः, मांसभक्षा । कल्याणचारः, कल्याणचारा । (ईक्षिक्षमिभ्यांच) सुखप्रतीक्षः, सुखप्रतीक्षा । बहुक्षमः, बहुक्षमा ॥

हलवाई । कुम्हार, कुम्हारी । कर्म्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय हो ॥ १ ॥

ह्वावामश्च ॥ २ ॥

ह्वा० मः, च । ह्वेञ् वेञ् माङ् इत्येभ्यो धातुभ्यः कर्म्मण्युपपदेऽण् स्यात् । यथा-स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥

सुखको कहनेवाला । जुलाहा । अन्न को तौलनेवाला (तौला) । कर्म्म उपपद हो तो ह्वेञ् वेञ् तथा माङ् धातु से अण प्रत्यय हो ॥ २ ॥

आतोऽनुपसर्गेकः ॥ ३ ॥

आतः, अ०र्गे, कः । आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदेकः स्यात् (आतोलोपः) । यथा गोदः । बुद्धिदः । पार्ष्णित्रम् । (कविधौ सर्वत्रप्रसारणिभ्योडः) ब्रह्म जिनातीति-ब्रह्मज्यः । सर्वत्र ग्रहणात् । आतश्चोपसर्गे-आह्वः । प्रह्वः ॥

गायको देनेवाला । बुद्धि को देनेवाला । एड़ी को बचानेवाला । कर्म उपपद हो तो उपसर्ग रहित आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो ॥ ३ ॥

सुपि स्थः ॥ ४ ॥

सुपि-इतियोगो विभज्यते । सुपि उपपदे आदन्ताद्धातोः कः स्यात् । यथा-द्वाभ्यांपिबतीति-द्विपः । समस्थः । विषमस्थः । ततः-(स्थः) सुपि तिष्ठतेः कः स्यात् । आरम्भसामर्थ्याद्भावे । आखूनामुत्थानम्-आखूत्थः ॥

हस्ती । बीच की दशाका । विषम दशाका । चूहोंका उठना । सुबन्त उपपद हो तो आकार तथा स्था धातु से क प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ ५ ॥

तुन्दशोकयोः कर्म्मणोरुपपदयोः परिमृजापनुदोर्धात्वोः कः स्यात्। (आलस्य सुखाहरणयोरिति वाच्यम्) यथा--तुन्दं मार्ष्टीति-तुन्दपरिमृजः-अलसः। शोकापनुदः सुखस्याहर्त्ता। यश्च संसारासारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति--स शोकापनुदः॥ (कप्रकरणे-मूलविभुजादिभ्य उपसङ्ख्यानम्)॥ यथा--मूलानि विभुजति--मूलविभुजो रथः। नखमुचानि धनूंषि। कौमोदते-कुमुदम्। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः। गिलतीति-गिलः॥

तुन्द तथा शोक कर्म्म क्रमशः उपपद हों तो परिपूर्वक मृजूष तथा अप पूर्वक णुद धातु से क प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

प्रे दाज्ञः ॥ ६ ॥

दारूपात्, जानातेश्च प्रोपसृष्टात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। यथा-सर्वप्रदः। पथिप्रज्ञः॥

सबकुछ देनेवाला। मार्गज्ञाता। कर्मउपपद हो तो प्रपूर्वक डु-दाञ् तथा ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

समि ख्यः ॥ ७ ॥

कर्मण्युपपदे सम्पूर्वात् ख्याधातोः कः स्यात्। यथा- गां संचष्टेगो सङ्ख्यः॥

गौ की गणना करनेवाला। कर्म उपपद हो तो सम् पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो। ७॥

गापोष्टक् ॥ ८ ॥

गापोः, टक्। अनुपसृष्टाभ्यामाभ्यां टक् स्यात् कर्म्मण्युपपदे। यथा--साम गायतीति-सामगः, सामगी। (पिबतेः सुराशीध्वो रितिवाच्यम्) यथा--सुरापः, सुरापी। शीधुपः, शीधुपी॥

सामवेदको गानेवाला, सामवेदको गानेवाली। सुरा (शराब) को पीनेवाला (ली)। ईख के रसको पीनेवाला, पीनेवाली। कर्म उपपद हो तो उपसर्ग रहित गा धातु से टक् प्रत्यय हो॥ ८॥

हरतेरनुद्यमनेऽच्॥ ९॥

हरतेः, अ० ने, अच्। कर्मण्युपपदे हरते रनुद्यमने वर्त्तमानादच् स्यात्। यथा-अंशं हरतीति-अंशहरः॥ (शक्ति लाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटी धनुष्षु ग्रहेरुपसङ्ख्यानम्)॥ यथा शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। अङ्कुशग्रहः। यष्टि ग्रहः। तोमरग्रहः। घटग्रहः। घटीग्रहः! धनुर्ग्रहः॥ (सूत्रे च धार्य्यर्थे)। सूत्र ग्रहः। यस्तु केवलं सूत्र मुपादत्त, न तु धारयति-तत्र अणेव- सूत्रग्राहः॥

भागी। कर्म्म उपपद हो तो अनुद्यम अर्थमें वर्त्तमान हृ धातु से अच् प्रत्यय हो

वयसि च॥ १०॥

उद्यमनार्थमिदंसूत्रम्। वयसि गम्ये कर्मण्युपपदे हरतेरच् स्यात्। यथा--कवचहरः-कुमारः॥

अवस्था गम्यमान हो तो कर्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो॥ १०॥

आङि ताच्छील्ये॥ ११॥

१—(४। १। १५ ; इति ङीप्॥

ताच्छील्ये गम्ये आङ् पूर्वाद् हरतेः कर्मण्युपपदेऽच् स्यात् । यथा--पुष्पाण्याहरति तच्छीलः- पुष्पहरः । फलाहरः ॥

जो स्वभाव से ही फूलों को हरण करता है, तथा फलों को । तत् शीलता गम्यमान हो तो आङ् पूर्वक कर्म्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

अर्हः ॥ १२ ॥

कर्म्मण्युपपदेऽर्हतेरच् स्यात् । यथा--धन्यवादार्हः, धन्यवादार्हा । पूजार्हः, पूजार्हा । स्त्रीलिङ्गे विशेषः, इत्येके ॥

धन्यवाद के योग्य । पूजा के योग्य । कर्म उपपद होतो अर्ह धातु से अच्प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

स्तम्बकर्णयोरमिजपोः ॥ १३ ॥

स्तं०योः,रं०पोः । स्तम्ब कर्ण इत्येतयोः सुबन्तयो रुपपदयोर्यथासङ्ख्य रमिजपोरच् स्यात् ॥ (हस्तिसूचकयोरितिवाच्यम्) ॥ यथा--स्तम्बेरमते-स्तम्बेरमो—हस्ती ॥ कर्णेजपः-सूचकः ॥

स्तम्ब तथा कर्ण सुबन्त उपपद होतो यथा सङ्ख्य रमु और जप धातुसे अच् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

शमि धातोः सञ्ज्ञायाम् ॥ १४ ॥

शम्युपपदे धातुमात्रात्संज्ञायां विषयेऽच् स्यात् । यथा-शङ्कल्याणं करोतीति-शङ्करः । शम्भवः । शंवदः ॥

१--तत् पुरुषे कृतीति, हलन्तादिति वा, ङे रलुक् ।

कल्याण कर्त्ता (ईश्वर)। कल्याणमय (ईश)। सत्यवक्ता। शम् उपपद हो तो धातु मात्र से संज्ञाविषय में अच् प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

अधिकरणे शेतेः ॥ १५ ॥

अधिकरणे सुबन्त उपपदे शेतेरच् स्यात्। यथा -खेशेते-खशयः। गर्त्तशय ॥ (पार्श्वादिषूपसङ्ख्यानम्)॥ यथा--पार्श्वाभ्यां शेते-पार्श्वशयः। पृष्ठशयः। उदरेण शेते--उदरशयः॥ (उत्तानादिषु कर्त्तृषु)॥ उत्तानः शेते-उत्तानशयः। अवमूर्धशयः। अवनतो मूर्धा यस्य असौ-अवमूर्धा। अधोमुखः शेते इत्यर्थः-॥ (गिरौ डश्छन्दसि)॥ गिरौ शेते गिरिशयः॥

आकाश में सोनेवाला। बिलमें सोनेवाला। अधिकरण सुबन्त उपपद हो तो शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो ॥ १५॥

चरेष्टः ॥ १६ ॥

चरेः, टः। अधिकरणे सुबन्ते उपपदे चरेष्टः स्यात्। यथा-समाजेषुचरतीति समाजचरः, समाजचरी॥

समाजों में भ्रमण करनेवाला (ली)। अधिकरण सुबन्त उपपद हो तो चर धातु से ट प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

भिक्षासेनाऽऽदायेषु च ॥ १७ ॥

एषूपपदेषु चरेष्टः स्यात्। यथा--भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्। आदायचरः॥

भिक्षार्थ घूमनेवाला। सेना के साथ चलनेवाला। लेकरचलनेवाला। भिक्षा, सेना, तथा आदाय सुबन्त उपपद हों तो चरधातु से ट प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे इत्येषूपपदेषु सर्त्तेष्टः स्यात् । यथा—पुरःसरतीति—पुरस्सरः । अग्रतस्सरः । अग्रेसरः ॥

आगे जानेवाला । पुरस् अग्रतस् तथा अग्रे उपपद हों तो धातुसे टप्रत्ययहो ॥

पूर्वे कर्त्तरि ॥ १९ ॥

कर्त्तृवाचिनि पूर्वशब्दे उपपदे सर्त्तेष्टःस्यात् । यथा—पूर्वःसरतीति—पूर्वसरः ॥

अग्रगामी । कर्त्तृ वाचक पूर्वशब्द उपपद होतो सृ धातुसे ट प्रत्ययहो ॥ १९ ॥

कृञोहेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु॥२०॥

कृञः, हे०षु । एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् । अतःकृकमीति (८। ३।४६) । इति सः । यथा—यशस्करी—विद्या।अर्थकरः। वचनकरः॥

यशको करने वाली विद्या । धनको इकट्ठा करने वाला । वचनको माननेवाला । हेतु (कारण) ताच्छील्य (स्वभावता) आनुलोम्य (अनुकूलता) गम्यमानहोतो कर्म्मोपपद डु-कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो ॥ २० ॥

दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्त्तृचित्रक्षेत्रसङ्ख्याजङ्घाबाहहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ २१ ॥

एषूपपदेषु कृञष्टः स्यात् । यथा—दिवाकरोतीति—दिवाकरः । वि-

भाकरः । निशाकरः । प्रभाकरः । कस्कादित्वात्सः । भास्करः । कारकरः । अन्तकरः । अनन्तकरः । आदिकरः । बहुकरः । नान्दीकरः । किङ्करः । लिपिकरः । लिबिकरः । बलिकरः । भक्तिकरः । कर्तृकरः । चित्रकरः । क्षेत्रकरः। सङ्ख्या—एककरः, द्विकरः, त्रिकरः । जङ्घाकरः । बाहुकरः । अहस्करः । यत्करः । तत्करः । धनुष्करः । अरुष्करः॥ (किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज्विधानम्)॥ किङ्करा । यत्करा । तत्करा । पुंयोगेङीष् ॥

सूर्य २ । चन्द्रमा । सूर्य, मारनेवाला, यत्नकरनेवाला । अन्तकरने वाला । अनन्तजगत्को बनाने वाला(ईश्वर) । आरम्भ करने वाला । बहुत करने वाला। नाटक के आरम्भ में गाने वाला । नौकर । कापीलिखने वाला, नक़ल करने वाला । मालगुजारी को वसूल करने वाला । सेवक (भक्त) । कर्त्ता को बनानेवाला (ईश्वर) । तसवीर-उतारने वाला । किसान । एक, दो, तीन, कामों को करने वाला । जांघ को बनाने वाला (वैद्य) । भुजा को बनाने वाला । सूर्य्य। प्रयत्न से करने वाला । विस्तार करने वाला । धनुष को बनानेवाला । व्रण करने वाला । दिवादिकर्म्म उपपदहोंतो डु--कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

कर्म्मणि भृतौ ॥ २२॥

कर्म्मशब्दे उपपदे करोतेष्टः स्यात् । यथा—कर्म्मकरोतीति—कर्मकरः—सेवक इत्यर्थः ॥

भृति गम्यमान हो तो कर्म्मोपपद होनेपर डु-कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

न शब्द श्लोककलह गाथा वैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥ २३ ॥

एषूपपदेषु कृञष्टो न स्यात् । यथा—शब्दंकरोतीति—शब्दकारः। श्लोककारः । कलहकारःगाथाकारः । वैरकारः । चाटुकारः । सूत्रकारः । मन्त्रकारः । पदकारः ॥

शब्दको करनेवाला । श्लोक को बनानेवाला । लड़ाई करनेवाला । गाथाको बनानेवाला । शत्रुता करनेवाला । खुशामदी । सूत्रको बनानेवाला । गुप्तपरिभाषण करनेवाला । पदको रचनेवाला । शब्दादि कर्म्म उपपद हों तो डु-कृञ् धातु से ट प्रत्यय न हो ॥ २३ ॥

स्तम्बशकृतोरिन् ॥ २४ ॥

स्त० तोः, इन् ॥ (व्रीहिवत्सयोरिति वाच्यम्) ॥ स्तम्ब शकृत् कर्म्मणोरुपपदयोः करोतेरिन् स्यात् । यथा—स्तम्बकरिः—व्रीहिः । शकृत्करिः—वत्सः ॥

स्तम्ब तथा शकृत् कर्म्म उपपद हों तो डु-कृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥ २५ ॥

हरतेः, दृ० योः, पशौ । पशौकर्त्तरि दृतिनाथयोरुपपदयोर्हृञ इन् स्यात् । यथा—दृतिं हरतीति—दृतिहरिः । नाथंनासारज्जुं हरतीति—नाथहरिः ॥

चरसा खींचनेवाला पशु । नाथको तोड़नेवाला पशु । पशु कर्त्ता हो तो दृति तथा नाथ कर्म उपपद होनेपर हृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥ २६ ॥

फः० हिः, आ० रिः, च । उपपदस्य एदन्तत्वं ग्रहे रिन् प्रत्ययश्च निपात्यते । यथा-फलानिगृह्णातीति—फलेग्रहिः-वृक्षः । आत्मशब्दस्य उपपदस्य मुमागम इन्प्रत्ययश्च भृञो निपात्यते । आत्मानंबिभर्त्ति--आत्मम्भरिः । चात्-कुक्षिम्भरिः । उदरम्भरिः ॥

वृक्ष । स्वयं पेट भरनेवाला । फलेग्रहि तथा आत्मम्भरि शब्द निपातित हैं २६

छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ २७ ॥

एभ्यः कर्म्मण्युपपदे छन्दसीन् स्यात्। यथा–ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् । गोसनिम् । ये पथां पथि रक्षयः । हविर्मथीनाम् ॥

कर्म्म उपपद हो तो छन्दो विषयमें वन सन रक्षि तथा मथ धातु से इन् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

एजेः खश् ॥ २८ ॥

कर्म्मण्युपपदे ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्। यथा--जनान् एजयतीति -जनमेजयः ॥

मनुष्यों को कम्पाने वाला। कर्म उपपद हो तो ण्यन्त एजृ धातु से खश् प्रत्यय हो ॥

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ २९ ॥

अत्र वार्त्तिकम् ।(स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वाच्यम्)॥यथा--स्तनम्-धयतीति--स्तनन्धयः।धेटष्टित्त्वात्--स्तानन्धायी । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः ॥

स्तन पीनेवाला। नाकसे धौंकने वाला। नासिका तथा स्तन कर्म्म उपपद हों तो ध्मा तथा धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

नाडीमुष्ट्योश्च ॥ ३० ॥

नाँ० ष्ट्योः, च । अनयो रुपपदयोः कर्म्मणोर्ध्माधेटोः खश्स्यात् । यथासङ्ख्यं नेष्यते । यथा--नाडिन्धमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः ॥ (घटी खारीखरीषूपसङ्ख्यानम्) । यथा--घटिन्धमः । घटिन्धयः । खारिन्धमः । खारिन्धयः । खरिन्धमः । खरिन्धयः ॥

१-(६ । ३ । ६७) इति मुमागमः ॥ २-(६ । ३ । ६६) इति ह्रस्वम् ।

सुनार। बालक। नाडी तथा मुष्टि कर्म्मउपपद हों तो ध्मा तथा धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

उदि कूले रुजिवहोः ॥ ३१ ॥

उत्पूर्वाभ्यां रुजिवहिभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् स्यात्। यथा--कूल मुद्रुजतीति--कूलमुद्रुजो रथः। कूलमुद्वहः ॥

रथ, गाड़ी। नदी। कूलकर्म उपपद हो तो उत्पूर्वक रुजो तथा वह धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

वहाभ्रे लिहः ॥ ३२ ॥

वह अभ्र इति कर्मणोरुपपदयोर्लिहः खश् स्यात्। यथा--वहः स्कन्धः। तं लेढीति--वहंलिहो गौ। अभ्रंलिहो वायुः ॥

वह तथा अभ्र कर्म उपपद हों तो लिह धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३२ ॥

परिमाणे पचः ॥ ३३ ॥

परिमाणे कर्मण्युपपदे पचः खश् स्यात्। यथा--प्रस्थं पचतीति--प्रस्थंपचा स्थाली। खारीम्पचः कटाहः ॥

एकऽ१सेर जिसमें पके ऐसी बटलोई। खारी (१२॥ऽ२) जिस में पके ऐसी कड़ाही। परिमाण (प्रस्थादि) वाचक कर्म उपपद हों तो डु-पचष् धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

मितनखे च ॥ ३४ ॥

मित नख इति कर्मणोरुपपदयोः पचः खश् स्यात्। यथा--मितम्पचतीति--मितम्पचा--ब्राह्मणी। नखम्पचा--यवागूः ॥

परिमित पकानेवाली ब्राह्मणी। नखों को सन्ताप पहुँचानेवाली श्राणा (खिचड़ी)। मित तथा नख कर्म्म उपपद हों तो डु-पचष् धातु से खश् प्रत्यय हो॥३४॥

विध्वरुषोस्तुदः ॥ ३५ ॥

वि॰ षोः, तुंदः । एतयोः कर्मणोरुपपदयोस्तुदः खश् स्यात्। यथा—विधुन्तुदः । मुमिकृते—(संयोगान्तस्यलोपः)—अरुन्तुदः ॥

वायु को दूषित करनेवाला । कार्य्य को बिगाड़नेवाला । विधु तथा अरुष् कर्म उपपद हों तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ ३६ ॥

अँ॰ योः, दृँ॰ पोः । असूर्य ललाट इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्दृशितपोः खश् स्यात् । असूर्यमित्यसमर्थसमासः । दृशिनानञः सम्बन्धात् । सूर्य्यं न पश्यन्तीत्यसूर्यम्पश्याराजदाराः । ललाटन्तपः सूर्य्यः ॥

सूर्य को न देखनेवालीं राजाओं की रानीं । ललाट को तपानेवाला सूर्य । सूर्य्य तथा ललाट कर्म्म उपपद हों तो यथाक्रम दृशिर् तथा तप धातु से खश् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ ३७॥

उ॰मा:,च । उग्रम्पश्य इरम्मद पाणिन्धम इतीमे शब्दा निपात्यन्ते। यथा-उग्रं पश्यन्तीति--उग्रम्पश्याः।इरा-उदकम्। तेनमाद्यति दीप्यते-अविन्धनत्वदिति--इरम्मदो- मेघज्योतिः । निपातनात्श्यन्न। पाणयोध्मायन्ते--अस्मिन्निति--पाणिन्धमोऽध्वा । अन्धकाराद्यावृत इत्यर्थः । सर्पाद्यपनोदनाय पाणयः शब्द्यन्ते ॥

उग्रम्पश्य, इरम्मद तथा पाणिन्धमशब्द खश् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ३७ ॥

प्रियवशे वदःखच् ॥ ३८ ॥

प्रिय वश इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्वदः खच् स्यात्।यथा—प्रियंवदतीति--प्रियंवदः।वशंवदः ॥ (गमेः सुचिवाच्यः)॥असञ्ज्ञार्थमिदम् । मितंगमोहस्ती ॥(विहायसो विह इतिवाच्यम्)॥ विहायसा गच्छति--विहंगमः॥ (खच्चडिद्वा वाच्यः)॥ विहङ्गः, विहङ्गमः। भुजङ्गः, भुजङ्गमः॥ (डेचविहायसो विहादेशो वाच्यः)॥ विहगः। भुजगः॥

प्रिय बोलने वाला। यथार्थ वक्ता। प्रिय तथा वश कर्म उपपद होतो वद धातुसे खच् प्रत्यय हो॥ ३८॥

द्विषत् परयोस्तापेः॥ ३९॥

द्वि० योः, तापेः। द्विषत्परयोः कर्मणो रुपपदयो स्तापेः खच् स्यात्। यथा--द्विषन्तम्, परं वा, तापयतीति-द्विषन्तपः, परन्तपः॥

वैरिओं को सन्तप्त करनेवाला। द्विषत् तथा पर कर्म्म उपपद हों तो तापि धातु से खच् प्रत्यय हो॥ ३९॥

वाचि यमो व्रते॥ ४०॥

वाचि, यमः, व्रते। वाक् शब्दे उपपदे यमेः खच् स्यात् व्रतेगम्ये। यथा--वाचं यमः[२]॥

बाणी को संयममें करनेवाला। वाक् शब्द उपपद हो तो व्रत गम्यमान होनेपर यम धातु से खच् प्रत्यय हो॥ ४०॥

पूस्सर्वयोर्दारिसहोः॥ ४१॥

पूं० योः, दा[१]० होः। पुर् सर्व इत्येतयोः कर्मणो रुपपदयोर्यथा

१-(६। ४। ९४)-इत्युपधा ह्रस्वः। २-(६। ३। ६९)-इति निपातः।

सङ्ख्यं दारिसहोः खच् स्यात्। यथा--पुरं दारयतीति- पुरन्दरः। सर्वंसहः॥ (भगे च दारेरिति वाच्यम्)॥भगं दारयतीति-भगन्दरः॥

चौर। राजा, या सब कुछ सहने वाला। पुर तथा सर्व कर्म उपपद हों तो यथा सङ्ख्य दारि तथा सह धातु खच् प्रत्यय हो॥ ४१॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः॥ ४२॥

एतेषु कर्मसूपपदेषु कषः खच् स्यात्। यथा-सर्वं कषतीति सर्वङ्कषः-खलः। कूलङ्कषा-नदी। अभ्रङ्कषः-वायुः। करीषङ्कषा वात्या॥

सर्व, कूल, अभ्र तथा करीष कर्म उपपद हों तो कष धातु से खच प्रत्ययहो॥४२॥

मेघर्त्तिभयेषु कृञः॥ ४३॥

एषुकर्म्मसूपपदेषु कृञ् खच् स्यात्। यथा-मेघं करोतीति मेघङ्करः यज्ञः। ऋतिङ्करः-धर्म्मः। भयङ्करः-अधर्म्मः। भयशब्देन तदन्तविधिः। अभयङ्करः॥

मेघ, ऋति तथा भय कर्म उपपद हों तो डु-कृञ धातु से खच् प्रत्यय हो॥ ४३॥

क्षेमप्रियमद्रेऽण् च॥ ४४॥

एषु कर्म्मसूपपदेषु कृञोऽण् स्यात्, चात् खच्। यथा--क्षेमकारः, क्षेमङ्करः। प्रियकार, प्रियङ्करः। मद्रकार, मद्रङ्करः॥

कुशलताकारक। प्रीतिकरने वाला। हर्षकारक। क्षेम प्रिय तथा मद्र कर्म्म उपपद होंतो डु-कृञ् धातु से अण तथा खच् प्रत्यय हो॥ ४४॥

आशिते भुवः करणभावयोः॥ ४५॥

आशितशब्दे उपपदे भवतेः खच् स्यात्। यथा--आशितो भव-

त्यनेनेति--आशितम्भवः--ओदनः। आशितस्य भवनम्--आशितम्भवम् वर्त्तते ॥

आशित (भुक्त) कर्म्म सुवन्त उपपद होतो भू धातु से करण तथा भाव में खच् प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

सञ्ज्ञायां भृतॄवृजि धारि सहित-पिदमः ॥ ४६ ॥

सञ्ज्ञायामेभ्यः खच् स्यात्। यथा-विश्वम् बिभर्त्तीति-विश्वम्भरः, विश्वम्भरा। रथन्तरम्-साम। इह रथेन तरतीति-व्युत्पत्तिमात्रम्, न त्ववयवार्थानुगमः। पतिंवरा-कन्या। शत्रुञ्जयः-हस्ती। युगन्धरः-वृषभः। शत्रुंसहः। शत्रुन्तपः। अरिन्दमः॥

सञ्ज्ञा विषय में भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि तथा दम धातु से खच् प्रत्यय हो॥

गमश्च ॥ ४७ ॥

गमः, च। संज्ञाया विषये सुप्युपपदे गमेः खच् स्यात्। यथा सुतङ्गमः॥

संज्ञा विषय में सुवन्त उपपद हो तो गम धातु से खच् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

अन्ताऽत्यन्ताऽध्वदूरपार सर्वाऽनन्तेषु डः ॥ ४८ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु गमेर्डः स्यात्। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। यथा-अन्तं गच्छतीति-अन्तगः। अत्यन्तगः। अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः॥ (सर्वत्रपन्नयोरुपसङ्ख्यानम्)॥ यथा सर्वत्रगच्छतीति--सर्वत्रगः। पन्नं गच्छतीति-पन्नगः।

पन्नमिति पद्यतेः क्तान्तं क्रियाविशेषणम् । (उरसोलोपश्च) ॥ उरसा गच्छतीति उरगः ॥ (सुदुरोरधिकरणे) ॥ सुखेन गच्छत्यत्र-सुगः । दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति--दुर्ग ॥ (अन्यत्रापि दृश्यते इतिवाच्यम्) ॥ ग्रामगः ॥

पार जानेवाला । बहुत ही चलनेवाला । पथिक । दूर जानेवाला । पारजाने वाला । सब जगह गानेवाला । वेःइद चलनेवाला । अन्त आदि कर्म उपपद हों तो गम धातु से ड प्रत्ययहो ॥ ४८ ॥

आशिषि हनः ॥ ४९ ॥

आशिषि गम्यमानायां कर्म्मण्युपपदे हनधातोर्डः स्यात् । यथा–शत्रुं वध्यात्-शत्रुहः ।(दारा वाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम्)॥ दारुशब्दे उपपदे आङ् पूर्वाद् हन्ते रण् टकारश्चान्तादेशो वक्तव्यइत्यर्थः । यथा–दार्वाघाटः । (चारौ वा)॥ चार्वाघाटः,चार्वाघातः । (कर्मणि समि च) ॥ कर्म्मण्युपपदे सम्पूर्वाद् हन्ते रुक्तं वेत्यर्थः । यथा–वर्णान् संहन्तीति-वर्णसङ्घाटः, वर्णसङ्घातः । पदसङ्घाटः, पदसङ्घातः ॥

आशीर्वाद गम्यमान हो तो कर्मउपपद होनेपर हन धातु से ड प्रत्यय हो ४९

अपे क्लेशतमसोः ॥ ५० ॥

क्लेश तमसोः कर्मणो रुपपदयो रपपूर्वाद् हन्तेर्डःस्यात् । यथा–क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहः सूर्यः ॥

क्लेश और तमस् कर्मउपपद हों तो अपपूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय हो ॥५०॥

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ ५१ ॥

कुँ० योः, णिनिः । कुमारशीर्षयोरुपपदयो र्हन्तेर्णिनिः स्यात् । यथा–कुमारघाती । शिरसः शीर्ष भावो निपात्यते-शीर्षघाती ॥
लड़के को मारने वाला । शिर को काटने वाला । कुमार और शीर्ष कर्म उपपद हों तो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

लक्षणेजायापत्योष्टक् ॥ ५२ ॥

लँ० णे, जाँ त्योः, टकूं । लक्षणवति कर्त्तरि जायापत्योः कर्मणोरुपपदयोर्हन्तेष्टक् स्यात् । यथा–जायाघ्नो मद्यपी । पतिघ्नी वृषली ॥
स्त्रीको मारने वाला सरावी । पतिको मारने वाली बदमाश औरत । लक्षणवान् कर्त्तामें जाया तथा पति कर्म उपपद हों तो हन् धातु से टक् प्रत्यय हो ५२

अमनुष्यकर्त्तृके च ॥ ५३ ॥

अमनुष्यकर्त्तृके वर्तमानाद्धन्तेः कर्मण्युपपदे टक् स्यात् । यथा -पित्तघ्नं घृतम् ॥
पित्त को शान्तिकरनेवाला घी । मनुष्य भिन्न कर्त्तामें कर्म्म उपपद हो तो वर्त्तमान हन धातु से टक् प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

शँक्तौ हस्तिकपाटँयोः ॥ ५४ ॥

हस्तिकपाटयोः कर्मणो रुपपदयोः शक्तौ च गम्यमानायां हन्तेष्टक् स्यात् । यथा–हस्तिनं हन्तुं शक्तः-हस्तिघ्नो ना। कपाटघ्नश्चौरः॥
हाथी को मारने वाला नर । किवाड़ों को तोड़ने वाला चोर । हस्ति तथा कपाट कर्म उपपद हों और शक्ति गम्यमान हो तो हन धातु से टक् प्रत्यय हो ५४

पाणिघताडघौ शिँल्पिनि ॥ ५५ ॥

हन्तेष्टक् टिलोपः, घत्वं च निपात्यते पाणिताडयो रुपपदयोः ।

यथा-पाणिघः । ताडघः ॥ (राजघउपसङ्ख्यानम्) ॥
राजनं हन्तीति-राजघः ॥

तवलची । तालमिलाने वाला । शिल्पी कर्त्ता होतो पाणिघ तथा ताडघ टक् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ५५ ॥

आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषुच्व्यर्थेष्वच्वौकृञः करणेख्युन् ॥ ५६ ॥

आ०येषु, च्व्य०षु, अच्वौ, कृञः, करणे, ख्युन् । एषु च्व्यर्थेष्वन्तेषु कर्म्मसूपपदेषु कृञः करणे ख्युन् स्यात् । यथा-अनाढ्यमाढ्यं कुर्वन्त्यनेन-आढ्यङ्करणम् । सुभगङ्करणम् । स्थूलङ्करणम् । पलितङ्करणम् । नग्नङ्करणम् । अन्धङ्करणम् । प्रियङ्करणम् ॥

जो धनी नहीं है उसको धनी बनाना (सपन्न करना) । सुन्दर बनाना । मोटा सम्पादन करना । वृद्धभाव को प्राप्तकरना । वस्त्ररहित करना । नेत्ररहितकरना । अप्यारे को प्यारा करना । अच्व्यन्तच्व्यर्थ आढ्यादि कर्म उपपद होंतो करण कारक में कृञ्धातु से ख्युन् प्रत्यय हो । ५६ ॥

कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ ५७ ॥

अढ्यादिषु सुबन्तेषूपपदेषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेरिमौ स्याताम् । यथा-अनाढ्य आढ्यो भवतीति-आढ्यम्भविष्णुः, आढ्यम्भावुकः । सुभगम्भविष्णुः, सुभगम्भावुकः । स्थूलम्भविष्णुः, स्थूलम्भावुकः । पलितम्भविष्णुः, पलितम्भावुकः । नग्नम्भविष्णुः, नग्नम्भावुकः । अन्धम्भविष्णुः, अन्धम्भावुकः । प्रियम्भविष्णुः, प्रियम्भावुकः ॥

अच्व्यन्त च्व्यर्थ आढ्य आदि सुबन्त उपपद होंतो कर्त्ता कारक में भू धातु से खिष्णुच् तथा खुकञ् प्रत्यय हों ॥ ५७ ॥

स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ ५८ ॥

स्पृशः, अँ०के, क्विन् । अनुदके सुबन्ते उपपदे स्पृशेः क्विन् स्यात् । यथा—घृतं स्पृशतीति—घृतस्पृक् । मन्त्रेण स्पृशति—मन्त्रस्पृक् । नीरेणस्पृशतीति—नीरस्पृक् ॥

घी को छूने वाला । सलाह से करता है । पानीद्वारा छूता है । उदक भिन्न सुबन्त उपपद होतो स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

ऋत्विग् दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चु-युजिक्रुञ्चां च ॥ ५९ ॥

ऋत्विगादयः पञ्चशब्दाः क्विनन्ता निपात्यन्ते, अपरे त्रयोधातवो निर्दिश्यन्ते । यथा--ऋतौ यजति, ऋतुं यजति, ऋतुप्रयुक्तो वा यजतीति-ऋत्विक् । रूढिरियम् । धृषेः क्विन् द्वित्वमन्तोदात्तत्वंच । धृष्णोतीति--दधृक् । सृजेः कर्मणि क्विन् अमागमश्च । सृजन्ति तामिति--स्रक् । दिशेः कर्मणि क्विन् । दिशन्ति तामिति—दिक् । उत्पूर्वात् स्निहः क्विन् लुपसर्गलोपः षत्वंच । उष्णिक् । अलाक्षणिकमपि किञ्चित् कार्यं निपातनाल्लभ्यते । प्राङ्, प्रत्यङ्, उदङ् । युङ्, युञ्जौ, युञ्जः । क्रुङ्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः ॥

ऋतु २ में यज्ञ करने वाला । ढीठ । माला, हार । दिशा । एकछन्दका नाम है । पूर्व को चलने वाला, उलटा चलने वाला, ऊपर को चलने वाला । जोड़ने वाला । गमन करने वाला । ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक् और उष्णिक् क्विन् प्रत्ययान्त निपातित हैं तथा -अञ्चु, युजि और क्रुञ्च धातु से क्विन् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ ६० ॥

त्यदादिषूपपदे अनालोचने वर्त्तमानाद् दृशेः कञ्क्विनौ स्याताम् । यथा—त्यादृशः[1], त्यादृक् । तादृशः, तादृक् । यादृशः, यादृक् । (समानान्ययोश्चेतिवाच्यम्) ॥ सदृशः, सदृक् । अ-

१--(६ । ३ । ९१) इति दैर्घ्यम् ॥

न्यादृशः, अन्यादृक् ॥ (दृशेःक्सोऽपिवाच्यः) ॥ त्यादृक्षः । तादृक्षः । यादृक्षः । एतादृक्षः । ईदृक्षः । सदृक्षः । अन्यदृक्षः ॥

वैसा । तैसा । जैसा । त्यदादि सुबन्त उपपद होंता दर्शन से भिन्न अर्थ में वर्तमान दृशधातु से कञ तथा क्विन प्रत्यय हो ॥ ६० ॥

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपिक्विप् ॥ ६१ ॥

स०जाम्, उँ०र्गे, अपि, क्विप् । सुप्युपपदे एभ्यो धातुभ्यः क्विप् स्यादुपसर्गे सत्यसतिच । यथा—द्युसत्, उपनिषत् । वीरसूः, प्रसूः । मित्रद्विट्, प्रद्विट् । मित्रध्रुक्, प्रध्रुक् । गोधुक्, प्रधुक् । अश्वयुक्, प्रयुक् । ब्रह्मवित्, प्रवित् । काष्ठभित्, प्रभित् । रज्जुच्छिद्, प्रच्छिद् । इन्द्रियजित्, प्रजित् । सेनानीः, प्रणीः । विराट्, सम्राट् ॥

प्रकाशप्राप्ति, ब्रह्मज्ञान । वीरपैदा करने वाली, विशेष पैदाकरनेवाली । मित्र से वैर करने वाला । मित्र का शत्रु । गाय को दुहने वाला । घोड़े को जोड़ने वाला । (सहीस) । ब्रह्म (वेद, ईश्वर) का जानने वाला । लकड़ी को चीरने वाला । रस्सी को काटने वाला । दुश्मन को जीतने वाला । सेना का पति । राजा । सोपसर्ग तथा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद होनेपर सत्, सूङ्, द्विष्, द्रुह, युज, विद, भिद, छिद, जि, नी, तथा राजृ धातु से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

भजो ण्विः ॥ ६२ ॥

भजः, ण्विः । सुप्युपसर्गे चोपपदे भजेर्ण्विः स्यात् । यथा—अंशं भजते-अंशभाक्, प्रभाक् ॥

हिस्सेदार । दीप्ति प्राप्त होनेवाला । सोपसर्ग तथा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद होनेपर भज धातु से ण्वि प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

छन्दसि सहः ॥ ६३ ॥

सुप्युपपदे छन्दसि विषये सहेर्ण्विः स्यात् । यथा—तुराषाट् ॥

सुबन्त उपपद हो तो छन्दविषय में सह धातु से ण्वि प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

वहश्च ॥ ६४ ॥

वहः, च । सुप्युपपदे छन्दसि वहेर्ण्विः स्यात् । यथा—प्रष्ठवाट् ॥

अग्रगन्ता । छन्दविषय में सुबन्त उपपद होतो वह धातु से ण्वि प्रत्ययहो ॥ ६४ ॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ ६५ ॥

एषूपपदेषु च्छन्दसि वहेर्ञ्युट् स्यात् यथा—कव्यवाहनः । पुरीष-वाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥

देवताओं का भोजन लेजाने वाला । सूर्यकी किरणें । छन्दविषय में कव्य, पुरीष तथा पुरीष्य ये उपपद होंतो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

हव्येऽनन्तः पादम् ॥ ६६ ॥

अनन्तः पादं चेत् तर्हि छन्दसि हव्यशब्दे उपपदे वहेर्ञ्युट् स्यात्। यथा—अग्निश्च हव्यवाहनः ॥

हवन किये पदार्थ को अग्नि लेजाने वाला है । छन्दो विषय में हव्यशब्द उपपद होतो अनन्त पाद वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

जनसनखनक्रमगमो विट् ॥ ६७ ॥

ज० मः, विट् । सुप्युपदे एभ्यो विट् स्याच्छन्दसि विषये ।

विड्वनोरित्यात्वम् । यथा-अब्जाः । गोषाः । सनोतेरनः-इतिषत्वम् । कूपखाः । दधिक्राः । अग्रेगाः ॥

जल में पैदा होने वाला । इन्द्रियजित् । कुये को खोदने वाला । दही को विलोने वाला । आगे जानेवाला । छन्द विषय में सुबन्त उपपद हो तो जन सन खन क्रम तथा गमधातु से विट् प्रत्यय हो ॥ ६७ ॥

अदोऽनन्ने ॥ ६८ ॥

अदः, अनन्ने । अनन्ने सुप्युपपदे अदे र्विट्स्यात् । यथा-आममत्तीति--आमात् । सस्यात् ॥

अजीर्णता को दूरकरने वाला । खेती को खाने वाला । अन्न वर्जित सुबन्त उपपद हो तो अद धातु से विट् प्रत्यय हो ॥ ६८ ॥

क्रव्ये च ॥ ६९ ॥

क्रव्यशब्दे उपपदे अदे र्विट्स्यात् । यथा-क्रव्य मत्तीति-क्रव्यात् ॥

कच्चे मांसको खाने वाला । क्रव्य शब्द उपपद हो तो अद धातु से विट् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

दुहः कब्घश्च ॥ ७० ॥

दुहः, कप्, घः, च । सुप्युपपदे दुहेः कप्स्यात्, घश्चान्तादेशः । यथा-कामदुघा ॥

कामना को पूर्ण करने वाली । सुबन्त उपपद हो तो दुह धातु से कप् प्रत्यय हो तथा दुह को घकारान्तादेश भी हो ॥ ७० ॥

मन्त्रे श्वेतवहोक्थ शस्पुरोडाशो ण्विन् ॥ ७१ ॥

मन्त्रे, श्वे० शः, णिवन् । (श्वेतवाहादीनां डस्पदस्येति वक्तव्यम्) ॥ यत्रपदत्वं भावि तत्र णिवनोऽपवादोऽडस्वक्तव्य इत्यर्थः । यथा--श्वेतवाः, श्वेतवाहौ, श्वेतवाहः । उक्थानि, उक्थैर्वा शंसति--उक्थशाः-यजमानः । उक्थशासौ । उक्थशासः। पुरादास्यते, दीयते पुरोडाः ॥

सूर्य्य । बड़े व्रतकी आज्ञा देनेवाला । यज्ञद्रव्य । मन्त्र विषय में श्वेत वह, उक्थशस् तथा पुरोडास् शब्दों से णिवन् प्रत्यय हो अथवा उक्त शब्द णिवन् प्रत्ययान्त निपातित हैं ॥ ७१ ॥

अवे यजः ॥ ७२ ॥

अवे उपपदे मन्त्र विषये यजेर्णिवन् स्यात् । यथा--अवयाः, अवयाजौ, अवयाजः ॥

मन्त्र विषय में अव उपपद हो तो यज धातु से णिवन् प्रत्ययहो ॥ ७२ ॥

विजुपे छन्दसि ॥ ७३ ॥

विच्, उपे, छन्दसि । उपे उपपदे यजेर्विच् स्याच्छन्दसि विषये। यथा—उपयट् ॥

छन्द विषय में उप उपपद हो तो यज धातु से विच् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

आतो मनिन् क्वनिब् वनिपश्च॥७४॥

आतः, मे० पः, च । सुप्युपसर्गे चोपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये इमे स्युः, चाद्विच् । यथा—सुदामा । क्वनिप् । सुधीवा । सुपीवा । वनिप् । भूरिदावा । घृतपावा । विच् । कीलालपाः ॥

अच्छा देनेवाला । सुष्ठु पीनेवाला । अधिक देनेवाला । जलपीनेवाला । छन्दो विषय में आकारान्त धातुओं से सुबन्त उपपद हो तो मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् प्रत्ययहों ॥ ७४ ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७५ ॥

अं० भ्य, अपि दृ० न्ते । अन्येभ्योऽपि धातुभ्योऽनाकारान्तेभ्यो मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् इतीमे प्रत्यया दृश्यन्ते । यथा– शॄ । सुशर्म्मा । क्वनिप् । प्रातरित्वा । प्रातरित्वानौ । प्रातरित्वानः ॥ वनिप् । विजायते इति–विजावा । ओणृ–अवावा ॥

सुन्दर सुखवाला । सुबह जानेवाला । पैदा होनेवाला । रक्षनेवाला ॥ आकारान्त धातुओं के अतिरिक्त इतर धातुओं से भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् प्रत्यय दीखते हैं ॥ ७० ॥

क्विप् च ॥ ७६ ॥

सर्वधातुभ्योऽयमपि दृश्यते । यथा–उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ॥

सर्वधातुओं से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ७६ ॥

स्थः क च ॥ ७७ ॥

सुप्युपपदे स्थाधातोः कक्विपौ स्याताम् । यथा–शंस्थः, शंस्था । शमिधातोरित्ययं बाधितुं सूत्रम ॥

दर्प पूर्वक ठहरनेवाला ॥ सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क तथा क्विप् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ ७८ ॥

सुपि, अ०तौ, णिनिः, ता०ल्ये । अजातिवाचिनि सुबन्ते उपपदे ताच्छील्ये द्योत्ये धातोर्णिनिः स्यात् । यथा–उष्णभोजी । शीतभोजी । उपजीवी । न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः । अनुया-

१—(६ । ४ । ४१) इत्यनुनासिकस्य आत् ।

यिवर्गः॥ (साधुकारिण्युपसङ्ख्यानम्)॥ (ब्रह्मणिवादः)॥

अतास्च्छीलार्थं वार्त्तिकद्वयम्। यथा—साधुकारी। साधुकारी। ब्रह्मवादी॥

गर्म भोजन करने वाला। शीतभोजन करने वाला। आश्रित, सेवक २। पीछन-लने वाला॥ जातिभिन्न सुबन्त उपपद होतो ताच्छील्य (उसका स्वभाव) गम्यमान होनेपर धातु से णिनि प्रत्यय हो॥ ७८॥

कर्त्तर्युपमाने॥ ७९॥

कर्त्तरि, उ०ने। कर्त्ता०चिनि उपमाने उपपदे धातोर्णिनिः स्यात्। उपपदार्थः कर्त्ता प्रत्ययार्थस्य कर्त्तुरुपमानम्। यथा—उष्ट्रइव क्रोशतीति—उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्षइव रवीतीति—ध्वाङ्क्षरावी॥

ऊंटकी तरह बलबलाने वाला। काककी तरह कांव २ करने वाला। उपमान वाची कर्त्ता उपपद होतो धातु से णिनि प्रत्यय हो॥ ७९॥

व्रते॥ ८०॥

सुप्युपपदे व्रते गम्ये धातोर्णिनिः स्यात्। यथा—स्थण्डिलशायी॥

चबूतरेपर सोनेवाला। व्रत (नियम) गम्यमान होतो सुबन्त उपपद होनेपर धातु से णिनि प्रत्यय हो॥ ८०॥

बहुलमाभीक्ष्ण्ये॥ ८१॥

बहुलम्, आ० क्ष्ण्ये। आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये धातोर्बहुलं णिनिःस्यात्। आभीक्ष्ण्यम्—पौनः पुन्यम्। तात्पर्यमासेवा—ताच्छील्यादितरत्। यथा—क्षीरपायिणोमाथुराः॥

मथुरा के रहने वाले दूध पीने वाले हैं। आभीक्ष्ण्य गम्यमान होता बहुल करके धातु से णिनि प्रत्यय हो॥ ८१॥

मनः ॥ ८२ ॥

सुप्युपपदे मन्यतेर्णिनिःस्यात्। यथा-दर्शनीयमानी। शोभनमानी॥

अपनेको मनोहर मानने वाला। सुबन्त उपपद होतो मन धातु से णिनि प्रत्यय हो ८२

आत्माने खश्च ॥ ८३ ॥

आ०ने, खश्, च। सुप्युपपदे स्वकर्म्मके मनने वर्त्तमानान्मन्यतेः खश् स्यात्, चान्णिनिः। यथा-पण्डितमात्मानं मन्यते--पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी ॥ (खित्यनव्ययस्य) ॥

अपने आपको पण्डित मानने वाला॥ सुबन्त उपपद होतो आत्मा के मान में वर्त्तमान मन धातु से खश् तथा णिनि प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

भूते ॥ ८४ ॥

अधिकारोऽयम्। वर्त्तमाने लडिति यावत्॥

भूतकाल का वर्त्तमानेलट् इससूत्र तक अधिकार है ॥ ८४ ॥

करणे यजः ॥ ८५ ॥

करणे उपपदे भूतार्थाद् यजेर्णिनिः स्यात् कर्त्तरि। यथाः-अग्निष्टोमेनेष्टवानिति-अग्निष्टोमयाजी। सोमयाजी ॥

जिसने अग्निष्टोम यज्ञ किया है वह। जिसने सोम यज्ञ किया है वह। करण उपपद हो तो यजधातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

कर्म्मणि हनः ॥ ८६ ॥

कर्म्मणि उपपदे हन्तेर्णिनिः स्यात्। यथा-मातुलं हतवान् इति-मातुलघाती। पितृव्यघाती ॥

जिसने कि अपने मामा को मारदिया है वह । जिसने कि स्वीय चाचा को मारदिया है वह । कर्म उपपद हो तो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ ८७ ॥

एतेषु कर्म्मसूपपदेषु हन्तेर्भूते क्विप् स्यात् । यथा—ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा ॥

ब्राह्मण को मारने वाला । गर्भ का नाश करनेवाला । बादलका नाश करने वाला—सूर्य, वायु । ब्रह्म भ्रूण तथा वृत्र कर्म्म उपपद हों तो हन धातु से क्विप्प्रत्यय हो

बहुलं छन्दसि ॥ ८८ ॥

छन्दसिविषये बहुलं हन्तेः क्विप् स्यात् । यथा—मातृहा, मातृघातः । पितृहा, पितृघातः ॥

माता तथा पिता को मारने वाला । छन्दोविषय में बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ ८९ ॥

स्वादिषु कर्मसूपपदेषु करोतेः क्विप् स्यात् । यथा—सुकृत् । कर्म्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् । स्वादिष्वेवेति नियमा भावादन्यस्मिन्नप्युपपदे क्विप्—शास्त्रकृत् । भाष्यकृत् ॥

धार्मिक । काम करने वाला । पापी । सलाह करने वाला । धर्मात्मा । सुआदि कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

सोमे सुञः ॥ ९० ॥

सोमे कर्मण्युपपदे सुञः क्विप् स्यात् । यथा—सोमसुत् ॥

सोम (औषध) को निचोड़ने वाला ॥ सोम कर्म उपपद हो तो सुञ् धातुसे क्विप् प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

अग्नौ चेः ॥ ९१ ॥

अग्नौ कर्मण्युपपदे चिनोतेः क्विप् स्यात्। यथा-अग्निचित्। अग्निचितौ। अग्निचितः ॥

अग्निको इकट्ठा करने वाला ॥ अग्नि कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ ९२ ॥

क॰ णि, अ॰ म। कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके क्विप् स्याद-ग्न्याख्यायां गम्यमानायाम्। यथा-श्येन इव चीयते -श्येनचित् ॥

कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से कर्म कारक में ही अग्नि की आख्यागम्यमान होनेपर क्विप् प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

कर्मणीनिविक्रियः ॥ ९३ ॥

क॰ णि, इनिः, वि॰ यः। कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीणातेः इनिः स्यात। (कुत्सितग्रहणं कर्त्तव्यम्)॥ मद्यविक्रयी ॥

शराब को बेचनेवाला। कर्म उपपद हो तो विपूर्वक डु क्रीञ् धातुसे इनि प्रत्यय हो ॥

दृशेः क्वनिप् ॥ ९४ ॥

कर्मण्युपपदे दृशे र्भूते क्वनिप्स्यात् । यथा पारं दृष्टवानिति-पारदृश्वा ॥

किनारे को देखनेवाला । कर्म उपपद हो तो दृशधातु से क्वनिप् प्रत्यय हो ९४ ॥

राजनि युधिकृञः ॥ ९५ ॥

राजन्शब्दे कर्मण्युपपदे युध्यतेः करोतेश्च क्वनिप् स्यात्। युधि

र्कर्मकः—अन्तर्भावितण्यर्थः । यथा—राजानं योधित वान्–राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

राजा को युद्ध करान वाला । राजा जिसने बनाया हो । राजन् शब्द कर्म उपपद हो तो युध तथा कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

सहे च ॥ ९६ ॥

सहशब्दे चोपपदे युधिकृञोः क्वनिप् स्यात् । यथा—सह युध्वा । सह कृत्वा ॥

साथ में जिसने युद्ध किया हो । साथ में जिसने कार्य किया हो । सह शब्द उपपद हो तो युध तथा कृञ् धातु स क्वनिप् प्रत्यय हो ॥ ९६ ॥

सप्तम्यां जनेर्डः ॥ ९७ ॥

स० म्, जनेः, डः । स्पष्टम् । यथा—मन्दुरायां जातः—मन्दुरजः । इमानि रत्नानि समुद्रजानि ॥

तबेले में पैदाहुआ । ये रत्न समुद्र में पैदाहुये हैं । सप्तम्यन्त उपपदहो तो जन धातु से ड प्रत्ययहो ॥ ९७ ॥

पञ्चम्यामजातौ ॥ ९८ ॥

पं० म्, अ० तौ । जातिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्ते उपपदेजनेर्डः स्यात् । यथा—संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति । संस्कारजः । अदृष्टजः । दुःखजः ॥

सत्संग से दोष तथा गुण पैदा होते हैं । संस्कारसे पैदाहुये । विना देखे पैदा हुआ । दुःखस पैदाहुआ । जातिवर्जित पञ्चम्यन्त सुबन्त उपपदहो तो जन धातु से ड प्रत्ययहो ॥ ९८ ॥

१—(६ । ३ । ६३) इति ह्रस्वम् ॥

उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम् ॥ ९९ ॥

संज्ञायां विषये उपसर्गेचोपपदे जनेर्डः स्यात् । यथा--प्रजा--स्यात् सन्ततौ जने ॥

संज्ञाविषयमें उपसर्ग उपपद होतो जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

अनौ कर्मणि ॥ १०० ॥

कर्मण्युपपदे अनुपूर्वाज्जनेर्डः स्यात् । यथा--पुमांसमनुरुध्यजाता -पुमनुजा । स्त्र्यनुजः ॥

कर्म उपपद होतो अनुपूर्वक जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ १०० ॥

अन्येष्वपि दृश्यते ॥ १०१ ॥

अं०षु, अपि, दृ०ते । अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्डः स्यात् । यथा--न-जायते इति--अजः । द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां जायते इति द्विजः । ब्राह्मणजः । अपिशब्दोऽत्र सर्वोपाधि व्यभिचारार्थः । तेन धात्वन्त-रादपि कारकान्तरेष्वपि क्वचिद् दृश्यते--यथा--परितः खातः--परि-खा । आखा ॥

इतर सुबन्त उपपद होनेपर भी जन धातु से ड प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

निष्ठा ॥ १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरेवेति भावकर्म्मणोः क्तः (कर्त्तरि कृत्)-इति कर्त्तरि क्तवतुः । यथा--भुक्तम्मया । दत्तास्त्वया मोदकाः । पण्डितो ग्रामंगतवान् ॥

मैंने खाया । तू ने लड्डू दिये । पण्डित गांवको गया । भूत अर्थ में वर्त्तमान धातु से निष्ठा प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ १०३ ॥

सु०जोः, ङ्व० पं०। सुनोतेर्यजेश्च ङ्वनिप् स्याद् भूते। यथा–सुत्वा, सुत्वानौ, सुत्वानः। यज्वा, यज्वानौ, यज्वानः॥

अर्क को निकालनेवाला। यजनकरनेवाला। भूतकाल में सुञ् तथा यज धातुसे ङ्वनिप् प्रत्ययहो॥ १०३॥

जीर्यतेरतृन् ॥ १०४ ॥

जीर्यतेः, अतृन्। भूतेजीर्यतेरतृन् स्यात्। यथा–जरन्, जरन्तौ, जरन्तः॥

वृद्ध। भूत काल में जॄ धातु से अतृन् प्रत्ययहो॥ १०४॥

छन्दसि लिट् ॥ १०५ ॥

छन्दसि विषये धातोर्लिट् स्यात्। यथा–अहं सूर्य्य मुभयतोददर्श॥

सूर्य्य को दोनों ओर से देखनेवाला हूं, या देखा। छन्द विषय में धातु से लिट् प्रत्ययहो॥ १०५॥

लिटः कानज्वा ॥ १०६ ॥

लिटः, कानच्, वा। छन्दसि विषये लिटो वा कानजादेशः स्यात्। यथा–अग्निं चिक्यानः॥

अग्नि को चयन करताहुआ। छन्दो विषय में लिट् को विकल्प से कानच् आदेश हो॥ १०६॥

क्वसुश्च ॥ १०७ ॥

क्वसुः, च। छन्दसि विषये लिटः क्वसुरादेशः स्यात्। यथा–पपिवान्। जक्षिवान्॥

पिआ । खाया । छन्द विषय में लिट् को क्वसु आदेश भी हो ॥ १०७ ॥

भाषायां सदवसश्रुवः ॥ १०८ ॥

सदादिभ्योधातुभ्यो भूत सामान्ये भाषायां लिड्वा स्यात्, तस्य च नित्यं क्वसुः । यथा--निषेदुषीमासनबन्धधीरः । निषेदुषीम्-निषण्णाम् । उवविष्टामित्यर्थः । आसनबन्धे-उपसेवने धीरः।अनूषिवान्। शुश्रुवान् । पक्षे-निषसाद । अनूवास । शुश्राव ॥

भाषा (लोक) में सद, वस तथा श्रु धातु से परे लिट् के स्थान में विकल्प से क्वसु आदेश हो ॥ १०८ ॥

उपेयिवान् नाश्वाननूचानश्च ॥ १०९ ॥

उ० नेः, च । इमे निपात्यन्ते । उपपूर्वादिणो भाषायामपि भूत मात्रे लिड्वा, तस्य नित्यं क्वसुः, इट्-उपेयिवान् । नञ् पूर्वादश्नातः क्वसुरिडभावश्च । अनाश्वान् । अनुपूर्वाद्वचेः कर्त्तरि कानच्-वेदस्यानुवचनं कृतवान्-अनूचानः ॥

प्राप्त हुआ । अभुक्त । वेदका अनुवचन किया । उपेयिवान्, अनाश्वान् तथा अनूचान निपातित हैं ॥ १०९ ॥

लुङ् ॥ ११० ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ् स्यात् । यथा-अभूत्, अभूताम्, अभूवन्। अभूः, अभूतम्, अभूत । अभूवम्, अभूव, अभूम ॥

हुआ । भूत अर्थ में वर्त्तमान धातु से लुङ् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

अनद्यतने लङ् ॥ १११ ॥

अनद्यतन भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् । यथा-अभवत्, अभवताम्

अभवन्। अभवः, अभवतम्, अभवत। अभवम्, अभवाव, अभवाम॥

हुआ। आज को (गत रात्रि के १२ बजे से तथा रात्रि के १२ बजे तक) छोड़ कर भूत अर्थ में वर्त्तमान धातु से लङ् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

अभिज्ञावचने लृट् ॥ ११२ ॥

स्मृति वचने उपपदे भूतानद्यतने धातो र्लृट् स्यात्। यथा--स्मरसि चन्द्र! प्रयागे वत्स्यामः। बुध्यसे मैत्र! काश्यां पठिष्यामः। चेतसे चैत्र! लवपुरं गमिष्यामः॥

चन्द्र! याद है प्रयाग में रहते थे। मैत्र! याद है काशी में पढ़ते थे। चैत्र! याद है लाहौर को गये थे। अभिज्ञा (स्मृति) वचन उपपद हो तो अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

न यदि ॥ ११३ ॥

यच्छब्द सहितेऽभिज्ञावचने उपपदे लृण् न स्यात्। यथा--अभिजानासि मैत्र! यद्गुरुकुले अपाठिस्म ॥

मैत्र! याद है गुरुकुल में पढ़ते थे। यद्शब्द सहितस्मृति वचन उपपद हो तो धातु से लृट् प्रत्यय नहो ॥ ११३ ॥

विभाषा साकाङ्क्षे ॥ ११४ ॥

साकाङ्क्षे उक्तविषये लृड्वा स्यात्। लक्ष्य लक्षण भावेन साकाङ्क्षश्चेद्धात्वर्थः। यथा—स्मरसि सोमदत्त! प्रयागे वत्स्यामः—तत्रवेदंच पठिष्यामः। वासोलक्षणम्। पठनं लक्ष्यम्। पक्षेलङ्। यच्छब्दयोगेऽपि—(नयदि) इति बाधित्वा परत्वाद् विकल्पः॥

सोमदत्त! याद है प्रयाग में रहते थे और वहांपर वेद पढ़तेथे। साकाङ्क्षा (इच्छासहित) अर्थ में अभिज्ञा वचन उपपद होतो धातु से विकल्प करके लृट् प्रत्यय हो। ११४॥

परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थे वृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । यथा-बभूव, बभूवतुः, बभूवुः । बभूविथ, बभूवथुः, बभूव । बभूव, बभूविव, बभूविम ॥

हुआ । भूत अनद्यतन परोक्ष अर्थ में वर्त्तमान धातु से लिट् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

हशश्वतोर्लङ्च ॥ ११६ ॥

हं०तोः, लङ्, च । अनयोरुपपदयोर्लिङ्विषये लङ् स्याच्चाल्लिट् । यथा-इतिह-अकरोत्, चकार वा । शश्वदकरोत्, चकार वा ॥

इस तरह कर । सदा करता रह । ह तथा शश्वत् उपपद होतो लिङ् विषय में धातु से लङ् तथा लिट् प्रत्यय हो ॥ ११६ ॥

प्रश्नेचासन्नकाले ॥ ११७ ॥

प्रश्ने, च, आं० ले । प्रष्टव्यः-प्रश्नः । आसन्नकाले पृच्छ्यमानेऽर्थे भूतानद्यतन परोक्षार्थ वृत्तेर्धातोर्लङ् लिटौ स्याताम् । यथा-अगमत्किम्, जगामाकिम् ॥

क्या वह गया । आसन्न (निकट) काल ग्योत्य होतो प्रश्न गम्यमान होने पर लङ् तथा लिट् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

लट्स्मे ॥ ११८ ॥

स्मशब्दे उपपदे भूतानद्यतनपरोक्षार्थ वृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । यथा-यजतिस्म युधिष्ठिरः । तत्र कार्य्यं करोतिस्म ॥

युधिष्ठिरने यज्ञकिया । वह वहां कार्य करताथा । स्मशब्द उपपद होतो परोक्ष भूत अनद्यतन अर्थ में वर्त्तमान धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

अँपरोक्षेचँ ॥ ११९ ॥

अपरोक्ष भूतानद्यतनार्थ वृत्तेर्धातोः स्मे उपपदे लट् स्यात् । यथा-एवं ब्रवीतिस्म पितामदीयः ॥

मेरा पिता ऐसे कहताथा । अपरोक्ष भूत अनद्यतन अर्थ में वर्त्तमान धातु से स्म शब्द उपपद होनेपर लट् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

नँनौपृष्टप्रतिँवचने ॥ १२० ॥

अनद्यते परोक्ष इति निवृत्तम् । ननुशब्दे उपपदे प्रश्नपूर्वके प्रतिवचने भूतेऽर्थे लट् स्यात् । यथा--अकार्षीः किम्--ननुकरोमिभोः॥

करलिया क्या--जी हां करलिया । ननुशब्द उपपद होतो प्रश्नपूर्वक प्रतिवचने (जवाब) भूत अर्थ में लट् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

नन्वोर्विभाषा ॥ १२१ ॥

नँन्वोः, विँ०षा । नशब्दे नुशब्दे चोपपदे पृष्टप्रतिवचने वालट् स्यात् । यथा--अकार्षीकिम्--नकरोमि, नाकार्षम्, अहंनुकरोमि, अहंन्वकार्षम् ॥

तूने करलिया क्या -नहीं किया, मैंने नहीं किया । न तथा नुशब्द उपपद होतो प्रश्न के उत्तर में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

पुरि लुङ् चास्मे ॥ १२२ ॥

पुँरि. लुङ्, चँ, अँस्मे । अनद्यतन ग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्त्तते । पुरा शब्दयोगेऽस्मशब्दवर्जिते भूतानद्यतने वालुङ् लटौ स्याताम् । पक्षे यथा प्राप्तम् । यथा--वसन्तीह पुरा आर्य्याः, अवात्सुः, अवसन्, ऊषुर्वा ॥

प्रथम यहां आर्य्य रहतेथे। स्मशब्द वर्जित पुरा शब्दका योग होनेपर भूत अनद्यतन अर्थ में वर्त्तमान धातु से विकल्प करके लुङ् तथा लट् प्रत्यय हों ॥ १२२ ॥

वर्त्तमाने लट् ॥ १२३ ॥

आरब्धोऽपरिसमाप्तश्च वर्त्तमानः । वर्त्तमानक्रिया वृत्तेर्धातो र्लट् स्यात् । यथा-भवति । एधते ॥

होता है । बढ़ता है । वर्त्तमान (जबसे आरम्भ किया जावे और जबतक समाप्त नहो) अर्थ में धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ १२३॥

लटः शतृशानचावप्रथमा समाना-धिकरणे ॥ १२४ ॥

लटः श० चौ, अ० णे । अप्रथमान्तेन समानाधिकरणेन लटः शतृशानचौ आदेशौ स्याताम् । यथा-पठन्तं चैत्रंपश्य । यजमानेन मैत्रेणाहं दृष्टः । अधीयानायच्छात्रायच्छत्रं ददाति । गच्छतोऽश्वादपतत् । आगच्छतो वाष्पयानस्यशब्दः । गच्छति काले । लडित्यनुवर्त्तमाने पुनर्लट् ग्रहणमतिक्वविधानार्थम् । तेन-(प्रथमा समानाधिकरण्येऽपि क्वचित्)॥ यथा-सन् बालः, अस्ति बालः ॥ (माङ्याक्रोश इतिवाच्यम्) यथा-मापचन्, पचमानो वा ॥

पढ़ते हुये चैत्रको देखा । यजन करते हुये मैत्र ने मुझे देखा। पढ़तेहुये विद्यार्थी को छतरी देता है । जाते हुये घोड़े से गिरगया । आती हुई रेल का शब्द । समय के चले जानेपर । अप्रथमा समानाधि करण में लट् को शतृ तथा शानच् आदेश हो ॥ १२४ ॥

सम्बोधने च ॥ १२५ ॥

१-(७ । २ । ८२)-इतिमुमागमः ।

सम्बोधने च लटः शतृशानचा वादेशौ स्याताम् । यथा—भोः पठन् ! अन्तेवासिन् ! । भोः स्कुन्दमान ! बालक ! ॥

हे पढ़ते हुये विद्यार्थी ! । अयि कूदते हुये लड़के ! । सम्बोधन में भी लट् के स्थान में शतृ तथा शानच् आदेश हो ॥ १२५ ॥

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ १२६ ॥

लक्षणे हेतौ चार्थे वर्त्तमानाद् धातोः परस्य लटः शतृ शानचा वादेशौ स्याताम् । यथा—तिष्ठतोऽनु शासति गणितज्ञाः । हेतौ—अधीयानो वसाम्यहम् ॥

गणितज्ञ (हिसाबको जानने वाले) खड़े हुये पढ़ाते हैं । मैं पढ़ता हूं इसवास्ते रहता हूं । क्रिया विषयक लक्षण तथा हेतु अर्थ में वर्त्तमान धातुसे परे लट् के स्थानमें शतृ तथा शानच् आदेश हों ॥ १२६ ॥

तौ सत् ॥ १२७ ॥

तौ शतृ शानचौ सत्सञ्ज्ञकौ स्याताम् । यथा—सृष्टिं कुर्वन्, कुर्वाणो वा धर्मस्य कार्यं करिष्यन्, करिष्यमाणो वा जीवनं नेष्यामि

सृष्टि को करता हुआ । धर्म के कार्य करता हुआ जीवन को व्यतीत करूंगा । वे शतृ तथा शानच् प्रत्यय सत् संज्ञक हों ॥ १२७ ॥

पूङ्यजोः शानन् ॥ १२८ ॥

पूं० जोः, शा० न् । पूङो यजेश्च वर्त्तमाने शानन् स्यात् । यथा—पवमानः । यजमानः ॥

पवित्र करने वाला, वायु । यज्ञकरने वाला । वर्त्तमान काल में पूङ् तथा यज धातु से शानन् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु-

चानश् ॥ १२९ ॥

ताच्छील्यम्, तत् स्वाभाव्यम् । वयः शरीरावस्था--युवतादिः । शक्तिः--सामर्थ्यम् । कर्त्तर्य्येषु द्योत्येषु चानश् स्यात् । यथा--भोगम्-भुञ्जानः । कवचं-बिभ्राणः । शत्रुम्-निघ्नानः ॥

भोगों को भोगता हुआ । कवच को धारण किये हुये । दुश्मन को मारता हुआ । कर्त्ता में ताच्छील्य वयोवचन तथा शक्ति द्योत्य हो तो धातु से चानश् प्रत्यय हो । १२९

इङ्धार्योश्शत्रकृच्छ्रिणि ॥ १३० ॥

इं० योः, शं० णि । अकृच्छ्रिणि कर्त्तर्याभ्यां शतृस्यात् । यथा--अधीयन् । धारयन् ॥

पढ़ताहुआ । धारण करताहुआ । अकृच्छ्री (जो कठिन नहो) कर्त्ता इङ् तथा धारि धातु से शतृ प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

द्विषोऽमित्रे ॥ १३१ ॥

द्विषः, अमित्रे । अमित्रे कर्त्तरि द्विषः शतृ स्यात् । यथा--द्विषन्--शत्रुम् ॥

रिपु से वैर करताहुआ । अमित्र अर्थमें कर्त्ता वाच्य हो तो द्विष धातु से शतृ शतृ प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

सुञो यज्ञसंयोगे ॥ १३२ ॥

सुञः, यं०गे । यज्ञेन संयोगः-यज्ञसंयोगः । यज्ञसंयुक्तेऽभिषवे वर्त्तमानात् सुञः शतृ स्यात् । यथा -सर्वे सुन्वन्तः । विश्वे यजयानाः सासनाः ॥

सब निचोड़ते हुये । सब यजमान मय आसनों के । यज्ञ संयोग में वर्त्तमान सुञ धातु से शतृ प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

अर्हः प्रशंसायाम् ॥ १३३ ॥

प्रशंसायामर्हतेः शतृ स्यात् । यथा--अर्हन् ॥

पूजाको प्राप्त होता हुआ । प्रशंसा अर्थमें वर्त्तमान अर्ह धातुसे शतृप्रत्ययहो ॥ १३३ ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधु-कारिषु ॥ १३४ ॥

आंक्वेः, तं०षु । भ्राजभासेति–क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाःप्रत्ययास्तच्छील तद्धर्म तत्साधुकारिषु कर्त्तृषु बोधव्या इति ॥

भ्राज भास (३ । २ । १७७) इस सूत्र पर्यन्त तच्छील, तद्धर्म तथा तत्साधुकारी कर्त्ताओं में प्रत्यय जानना चाहिये ॥ १३४ ॥

तृन् ॥ १३५ ॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु सर्वधातुभ्यस्तृन् स्यात् । यथा--कर्त्ता--कम्बलान् ॥

कम्बलों का बनानेवाला (गड़ेरिया) । तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

अलङ्कृञ् निराकृञ् प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इ-ष्णुच् ॥ १३६ ॥

तच्छीलादिषुकर्त्तृषु अलङ्कृञादिभ्यो धातुभ्य इष्णुच् स्यात् । यथा--अलङ्करिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः ।

उत्पतिष्णुः । उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्त्तिष्णुः । वर्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः ॥

पूर्णकरने वाला । दूरकरनेवाला । सम्यक्पैदा करनेवाला । अधिक पकाने वाला । अधिक उड़नेवाला । अहंकारी । दीप्तिशील, प्रकाशक । स्वभाव से लज्जाकरनेवाला । वर्त्तनशील, सम्यग् व्यवहारकर्त्ता । वृद्धिशील । सहनशील । चलने वाला, चालाक, इतस्ततः भ्रमण करनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो अलम् + डुकृञ्, निर् + आङ् + डुकृञ्, प्र + जनी, उत् + डुपचष्, उत् + मद, रुच, अप + त्रपूष, वृतु, वृधु, सह तथा चर धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

णेश्छन्दसि ॥ १३७ ॥

णेः, छन्दसि । छन्दसि तच्छीलादिषु कर्तृषु ण्यन्ताद् धातो रिष्णुच् स्यात् । यथा-दृषदंधारयिष्णवः ॥

पत्थर को धारण करानेवाला । छन्दविषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों तो ण्यन्त धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो ॥ १३७ ॥

भुवश्च ॥ १३८ ॥

भुवः, च । तच्छीलादिषु कर्तृषु भूधातोश्छन्दसीष्णुच् स्यात् । यथा-भविष्णुः ॥

होनेवाला, होनहार । छन्दो विषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों तो भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ॥ १३९ ॥

ग्ला० स्थः, च, क्स्नुः । छन्दसीति निवृत्तम् । ग्ला जि स्था इत्येभ्यश्चाद् भुवश्च तच्छीलादिषु कर्तृषु ग्स्नुः स्यात् । यथा-ग्लास्नुः । गिलान्न गुणः । जिष्णुः । स्थास्नुः । भूष्णुः । गिदयं नतु कित् । ते-

नस्य ईत्वं नो। (श्र्युकः किति)-इत्यत्र गकार प्रश्लेषाद् भुवोनेट्॥
(दंशेश्छन्दस्युप सङ्ख्यानम्) ॥ दंदणवः पशवः ॥

ग्ला नियुक्त। जीतनेवाला। ठहरनेवाला। होनहार। तच्छीलादि कर्त्ता हों तो ग्ला, जि, स्था तथा भू धातु से ग्स्नु प्रत्ययहो ॥ १३९ ॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ १४० ॥

एभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु क्नुः स्यात्। यथा-त्रस्नुः गृध्नुः। धृष्णुः। क्षिप्नुः॥

डरपोक। लोभी। सहनशील, चतुर। फेंकनेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो त्रसी गृधु ञिधृषा तथा क्षिप धातु से क्नु प्रत्यय हो॥ १४०॥

शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ १४१ ॥

श० भ्यः, घिनुण्। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु शमादिभ्यो धातुभ्योऽष्टभ्योघिनुण् स्यात्। यथा-शमी। तमी। दमी। श्रमी। भ्रमी। क्षमी। क्लमी। प्रमादी॥

शान्त, धीर। तमोगुणी, अभिलाषी। इन्द्रियजित्। मेहनती। भ्रम करनेवाला। क्षमा करनेवाला। ग्लानि करनेवाला। प्रमाद करनेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो शमादि आठ धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो॥ १४१॥

सम्पृचाऽनुरुधाऽऽङ्यमाऽऽङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाऽऽक्रीडविविचत्यज

रज भजाऽति चरऽपचराऽऽमुषाऽभ्याहनश्च ॥ १४२ ॥

स० नं:, च। तच्छीलादिषु कर्तृषु सम्पृचादिभ्यो धातुभ्यो घिनुण् स्यात्। यथा—सम्पर्की। अनुरोधी। आयामी। आयासी। परिसारी। संसर्गी। परिदेवी। संज्वारी। परिक्षेपी। परिराटी। परिवादी। परिदाही। परिमोही। दोषी। द्वेषी। द्रोही। दोही। योगी। आक्रीडी। विवेकी। त्यागी। रागी। भागी। अतिचारी। अपचारी। आमोषी। अभ्याघाती॥

छूने वाला। रोकने वाला। दीर्घ, लम्बा। परिश्रमी। पंसारी। मैली। पक्काज्वारी, अखिलाड़ी। रोगी। इधर उधर फेंकने वाला। रटू। निन्दक, स्पष्टवक्ता। सम्यक् जलने वाला। अधिक मोह करनेवाला। पापी। द्वेषकरने वाला। दुश्मन। दूधवाला, पूर्णकर्त्ता। इन्द्रियजित्, ईश्वरीयनियमका यथार्थज्ञाता। बहुतखिलाड़ी। ज्ञानी। लोभरहित। रंगाहुआ। हिस्सेदार। बहुत चलनेवाला। बुराकार्य करनेवाला। चोर। मारनेवाला॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो सम्पृचादिक धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो॥ १४२ ॥

वौ कषलसकत्थस्रम्भः ॥ १४३ ॥

विशब्द उपपदे एभ्यो घिनुण् स्यात्। यथा—विकाषी। विलासी। विकत्थी। विस्रम्भी॥

हिंसक। खिलाड़ी। तारीफ़ करनेवाला। विश्वासी॥ तच्छीलादि कर्त्ताओं में विशब्द उपपद हो तो कष, लस, कत्थ तथा स्रम्भ धातु से घिनुण प्रत्यय हो॥

अपे च लषः ॥ १४४ ॥

लषधातोरपउपपदे चाद्वौ च घिनुण् स्यात्। यथा—अपलाषी। विलाषी॥

शोभा रहित। अतिसुन्दर॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो अप तथा वि उपपद होनेपर लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो॥ १४४॥

प्रे लपसृद्रुमथवदवसः॥ १४५॥

प्र उपपदे लपादिभ्यो धातुभ्यो घिनुण् स्यात्। यथा—प्रलापी। प्रसारी। प्रद्रावी। प्रमाथी। प्रवादी। प्रवासी॥

बकवादी। चारों ओर फैलाने वाला, पंसारी। भागने वाला। बिलोडने वाला, कष्टकारक। वक्ता। परदेश में रहने वाला॥ तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्र उपपद होनेपर लप, सृ, द्रु, मथ, वद तथा वस धातु से घिनुण प्रत्यय हो॥ १४५॥

निन्दहिंसक्लिशखाद विनाश परिक्षिप परिरट परिवादिव्या भाषा सूयो वुञ्॥ १४६॥

नि०यः, वुञ्। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु निन्दादिभ्यो धातुभ्यो वुञ् स्यात्। यथा—निन्दकः। हिंसकः। क्लेशकः। खादकः। विनाशकः। परिक्षेपकः। परिराटकः। परिवादकः। व्याभाषकः। असूयकः। (तच्छीलादिषु वास रूपन्यायेन तृजादयो नोभवन्तीति विज्ञेयम्)॥

निन्दा करने वाला। दुःख देने वाला। कुष्ट पहुंचाने वाला। खाने वाला। नाशकर्त्ता। फेंकने वाला। बहुतरटने वाला। निंदक, स्पष्टवक्ता। हँसी करनेवाला। निन्दक॥ तच्छीलादि कर्त्ताओं में निन्दआदि धातुओंसे परे वुञ् प्रत्ययहो॥ १४६॥

देविक्रुशोश्चोपसर्गे॥ १४७॥

दे०शोः, च, उ०र्गे। उपसर्गे उपपदे देवयतेः क्रुशेश्चवुञ् स्यात्। यथा—आदेवकः। आक्रोशकः॥

खिलाड़ी, विजयी, सुन्दर । गालीदाता । अण्डवण्डबकने वाला । तच्छीलादि कर्त्ता होंतो उपसर्ग उपपद होनेपर देवि तथा कुशधातुसे वुञ् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ १४८ ॥

च० ई, अ० ई, युच् । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु चलनार्थाच्छब्दार्थाच्च युच् स्यात् । यथा—चलनः । चोपनः । शब्दनः । रवणः । कम्पनः ॥

चलने वाला । शब्दकरने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो अकर्मकचलनार्थ तथा शब्दार्थक धातुओंसे युच् प्रत्ययहो ॥ १४८ ॥

अनुदात्तेतश्चहलादेः ॥ १४९ ॥

अ० तः, च, हं० देः । अनुदात्तेद्यो धातुर्हलादि रकर्मकस्तस्माद्युच् स्यात् । यथा—वर्त्तनः । वर्धनः ॥

वर्त्तावकरने वाला । वृद्धिकर्त्ता ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो अकर्मक हलादि अनुदात्तेत् धातु से युच् प्रत्ययहो ॥ १४९ ॥

जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुच लषपतपदः ॥ १५० ॥

(जु-इति सौत्रो धातुः-गतौ वेगेच) । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु जु प्रभृतिभ्यो धातुभ्यो युच् स्यात् । यथा—जवनः । चङ्क्रमणः । दन्द्रमणः । सरणः । गर्धनः । ज्वलनः । शोचनः । लषणः । पतनः । पदनः ॥

चलने वाला, जल्दबाज । इधर उधर टहलने वाला । इधर उधर घूमने वाला । जाने वाला । लोभी । अग्नि । शोककर्त्ता । सुन्दर । गिरने वाला । गमनशील ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होतो जु आदि धातुओं से युच् प्रत्ययहो ॥ १५० ॥

क्रुध मण्डार्थेभ्यश्च ॥ १५१ ॥

क्रु० भ्यः, च । क्रुधार्थेभ्यो मण्डार्थेभ्यश्च धातुभ्यो युच् स्यात् । यथा—क्रोधनः । रोषणः । मण्डनः । भूषणः ॥

क्रोधी । भूषण युक्त । तच्छीलादि कर्त्ता हों तो क्रुधार्थक तथा मण्डार्थक धातुओं से युच् प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

न यः ॥ १५२ ॥

यकारान्ताद् युज् न स्यात् । यथा—क्ष्मायिता ॥

कांपा हुआ । तच्छीलादि कर्त्ता हों तो यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय नहो ॥ १५२

सूददीपदीक्षश्च ॥ १५३ ॥

सू० क्षः, च । एभ्यो युज् न स्यात् । यथा—सूदिता । दीपिता । दीक्षिता ॥

झरनेवाला । प्रकाशक । शिक्षित ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो सूद, दीप तथा दीक्ष धातु से युच् प्रत्यय नहो ॥ १५३ ॥

लषपतपदस्था भू वृषहन कम गम शृभ्य उकञ् ॥ १५४ ॥

ल० भ्यः, उकञ् । तच्छीलादिषु कर्तृषु लष प्रभृतिभ्यो धातुभ्य उकञ् स्यात् । यथा—लाषुकः । पातुकः । पादुकः । स्थायुकः । भावुकः । वर्षुकः । घातुकः । कामुकः । गामुकः । शारुकः ॥

कान्तियुक्त । गमनशील । गमन कर्त्ता । स्थित । जिस शब्दपदके कारसे हो । वर्षने वाला । मारने वाला । कामी । गमनशील । हिंसक ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो लष आदि धातुओं से उकञ् प्रत्यय हो ॥ १५४ ॥

जल्पभिक्ष कुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ १५५ ॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु जल्पादिभ्यो धातुभ्यः षाकन् स्यात्। यथा-जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः, वराकी ॥

बकवादी, अधिक बोलने वाला। भिक्षुक। जलाने वाला। चोर। विचारा, विचारी॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो जल्पादि धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो॥ १११ ॥

प्रजोरिनिः ॥ १५६ ॥

प्रजोः, इनिः। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु प्रपूर्वाज्जवतेरिनिः स्यात्। यथा-प्रजवी, प्रजविनौ, प्रजविनः ॥

वेगवान्, अति चलने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो प्र पूर्वक जू धातुसे इनि प्रत्यय हो ॥ १९२ ॥

जिदृक्षिविश्रीण्वमाऽव्यथाऽभ्यमपरि भूप्रसूभ्यश्च ॥ १५७ ॥

जि० भ्यः, च। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु जि प्रभृतिभ्यो धातुभ्य इनिः स्यात्। यथा-जयी। दरी। क्षयी। विश्रयी। अत्ययी। वमी। अव्यथी। अभ्यमी। परिभवी। प्रसवी, प्रसविनौ, प्रसविनः ॥

जीतनेवाला। आदर करनेवाला। नाशवाला। सेवक। आज्ञा का न मानने वालों, कार्य्य को बिगाड़ने वाला। कै करनेवाला। अश्व, घोड़ा। अतिरोगी। हारनेवाला। पैदाकरनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो जि, दृ, क्षि, वि + श्रि, इण, वम, नञ + व्यथ, अभि + अम, परि + भू तथा परिपूर्वक षू धातु से इनि प्रत्यय हो ॥ १९७ ॥

स्पृहि गृहि पति दयि निद्रा तन्द्राश्र-द्धाभ्य आलुच् ॥ १५८ ॥

स्पृ० भ्यः, आलुच् । स्पष्टम् । यथा–स्पृहयालुः । गृहयालुः । पतयालुः । दयालुः । निद्रालुः । तन्द्रालुः । श्रद्धालुः ॥ (शीङो-वाच्यः) ॥ शयालुः ॥

चाहनेवाला । गृहीता, लेनेवाला । पतनशील, गिरनेवाला । रहीम, दयाकरने वाला । सोनेवाला । ऊंघनेवाला, आलसी । आदरकरने वाला । बहुत सोने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो स्पृहि, गृहि, पति, दयि, नि + द्रा, तद् + द्रा, श्रद् + डुधाञ् इन धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो ॥ १९८ ॥

दा धेट् सि शद सदो रुः ॥ १५९ ॥

दा० दें:, रुः । तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यो रुः स्यात् । यथा–दारुः । धारुः । सेरुः । शद्रुः । सद्रुः ॥

दाता । पीनेवाला । बांधने वाला । पैंना, तेज़ । गमनशील ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो डुधाञ्, धेट्, सि, शद तथा सद् धातु से रु प्रत्यय हो ॥ १९९ ॥

सृघस्यदः क्मरच् ॥ १६० ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यः क्मरच् स्यात् । यथा–सृमरः । घस्मरः । अद्मरः ॥

जानेवाला । खानेवाला । भोजी ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो सृ, घस् तथा अद धातु से क्मरच् प्रत्यय हो ॥ १६० ॥

भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ १६१ ॥

भ० दें:, घुरच् । तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यो घुरच् स्यात् । यथा–भङ्गुरः । भासुरः । मेदुरः ॥

नष्ट होनेवाला, टूटनेवाला । प्रकाश । चिकना ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो भञ्ज, भास तथा मिद धातु से घुरच् प्रत्यय हो ॥ १६१ ॥

विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥ १६२ ॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु विदादिभ्यो धातुभ्यः कुरच् स्यात्। यथा-विदुरः। भिदुरः। छिदुरः॥

पण्डित। तोडनेवाला। छेदन कर्त्ता॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो विद, भिदिर् तथा छिदिर् धातु से कुरच् प्रत्यय हो॥ १६२॥

इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप्॥ १६३॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु इणादिभ्यो धातुभ्यःक्वरप् स्यात। यथा-इत्वरः, इत्वरी। नश्वरः नश्वरी। जित्वरः,जित्वरी। सृत्वरः, सृत्वरी॥

पथिक, पथिका। नाश होनेवाला, ली। जीतनेवाला, ली॥ जानेवाला, ली। तच्छीलादि कर्त्ता हों तो इण, नश, जि तथा सृ धातु से क्वरप् प्रत्ययहो॥ १६३॥

गत्वरश्च॥ १६४॥

गत्वरः, च। गत्वर इति निपात्यते। गमे रनुनासिकलोपः क्वरप् च यथा-गत्वरः, गत्वरी॥

गमनशील, ला॥ गम्लृ धातु से क्वरप् प्रत्यय तथा अनुनासिक का लोप करके गत्वर शब्द निपातित कियागया है॥ १६४॥

जागुरूकः॥ १६५॥

जागुः, ऊकः। जागर्त्तेरूकः प्रत्ययः स्यात्। यथा-जागरूकः।

चतुर,जागरगणशील॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो जागृ धातुसे ऊक प्रत्ययहो॥ १६५॥

यजजपदशां यङः॥ १६६॥

तच्छीलादिषु कर्तृषु एभ्यो यङन्तेभ्यः ऊकः स्यात्। यथा-यायजूकः। जञ्जपूकः। दन्दशूकः॥

वार वार यज्ञ करनेवाला । वार२ कहने वाला । वार२ काटने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो यङन्त यज, जप तथा दंश धातु से ऊक प्रत्यय हो ॥ १६६ ॥

नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपोरः १६७

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु नम्यादिभ्यो धातुभ्यो रः स्यात् । यथा—नम्रः । कम्प्रः । स्मेरः । अजस्रम् । कम्रः । हिंस्रः । दीप्रः ॥

नमनशील, लचाहुआ । कांपने वाला । कामुक, सुन्दर । दुःखदायक । प्रकाशित ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो नम, कमि, स्मिङ्, नञ् + जसु, कमु, हिंस तथा दीपी धातु से र प्रत्यय हो ॥ १६७ ॥

सनाशंसभिक्ष उः ॥ १६८ ॥

स० क्षः, उः । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु सन्नन्तेभ्य आशंसे भिक्षेश्चोः स्यात् । यथा—चिकीर्षुः, चिकीर्षू, चिकीर्षवः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

करनेकी इच्छा करने वाला । इच्छावान, उम्मेदवार । मांगने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो सन्नन्त, आङ्+शसि तथा भिक्षधातुसे उ प्रत्ययहो ॥ १६८ ॥

विन्दुरिच्छुः ॥ १६९ ॥

विन्दुः, इच्छुः । वेत्तेर्नुम्, इषेश्छत्वमुश्च. निपात्यते । यथा—विन्दुः । इच्छुः ॥

जलकण, पानीका क़तरा, जानने वाला । चाहने वाला ॥ विद्धातुको नुगागम तथा उप्रत्यय एवम् इषुसे उ प्रत्यय तथा धातु को छत्व करके विन्दु तथा इच्छु शब्द निपातन कियागया है ॥ १६९ ॥

क्याच्छन्दसि ॥ १७० ॥

क्यात्, छन्दंसि छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्त्तृषु क्य प्रत्ययान्ताद् धातोरुः स्यात् । यथा—मित्रयुः ॥

मित्रप्रिय । तच्छीलादि कर्त्ता होंतो छन्दो विषय में क्य (क्यच्, क्यङ्, क्यष्) प्रत्ययान्त धातु से उ प्रत्ययहो ॥ १७० ॥

आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च १७१

छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्त्तृषु आदन्ता दृदन्ताद् गमादिभ्यश्च किकिनौ स्याताममू च लिड्वत् । यथा-पपिः सोमम् ददिर्गाः । बभ्रिर्वज्रम् । जग्मिर्युवा । जघ्निर्वृत्रममित्रियम् । जज्ञिः । (भाषायां धाञ् कृ सृ गमि जनि नमिभ्यः)॥ दधिः । चक्रिः । सस्रिः । जग्मिः । जज्ञिः । नेमिः ॥

छन्दो विषय में तच्छीलादि कर्त्ता होंतो आकारान्त ऋदन्त गम्लृ हन तथा जनी वा जन धातु से कि तथा किन् प्रत्ययहों और वे लिट्वत् माने जावें ॥ १७१ ॥

स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ १७२ ॥

स्व०षोः, नजिङ् । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु स्वपेस्तृषेश्च नजिङ् स्यात् । यथा-स्वप्नक्, स्वप्नजौ, स्वप्नजः । तृष्णक्, तृष्णजौ, तृष्णजः ॥

सोने वाला । प्यासा ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो ञिष्वप् तथा ञितृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो ॥ १७२ ॥

शॄवन्द्योरारुः ॥ १७३ ॥

शॄ० द्योः, आरुः । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु आभ्यामारुः स्यात् । यथा-शरारुः । वन्दारुः ॥

हिंसक । स्तुतिकरने वाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो शॄतथा वदिधातु से आरु प्रत्यय हो ॥ १७३ ॥

भियः क्रुक्लुकनौ ॥ १७४ ॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ञिभीभयेऽस्मात् क्रु क्लुकनौ स्याताम् यथा-भीरुः। भीलुकः ॥ (क्रुकन्नपि वाच्यः) ॥ भीरुकः ॥

डरपोंक ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो ञिभीधातुसे क्रु तथा क्लुकन् प्रत्ययहों ॥ १७४ ॥

स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥ १७५ ॥

स्थेशं०सः, वरच् । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु स्थादिभ्यो धातुभ्यो वरच् स्यात्। यथा-स्थावरः। ईश्वरः। भास्वरः। पेस्वरः। कस्वरः ॥

वृक्षादि। स्वामी। गमन शील। दीप्तिशील। जानेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता होंतो स्था, ईश, भास्, पिस् तथा कस धातु से वरच् प्रत्यय हो ॥ १७५ ॥

यश्च यङः ॥ १७६ ॥

यः, च, यङः। तच्छीलादिषु कर्त्तृषु या प्रापणेऽस्माद् यङन्ताद् वरच् स्यात्। यथा-यायावरः ॥

सर्वत्र विचरनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो यङन्त या धातु से वरच् प्रत्ययहो॥

भ्राज भास धुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रा वस्तुवः क्विप् ॥ १७७॥

तच्छीलादिषु कर्त्तृषु एभ्यः क्विप् स्यात्। यथा-विभ्राट्। भाः, भासौ, भासः। धूः, धुरौ, धुरः। विद्युत्। ऊर्क्। पूः, पुरौ, पुरः। जूः, जुवौ, जुवः। ग्रावस्तुत् ॥

विशेष प्रकाशित। प्रकाश। धूर्त्त। बिजुली। बलवान। नगर। गमनशील। पत्थरों की तारीफ़ करनेवाला ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो ॥ १७७ ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ १७८ ॥

अ० भ्यः, अपि, दृश्यते । तच्छीलादिषु कर्त्तृषु अन्येऽभ्योऽपि-धातुभ्यः क्विप् दृश्यते । यथा-युक् । छिद् । भिद् ॥ (क्विब् वचि प्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणांदीर्घोऽसम्प्रसारणं च)॥ यथा-वक्तीति-वाक् । पृच्छतीति-प्राट् । आयतं स्तौतीति-आयतस्तूः । कटं प्रवते-कटप्रूः । जुरुक्तः । श्रयतीति-श्रीः ॥ (द्युति गमि जुहोतीनां द्वे च) ॥ यथा-दिद्युत् । जगत् ॥ (जुहोतेर्दीर्घश्च) ॥ जुहूः । (दृ-भये) अस्य (ह्रस्वश्च) ॥ दीयते--ददृत् ॥ (ध्यायते सम्प्रसारणं च)॥ धीः ॥

जोड़नेवाला । छेदन कर्त्ता ॥ भेदनकर्त्ता ॥ तच्छीलादि कर्त्ता हों तो इतर धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय दीखता है ॥ १७८ ॥

भुवः सञ्ज्ञान्तरयोः ॥ १७९ ॥

सञ्ज्ञायामन्तरे च गम्ये भवतेः क्विप् स्यात् । यथा-मित्रभूर्नाम कश्चित् । प्रतिभूः । धनिकाधमर्णयोरन्तरे यो विश्वासार्थं तिष्ठति सः-प्रतिभूरित्युच्यते ॥

सञ्ज्ञा तथा अन्तर गम्यमान हो तो भू धातु से क्विप् प्रत्ययहो ॥ १७९ ॥

विप्रसंभ्यो ड्वसञ्ज्ञायाम् ॥ १८० ॥

वि० भ्यः, डु, अ० म् । असञ्ज्ञायामेभ्यो भुवो डुः स्यात् । यथा--विभुः--व्यापकः । प्रभुः- स्वामी । सम्भुः--जनिता ॥ (मितद्र्वादिभ्य उपसङ्ख्यानम्)॥यथा--मितंद्रवतीति-मितद्रुः । शतद्रुः । शम्भुः ॥

यदि किसी का नाम न हो तो वि, प्र तथा सम् उपसर्ग पूर्वक भू धातु से डु प्रत्यय हो ॥ १८० ॥

धेंः कर्मणि ष्ट्रन् ॥ १८१ ॥

धेटो धाञश्च कर्मणि कारके ष्ट्रन् स्यात् । यथा--धात्री । स्तन-दायिनी, आमलकी च धात्रीत्युच्यते ॥

कर्मकारक में धेट् एवम् डुधाञ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो ॥ १८१ ॥

दाम्नीशस युयुजस्तुतुदसिसिचमिह-पतदशनहः करणे ॥ १८२ ॥

करणे कारके दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् यथा—दान्त्यनेनेति—दात्रम् । नेत्रम् । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री ॥

हँसिया । लोचन, आंख । औज़ार । जोता (जोत्तर) । युगवन्धनार्थ दाम, जुयेके साथ हलबांधनेकी रस्सी । तारीफ । पशुआदिके ताडनकादण्डा, चाबुक । वन्धन । झरना । लिङ्ग, शिश्न । पत्तो । दाढ़ । वरत्रा (वर्त्त) चमड़ेके चरसे के खीचने की रस्सी ॥ करणकारकमें दाप् आदि धातुओंसे ष्ट्रन् प्रत्ययहो ॥ १८२ ॥

हलसूकरयोः पुवः ॥ १८३ ॥

पूङ्पूञोः करणे कारके ष्ट्रन् स्यात् । तच्चेत्करण हलसूकरयोरवयवः । यथा—पोत्रम् । हलस्य, सूकरस्य वा मुखमित्यर्थः ॥

पूङ् तथा पूञ् धातुसे करण कारक में ष्ट्रन् प्रत्ययहो यदि वह करण हल या सुअरका अवयव (मुख) होतो ॥ १८१ ॥

अर्त्तिलूधूसूखनिसहचर इत्रः ॥ १८४ ॥

* (७ । २ । ९) इतिनेट् ।

अ० चरः, इत्रः। करणे कारके एभ्यो धातुभ्य इत्रः स्यात्। यथा-अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्॥

करिया, नाव चलानेका काष्ठ, चप्पा। चाकू। व्यजन, पङ्खा। प्रेरक। कुद्दाल, फांवडा। शोचनेका साधन। जाना, हाल॥ करण कारक में ऋ, लूञ्, धू, सू, खनु, सह, तथा चर धातु से इत्र प्रत्यय हो॥ १८४॥

पुवः सञ्ज्ञायाम्॥ १८५॥

सञ्ज्ञायां गम्यमानायां करणे कारके पवतेरित्रः स्यात्। यथा-दर्भः पवित्रम्। बर्हिष्पवित्रम्॥

दाभ पाक हैं। यदि समुदाय से सञ्ज्ञा गम्यमानहो तो कारण कारकमें पू धातु से इत्र प्रत्यय हो॥ १८९॥

कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः॥ १८६॥

कर्त्तरि, च, ऋ० योः। ऋषिदेवतयोः करणे कर्त्तरि च पुव इत्रः स्यात्। ऋषौ करणे, देवतायां च कर्त्तरि। ऋषिर्वेदमन्त्रः। पूयतेऽनेनेति-पवित्रम्। अग्निः पवित्रम्॥

ऋषि तथा देवता वाच्य हो तो करण तथा कर्त्ता कारक में पू धातु से इत्रप्रत्यय हो

ञीतः क्तः॥ १८७॥

ञीतो धाधोर्वर्त्तमानेर्थे क्तः स्यात्। यथा-मिन्नः। धृष्टः॥

स्नेहयुक्त। ढीठ। ञकार जिसका इत् गयाहो ऐसे धातु से वर्त्तमान अर्थ में क्त प्रत्यय हो॥ १८७॥

मतिबुद्धि पूजार्थेभ्यश्च ॥ १८८ ॥

म० भ्यः, च । मति रिच्छा । बुद्धि र्ज्ञानम् । पूजा सत्कारः । एतदर्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्त्तमानेऽर्थे क्तः स्यात् । यथा–राज्ञां मतः । बुद्धः । पूजितः ॥

राजा लोग चाहते हैं, जाना है, सत्कार किया है ॥ वर्त्तमान अर्थ में मत्यर्थक बुद्ध्यर्थक तथा पूजार्थक धातुओं से क्त प्रत्यय हो ॥ १८८ ॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

अथ तृतीयाऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

उणादयो बहुलम् ॥ १ ॥

उ० यः, बं० म् । संज्ञायां विषये उणादयो वर्त्तमानेऽर्थे बहुलंस्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः । (कृ वा पा जिमि स्वदि साध्यशूभ्य उण्)[1] । यथा–कारुः । वायुः[2] । पायु । जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशुः ॥ बाहुलकं प्रकृतेस्तनु दृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् । कार्य्य सशेष विधेश्च तदुक्तं नैगमरूढि भवं हि सुसाधु ॥ १ ॥ नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् । यन्नपदार्थ विशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥ संज्ञासु धातु रूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे । कार्याद् विद्यादनुबन्ध, मेतच्छास्त्र मुणादिषु ॥३ ॥

कारीगर । पवन । गुदा । औषध । पित्त । स्वादुभोजन कर्त्ता । सज्जन । घोड़ा । वर्त्तमान अर्थ में उणादिप्रत्यय बहुलता से संज्ञाविषय में हों ॥ १ ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ २ ॥

१-(७ । २ । ११५) इति वृद्धिः ॥ २-(७ । ३ । ३३) इति युक् ॥

भूँते, अपि, दृ० न्ते । भूते कालेऽपि उणादयः प्रत्यया दृश्यन्ते। यथा—वर्त्म । चर्म । भस्म ॥

रास्ता । चाम । राख ॥ भूतकालमें भी उणादि प्रत्यय दीखते हैं ॥ २ ॥

भविष्यँति गम्यादयः ॥ ३ ॥

भविष्यति काले इमे साधवः स्युः । यथा—ग्रामं गमी । अत्राऽऽगामी ॥ (अनद्यतने उपसङ्ख्यानम्)॥श्वोग्रामं गमी॥

गांवको जानेवाला है । यहां आने वाला है ॥ भविष्यत् कालमें गमि आदि शब्द सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

यावत् पुरानिपातयोर्लट् ॥ ४ ॥

यां० योः, लट् । भविष्यति काले यावत् पुरा शब्दयोर्निपातयोरुपपदयो र्धातो लट् स्यात् । यथा—यावत् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते ॥

निश्चय खायेगा । निश्चय प्रथम खायेगा ॥ यावत् तथा पुरा निपात उपपद हों तो भविष्यत् काल में धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

विभाषा कदाकर्ह्योः ॥ ५ ॥

भविष्यति काले कदा कर्हि इत्येतयोरुपपदयो र्धातोर्वा लट् स्यात् । यथा—कदा कर्हि वा भुङ्क्ते, भोक्ष्यते, भोक्ता वा ॥

कब खायेगा ॥ कदा तथा कर्हि शब्द उपपद हों तो भविष्यत् काल में विकल्प करके धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

किंवृत्ते लिँप्सायाम् ॥ ६ ॥

भविष्यति काले किंवृत्तमुपपदे लिप्सायां गम्यमानायां धातो

वा लट् स्यात् । यथा—कं कतरं कतमं वा भवन्तो भोजयन्ति, भोजयिष्यन्ति, भोजयितारो वा ॥

आप किसको भोजन करायेंगे ॥ किं वृत्त उपपद हो तो लिप्सा के गम्यमान होनेपर विकल्प करके धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ ७ ॥

लिप्स्यमानेनान्नादिनास्वर्गादेः सिद्धौ गम्यमानायां भविष्यति काले वा लट् स्यात् । यथा—येऽन्नं ददति, दास्यन्ति, दातारो वा-ते स्वर्गं यान्ति, यास्यन्ति, यातारो वा ॥

जो अन्नदान करेंगे वे स्वर्ग (सुख) को प्राप्त होंगे ॥ लिप्स्यमान अन्नादि से स्वर्गादि (विशेषसुख) की सिद्धि गम्यमान होनेपर भविष्यत् काल में विकल्प से लट् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

लोडर्थलक्षणे च ॥ ८ ॥

लोडर्थः प्रैषादिर्लक्ष्यतेयेन—तत्र वर्त्तमानाद्धातोर्भविष्यति काले वा लट् स्यात् । यथा—अध्यापकश्चेदायाति, आयास्यति, आयाता वा अतस्त्वं पाठंस्मर ॥

चूंकि अध्यापक आने वाला है इसवास्ते तू पाठ यादकर । लोडर्थप्रैषादि लक्षितहों जिससे ऐसे अर्थ में वर्त्तमान धातु से भविष्यत् कालमें विकल्पसे लट्प्रत्ययहो ।८।

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ ९ ॥

लिङ्, च, ऊँ०के । ऊर्ध्वं मुहूर्त्ताद् भवः—ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकः । निपातनात्समास उत्तरपद वृद्धिश्च । ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके भविष्यति काले लोडर्थ लक्षणे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ्लटौ वा स्याताम् । यथा—मुहूर्त्तादुपरि उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, आगच्छति, आगमिष्यति, आगन्तावा—अथ यूयंवेद मधीयीध्वम् ॥

चूंकि दो घड़ी में उपाध्याय (शुल्क (फीस) लेकर पढ़ाने वाला) आनेवाले हैं इसलिये तुमवेद को पढ़ो। ऊर्ध्वमौहूर्तिक भविष्यत् काल में लोडर्थ लक्षण होने पर वर्त्तमान धातु से विकल्पकरके लिङ् तथा लट् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

तुमुन्ण्वुलौक्रियायांक्रियार्थायाम्॥१०॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदेभविष्यदर्थे धातोस्तुमुन् ण्वुलौ स्याताम्। मान्तत्वादव्ययत्वम्। यथा-गुरुकुलं द्रष्टुं प्रयाति।उत्सवं दर्शकायान्ति॥

गुरुकुल को देखेगा अतः जाता है। उत्सव को देखेंगे इसलिये जाते हैं। क्रियार्थक्रिया उपपद होते भविष्यत्काल में धातुसे तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय हो॥ १० ॥

भाववचनाश्च ॥ ११ ॥

भा०नाः, च। भाव इति प्रकृत्य वक्ष्यमाणा घञादयः क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थेस्युः। यथा-यागाययाति। पाठायैति ॥

यज्ञ करेगा अतः जाता है। पढ़ेगा इसलिये जाता है। क्रियार्थक्रिया उपपद होते भविष्यत्काल में धातु से घञ् आदि प्रत्यय हों ॥ ११ ॥

अण् कर्मणि च ॥ १२ ॥

भविष्यति काले कर्मण्युपपदे क्रियार्थायां क्रियायां चाण् स्यात्। यथा-काण्डलावो व्रजति ॥

वृक्षके स्कन्ध को काटेगा इसलिये जाता है ॥ कर्म तथा क्रियार्थ क्रिया उपपद होते भविष्यत्काल में धातु से अण् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

लृट् शेषे च ॥ १३ ॥

शेषे शुद्धे भविष्यति काले धातोर्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यांच। यथा-करिष्यतीति-व्रजति ॥ गमिष्यामि ॥

करेगा इसवास्ते जाता है । जाऊंगा । क्रियार्थ क्रिया उपपदहो या नहो तो शेष भविष्यत्काल में धातु से लृट् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

लृटः सद् वा ॥ १४ ॥

लृटः स्थाने सत्संज्ञकौ शतृशानचौ वा स्याताम् । व्यवस्थित विभाषयम् । तेनाऽप्रथमा समानाधिकरणे, प्रत्ययोत्तरपदयोः, सम्बोधने, लक्षणहेत्वोश्च, नित्यम् । यथा—करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य । करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः । करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन्! ॥ अर्जयिष्यन् वसति । प्रथमासमानाधिकरणे विकल्पः । करिष्यन् सः, करिष्यमाणः सः, करिष्यति, करिष्यते ॥

करने वालेको देख । करने वालेका लड़का । करने वालेकी भक्ति । हेकरनेवाले ! । इकट्ठाकरे इसलिये रहता है । वह करेगा ॥ लृट् के स्थान में सत् संज्ञक शतृ तथा शानच् विकल्प से आदेश हों ॥ १४ ॥

अनद्यतने लुट् ॥ १५ ॥

भविष्यदनद्यतनेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लुट् स्यात् । यथा—श्वोगन्ता सः । परेद्युः पठितासित्वम् । चैत्रेगन्तास्मि ॥ (**परिदेवनेश्वस्तनी भविष्यदर्थे वक्तव्या**) ॥ यथा—इयं नु कदा गन्ता या एवंपादौ निदधाति । अयं नु कदाऽध्येता यः एवमनभियुक्तः ॥

वह कल जायगा । तू परसों पढ़ेगा । चैत्र में मैं जाऊंगा ॥ भविष्यद् अनद्यतन (आजको छोड़कर) काल में वर्त्तमान धातु से लुट् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

पदरुजविशस्पृशोघञ् ॥ १६ ॥

प०शं:, घञ्, । इत उत्तरं त्रिष्वपि कालेषु प्रत्यया विधीयन्ते । पदादिभ्यो धातुभ्यो घञ् स्यात् । यथा—पद्यतेऽसौ- पादः । रुजतीति रोगः । विशतीति- वेशः । स्पृशतीति- स्पर्शः ॥

पैर। रोग। सजावटकाकाम। छूना॥ पद रुज, विश तथा स्पृशधातु से घञ्प्रत्ययहो॥१६

सृ स्थिरे ॥ १७ ॥

स्थिरे कर्त्तरि सर्त्तेर्धातोर्घञ् स्यात्। यथा--सरति कालान्तरमिति--सारः ॥ (व्याधिमत्स्यबलेषुचेतिवाच्यम्) ॥ यथा--अतीसारो व्याधिः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्रसरतिः। रुधिरादिक मतिशयेन सरतीत्यर्थः। विसारोमत्स्यः।सारोबलम्। सारो।बले।स्थिरांशेच॥

पक्काहिस्सा, स्थिर। स्थिरकर्त्ता वाच्यहोतो सृ धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ १७

भावे ॥ १८ ॥

भावे वाच्ये धातोर्घञ् स्यात्। यथा-पाकः।त्यागः। रागः। यागः॥

पचन। त्यजन, छोड़ना। रञ्जन, रंगना। यजन॥ भाव वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ १८॥

अकर्त्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम् ॥१९॥

कर्त्तृवर्जिते कारके सञ्ज्ञायां विषये धातोर्घञ् स्यात्। यथा-प्रास्यते इति प्रासः। को भवता लाभो लब्धः। आहरन्ति तस्माद्रसमित्याहारः॥

कुन्तास्त्र, भाला। आपको क्या लाभ हुआ। भोजन॥कर्त्तृवर्जित कारक में संज्ञा गम्यमान हो तो धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ १९॥

परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ २० ॥

परिमाणाख्यायां गम्यमानायां सर्वेभ्यो धातुभ्यो घञ् स्यात्। यथा-एकस्तण्डुलनिचायः। द्वौ कारौ॥ (दारजारौ कर्त्तरि

१—(६।४।२७) इति रञ्जेर्नलोपः॥

णिलुक् च)॥यथा—दारयन्तीति—दाराः। जारयन्तीति—जाराः॥

एक चावलों का समूह। दो करण (मारना)॥ परिमाणाख्या गम्यमान हो तो सब धातुओं से घञ् प्रत्ययहो॥ २०॥

इङश्च ॥ २१ ॥

इँङः, च। इङोधतोर्घञ् स्यात्। यथा—उपेत्याधीतेऽस्मादसावुपाध्यायः॥(अपादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष्)॥ यथा—उपाध्याया, उपाध्यायी॥ (शॄ वायुवर्ण निवृत्तेषु)॥ शॄ इत्यविभक्तिको निर्देशः। शारः—वायुः। शारः—वर्णः शारः—निवृत्तम्॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ २१॥

उपसर्गे रुवः ॥ २२ ॥

उपसर्गे उपपदे रौतेर्धातोर्घञ् स्यात्। यथा—संरावः॥

शब्द, आवाज़। उपसर्ग उपपद हो तो रु धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ २२॥

समि युद्रुदुवः ॥ २३ ॥

सम्युपपदे एभ्यो घञ् स्यात्। यथा—संयूयते मिश्री क्रियते गुडादिभिरिति संयावः। संद्रावः। सन्दावः॥

हलवा। चञ्चलवस्तु। गमन, जाना॥ सम् उपपद हो तो यु, द्रु तथा दु धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ २३॥

श्रिणी भुवोऽनुपसर्गे ॥ २४ ॥

श्रि०वें:, अं० गें। श्रिणी भू इत्येतेभ्यो धातुभ्योनुपसर्गेभ्यो घञ् स्यात्। यथा—श्रायः। नायः। भावः॥

सेवा । नीति । आशय, मतलब ॥ उपसर्गरहित श्रिञ्, नीञ्, तथा भू धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

वौ क्षुश्रुवः ॥ २५ ॥

वावुपपदे आभ्यां घञ् स्यात् । यथा -विक्षावः । विश्रावः ॥

शब्द । प्रसिद्धि । वि उपपद हो तो क्षु तथा श्रु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥२५॥

अवोदोर्नियः ॥ २६ ॥

अ० दोः, नियः । अव उत् इत्येतयो रुपपदयोर्नयतेर्धातो र्घञ् स्यात् । यथा--अवनायः--अधोनयनम् । उन्नायः ऊर्ध्वनयनम् ॥

अव तथा उत् उपपद हों तो नीञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥२७ ॥

प्रयुपपदे एभ्यो घञ् स्यात् । यथा -प्रद्रावः-पलायनम् । प्रस्तावः--प्रस्तावना । प्रस्रावः--मूत्रम् ॥

प्र उपपद हो तो द्रु, स्तु तथा स्रु धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

निरभ्योः पूल्वोः ॥ २८ ॥

निरभिपूर्वयोः पूल्वोर्धात्वोर्घञ् स्यात् । यथा--निष्पूयते शूर्पादिभिरिति--निष्पावो-धान्य विशेषः । अभिलावः--कृन्तनम् ॥

निर् तथा अभि उपपद हो तो पूङ्, पूञ् तथा लूञ् धातु से घञ् प्रत्ययहो॥२८॥

उन्न्योर्ग्रः ॥ २६ ॥

उन्न्योः, ग्रः । उन्न्योरुपपदयोर्गॄधातोर्घञ् स्यात् । यथा -उद्गारः-वमनम् । निगारः--भोजनम् ॥

उत् तथा नि उपपद हों तो गॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

कॄ धान्ये ॥ ३० ॥

कॄ इत्यस्माद् धान्य विषयकादुन्न्यो र्घञ् स्यात् । यथा—उत्कारः, निकारः । धान्यस्य विक्षेपादिकमित्यर्थः ॥

उत् तथा नि उपपद हों तो धान्य विषयक कॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥३०॥

यज्ञे समि स्तुवः ॥ ३१ ॥

यज्ञविषये प्रयोगे सम्पूर्वात् स्तौतेर्घञ् स्यात् । यथा—समेत्यस्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगाः—स देशः संस्तावः । यज्ञे किम् । संस्तवः—परिचयः ॥

यज्ञविषयक प्रयोग में संपूर्वक स्तुञ्धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

प्रेस्त्रोऽयज्ञे ॥ ३२ ॥

प्रे, स्त्रः, अ०ज्ञे । यज्ञविषयं विहाय प्रयुपपदे स्तॄञ् धातोर्घञ् स्यात् । यथा—प्रस्तारः ॥

फैलाव ॥ यज्ञ विषयक को छोड़कर प्रपूर्वक स्तॄञ्धातुसे घञ्प्रत्ययहो ॥ ३२ ॥

प्रथनेवावशब्दे ॥ ३३ ॥

प्रथने, वौ, अशब्दे । प्रथने गम्ये विपूर्वात् स्तॄञ् धातोर्घञ् स्यादशब्दे । यथा—पटस्य विस्तारः । प्रथनेकिम् । तृणविस्तरः । अशब्दे किम् । ग्रन्थविस्तरः ॥

अशब्द विषयक प्रथन (विस्तीर्णता) गम्यमान होतो विपूर्वक स्तृञ धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

छन्दोनाम्नि च ॥ ३४ ॥

विपूर्वात् स्तृणातेश्छन्दो नाम्नि घञ् स्यात् । यथा–विष्टार-पङ्क्तिश्छन्दः ॥

जिसमें कि अक्षर विस्तीर्ण किये जाते हैं ऐसा पङ्क्ति नामक छन्द ॥ विपूर्वक स्तृञ् धातु से छन्दोनामवाच्य होनेपर घञ् प्रत्ययहो ॥ ३४ ॥

उदि ग्रहः ॥ ३५ ॥

उद्युपपदे ग्रहे र्धातोर्घञ् स्यात् । यथा–उद्ग्राहः ॥

ऊपर पकड़ना ॥ उद् उपपद होतो ग्रहधातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ३५ ॥

समि मुष्टौ ॥ ३६ ॥

मुष्टौ विषये सम्युपपदे ग्रहेर्धातोर्घञ् स्यात् । यथा–मल्लस्यसंग्राहः ॥

मल्लकी मुष्टि ॥ मुष्टिविषयक धात्वर्थ होतो सम् उपपद होनेपर ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ ३७ ॥

प०न्योः, नीणोः. द्यूः०योः । द्यूताभ्रेषयोः परिशब्दे निशब्दे चोपपदे यथासङ्ख्यं निय इणश्च धातोर्घञ् स्यात् । यथा–परिणायेन शारान्हन्ति । समन्तान्नयनेनेत्यर्थः । एषोऽत्र न्यायः । उचितमित्यर्थः । द्यूताभ्रेषयोः किम् । परिणयः–विवाहः । न्ययः–नाशः ॥

यथा सङ्ख्य परि तथा नि उपपद होतो द्यूत विषयार्थ नीञ् तथा अभ्रेष (न्याय) विषयार्थ इण धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

परावनुपात्यय इणः ॥ ३८ ॥

परौ, अ० ये, इणः। अनुपात्यये गम्ये परि शब्दे उपपदे इणोधातोर्घञ् स्यात्। क्रमप्राप्तस्य अनतिपातः–अनुपात्ययः–परिपाटी। यथा–तव पर्य्यायः। मम पर्यायः॥

अनुक्रम, सिलसिला। अनुपात्यय (पारी) गम्यमान होतो परि पूर्वक इण धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ ३८॥

व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ ३९ ॥

पर्याये गम्ये वि उप इत्येतयो रुपपदयोः शेतेर्धातोर्घञ् स्यात्। यथा-तवविशायः।तवराजोपशायः।तवराजानमुपशयितुंपर्यायइत्यर्थः॥

पर्यायगम्यमान हो तो वि तथा उप उपपद होनेपर शीङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो॥३९॥

हस्तादाने चेरस्तेये ॥ ४० ॥

ह० ने, चेः, अ० ये। अस्तेयं विहाय हस्तादाने गम्ये चिनोतेर्धातो र्घञ् स्यात्। हस्तादान इत्यनेन प्रत्यासत्ति रादेयस्य लक्ष्यते। यथा–पुष्प प्रचायः॥

अस्तेय विषयक हस्तादान गम्यमान हो तो चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ४०

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ ४१ ॥

नि० षु, अ०देः, च, कः। निवसन्त्यस्मिन्निति-निवासः। चीयतेऽसौ-चितिः। पाण्यादि समुदायः-शरीरम्। राशी करणम्-उपसमाधानम्। एष्वर्थेषु चिनोते घञ् आदेश्च कादेशः। यथा–निवासे-

मथुरा-निकायः। चितौ-आकायमग्निं चिन्वीत। शरीरंचीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति-कायः। समूह गोमयनिकायः॥

निवासादि अर्थोंमें चिञ् धातुसे घञ् प्रत्यय और धातुके आदिको ककारादेश हो॥

सङ्घेचानौत्तराधर्ये॥ ४२॥

सङ्घे, च, अ॰ र्ये। अनौत्तरा धर्ये सङ्घे वाच्ये चिनोतेर्घञ् स्यात्, आदेश्च कः। यथा—छात्रनिकायः। प्राणिनां समूहः-सङ्घः॥

औत्तराधर्य से भिन्न समूह वाच्य हो तो चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय तथा धातुके आदि को ककारादेश हो॥ ४२॥

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्॥ ४३॥

स्त्रीलिङ्गे वाच्ये भावे कर्मव्यतिहारे गम्ये धातोर्णच् स्यात्। यथा—व्यावहासी। व्यावक्रोशी॥

आपस में हंसना। आपस में रोना॥ भाव में स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो तो कर्म व्यतिहार गम्यमान होनेपर धातु से णच् प्रत्यय हो॥ ४३॥

अभिविधौ भाव इनुण्॥ ४४॥

अ॰ धौ, भावे, इनुण्। अभिविधिरभिव्याप्तिः क्रिया गुणाभ्यां कात्स्र्न्येन सम्बन्ध इत्यर्थः। अभिविधौ गम्ये धातो भावे इनुण् स्यात्। यथा—सांकूटिनम्॥

अभिविधि गम्यमान हो तो भाव में धातु से इनुण प्रत्यय हो॥ ४४॥

आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः॥ ४५॥

अ॰ शे, अ॰ न्योः, ग्रहः। आक्रोशे गम्ये अव नि इत्येतयो

१-(५।४।१५) इत्यण्॥

रुपपदयो र्ग्रहे घञ् स्यात् । यथा–अवग्राहस्तव भूयात् । अभिभव इत्यर्थः । निग्राहस्ते भूयात् । बाध इत्यर्थः ॥

आक्रोश (शाप) गम्यमान होनेपर अव तथा नि उपपद हों तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

प्रे॑ लिप्सायाम् ॥४६॥

लिप्सायां गम्यमानायां प्रयुपपदे ग्रहे घञ् स्यात् । यथा–पात्र ग्राहेण चरति भिक्षुः ॥

लोलुप संन्यासी पात्र लिये विचरता है ॥ लिप्सा (लोभ) गम्यमान होने-पर प्र उपपद हो तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४६ ॥

प॒रौ य॒ज्ञे ॥ ४७॥

यज्ञे परावुपपदे ग्रहे घञ् स्यात् । यथा–उत्तरः- परिग्रहः । स्फयेन वेदेः स्वीकरणम् ॥

यदि यज्ञ विषय अभिधेय हो तो परिपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥४७॥

नौ॑ वृ॑ धान्ये ॥४८॥

धान्येऽभिधेये निशब्दे उपपदे वृ इत्यस्माद् धातो र्घञ् स्यात् । यथा–नीवारः ॥

पुआल (प्यार) ॥ धान्य अभिधेय हो तो नि उपपद होनेपर वृङ् तथा वृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

उ॑दि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ ४९ ॥

१-(६ । ३ । १२२) इतिनेदीर्घः ॥

उच्छब्दे उपपदे श्रयत्यादिभ्यो धातुभ्यो घञ् स्यात्। यथा-उच्छ्रायः। उद्यावः। उत्पावः। उद्द्रावः॥

उच्चता,ऊँचा पन। सम्मेलन,मिलना। पवित्रता। पलायन,भागना। उद् उपपद हो तो श्रिञ्, यु, पूञ् या पूङ् तथा द्रु धातु से घञ् प्रत्यय हो॥ ४९॥

विभाषाऽऽङि रुप्लुवोः॥ ५०॥

आङि उपपदे रौतेः प्लवतेश्च वा घञ् स्यात्। यथा-आरावः,आरवः। आप्लावः, आप्लवः॥

शब्द। स्नान॥ आङ् उपपद हो तो रु तथा प्लुङ् धातुओं से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो॥ ५०॥

अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे॥ ५१॥

अवे, ग्रहः, व० न्धे। वर्षप्रतिबन्धेऽभिधेयेऽव उपपदे ग्रहेर्वा घञ् स्यात्। यथा-अवग्राहः, अवग्रहः॥

वृष्टिरोध, वर्षा का न होना॥ वर्षा का प्रतिबन्ध (रुकावट) होना हो तो अव उपपद होनेपर ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो॥ ५१॥

प्रे वणिजाम्॥ ५२॥

प्र उपपदे ग्रहेर्वा घञ् वणिजां सम्बन्धी चेत्प्रत्ययार्थः। यथा-तुलाप्रग्राहेण चरति। तुलाप्रग्रहेण चरति॥

तुला (तराजू) लिये घूमता है॥ यदि वणिक् सम्बन्धी प्रत्ययार्थ वाच्य हो तो प्र शब्द उपपद होने पर ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो॥ ५२॥

रश्मौ च॥ ५३॥

प्रयुपपदे ग्रहेर्वा घञ् स्यात्, रश्मिश्चेत् प्रत्ययार्थः। यथा-प्रग्राहः प्रग्रहः॥

किरण ॥ रश्मि, अभिधेय हो तो प्र उपपद होनेपर ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

वृणोतेराच्छादने ॥ ५४ ॥

वृं० तेः, आ० ने । प्र उपपदे वृणोतेराच्छादने वा घञ् स्यात् । यथा—प्रवारः, प्रवरः, ॥

आच्छादन । चदरादि वस्त्र जोकि ऊपर से ओढ़ेजाते हैं ॥ प्रत्ययार्थ से आच्छादन विशेष अभिधेय हो तो प्र उपपद होनेपर वृञ् धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

परौ भुवोऽवज्ञाने ॥ ५५ ॥

परौ, भुवः, अ० ने । परावुपपदे भुवो वा घञ् स्यादवज्ञाने गम्ये । यथा—परिभावः । परिभवः । अवज्ञाने किम् । सर्वतो भवनम्—परिभवः ॥

परि उपपदहो तो अवज्ञान (तिरस्कार) अर्थ में भू धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो ॥ ५५ ॥

एरच् ॥ ५६ ॥

एः, अच् । इवर्णान्ताद्धातोर्भावेऽकर्त्तरि च कारके संज्ञायामच् स्यात् । यथा—जयः । चयः । क्षयः । अयः ॥ (भयादीनामुपसङ्ख्यानम्) ॥ नपुंसके क्तादि निवृत्त्यर्थम् । भयम् । वर्षम् ॥

जीत । इकट्ठा करना । नाश । पूर्वजन्म का शुभकर्म ॥ इवर्णान्त धातु से कर्त्ता भिन्न कारक तथा भाव में संज्ञागम्यमान होनेपर अच् प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

ॠदोरप् ॥ ५७ ॥

ॠदोः, अप् । ॠकारान्तादुवर्णान्ताच्चाऽप् स्यात् । यथा—करः । गरः । शरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ॥

हस्त, हाथ । विष । वाण । जौ । लेश (जरासा हिस्सा) । स्तुति, प्रशंसा । पवित्र करना ॥ कर्त्तृभिन्न कारक तथा भाव में ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुसे अप् प्रत्ययहो ॥ ५७ ॥

ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ ५८ ॥

ग्र०मः, च । एभ्यो धातुभ्योऽप् स्यात् । यथा-ग्रहः । वरः । दरः । निश्चयः । गमः ॥ (वशिरण्यो रुपसङ्ख्यानम्) ॥ यथा- वशः । रणः ॥ (घञर्थेकविधानम्) ॥ प्रस्थः । विघ्नः ॥ (द्वित्वप्रकरणे के कृञादीनामिति वक्तव्यम्) ॥ चक्रम् । चिक्लिदम् । चक्नसः ॥

सूर्यादिनव । पति । गर्त्त । सिद्धान्त, पक्का । जाना, मार्ग ॥ ग्रह, वृञ् वा वृङ् दृङ, निस् वा निर् + चिञ् तथा गम्लृ धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

उपसर्गेऽदः ॥ ५९ ॥

उपसर्गे उपपदेऽदेर्धातो रप् स्यात् । यथा--प्रघसः । विघसः ॥

भोजन ॥ उपसर्ग उपपद होतो अद्धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

नौ ण च ॥ ६० ॥

नावुपपदे अदेर्णः स्यादप्च । यथा--न्यादः, निघसः ॥

भोजन, खुराक ॥ नि उपपद होतो अद्धातुसे ण तथा अप्प्रत्यय हो ॥ ६० ॥

व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ ६१ ॥

व्यं०पोः, अं०र्गे । व्यधजप इत्येतयोरनुपसर्गयोरप् स्यात् । यथा--व्यधः । जपः ॥

१—(२ । ४ । ३८) इत्यदोघस्लृः ॥

फाड़ना, चोट लगना, छेद करना। बार बार कहना ॥ उपसर्ग उपपद न हो तो व्यध तथा जप धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

स्वनहसोर्वा ॥ ६२ ॥

स्व० सोः, वा। स्वनहसोरनुपसर्गयो र्वाऽप् स्यात्। यथा-स्वनः, स्वानः। हसः, हासः॥

शब्द। हसना॥ उपसर्ग रहित स्वन तथा हसे धातु से विकल्पसे अप् प्रत्यय हो॥

यमः समुपनिविषु च ॥ ६३ ॥

सम् उप नि वि इत्येतेषूपपदेषु अनुपसर्गे च यमेरब्वा स्यात्। यथा--संयमः, संयामः। उपयमः, उपयामः। नियमः, नियामः। वियमः, वियामः। यमः, यामः॥

संयम। विवाह। व्रत, कायदा। संयम, रोकना। समय, प्रहर॥ सम्, उप, नि, वि ये उपपद हों या नहीं तो यमु धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो॥ ६३॥

नौ गदनदपठस्वनः ॥ ६४ ॥

नावुपपदे एभ्यो वाप् स्यात्। यथा-निगदः, निगादः। निनदः, निनादः। निपठः, निपाठः। निस्वनः, निस्वानः॥

कथन। ध्वनि। पठन। शब्द॥ नि उपपद होतो गद नद पठ तथा स्वन धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो॥ ६४॥

क्वणो वीणायांच ॥ ६५ ॥

क्वणः, वी०मुँ, च। नावनुपसर्गे चवीणाविषयाच्च क्वणते रब्वा स्यात्। यथा-निक्वणः, निक्वाणः। क्वणः, क्वाणः॥

वीणाका शब्द॥ वीणा अर्थ में नि उपपद होने पर तथा उपसर्ग उपपद नहो तोभी क्वण धातु से विकल्प करके अप् प्रत्यय हो॥ ६५॥

नित्यं पणः परिमाणे ॥ ६६ ॥

परिमाणे गम्ये पणो नित्यमप् स्यात् । यथा-मूलकपणः । शाकपणः। व्यवहारार्थमूलकादीनांपरिमितोमुष्टिर्बध्यतेपणोऽसावुच्यते॥

मूली की गड्डिया । शाक की गड्डिया ॥ परिमाण गम्यमान होतो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

मदोऽनुपसर्गे ॥ ६७ ॥

मदँः, अँर्गे । अनुपसर्गान्मदोऽप् स्यात् । यथा-विद्यामदः । धनमदः ॥

विद्याका घमण्ड। धनका घमण्ड ॥ उपसर्गरहित मद्धातुसे अप् प्रत्यय हो ॥ ६७ ॥

प्रमदसम्मदौ हर्षे ॥ ६८ ॥

हर्षे इमौ निपात्येते । यथा-मित्रप्रमदः । पुत्रसम्मदः ॥

मित्रका हर्ष । पुत्रका हर्ष ॥ हर्ष अभिधेय होतो अप् प्रत्ययान्त प्रमद तथा सम्मद शब्द निपातित हैं ॥ ६८ ॥

समुदोरजः पशुषु ॥ ६९ ॥

समुँदोः, अजँः, पशुषुँ । सम्पूर्वोऽजिः-समुदाये, उत्पूर्वश्चप्रेरणे । तस्मात् पशुविषयकादप् स्यात् । यथा-समजः-पशूनां सङ्घः । उदजः-पशूनां प्रेरणम् ॥

पशुओं का समुदाय । पशुओं के चलाने का दण्डा ॥ सम् तथा उत् उपपद हों तो पशु विषयक अज धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

अक्षेषुँग्लहः ॥ ७० ॥

ग्लह इति निपात्यते अक्षविषयक धात्वर्थे । यथा—ग्लहः ॥

जूआ, द्यूत, पासा ॥ अक्षविषयक धात्वर्थ होतो ग्रह वा ग्लह धातु से अप् प्रत्ययान्त ग्लह यह निपातित है ॥ ७० ॥

प्रजने सर्त्तेः ॥ ७१ ॥

प्रजनविषये सर्त्तेरप् स्यात् । प्रजनं प्रथमगर्भ ग्रहणम् । यथा—गवा मुपसरः ॥

गऊओं का प्रथम गर्भ को प्राप्त होना ॥ प्रजन विषय में सर्त्ति (सृ) धातु से अप् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

ह्वः सम्प्रसारणंचन्यभ्युपविषु ॥ ७२ ॥

एषूपपदेषु ह्वयतेः सम्प्रसारणमप् च स्यात् । यथा—निहवः । अभिहवः । उपहवः । विहवः ॥

बुलाना ॥ नि, अभि, उप तथा वि उपपद होतो ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और इस को सम्प्रसारण भी हो ॥ ७२ ॥

आङि युद्धे ॥ ७३ ॥

युद्धेऽभिधेये आङि उपपदे ह्वयतेः सम्प्रसारणमप् च स्यात् । यथा—आहूयन्तेऽस्मिन्निति—आहवः ॥

संग्राम । युद्ध अभिधेय होतो आङ् उपपदहोने पर ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा उक्त धातु को सम्प्रसारण भी हो ॥ ७३ ॥

निपानमाहावः ॥ ७४ ॥

नि०म्, आ०वः । आङ् पूर्वस्य ह्वयतेः सम्प्रसारणमब् वृद्धिश्च निपात्यते, उदकाधारश्चेद् वाच्यः स्यात् । यथा—आहूयन्ते जलपानार्थं पशवो यत्रेति—आहावः ॥

पशुओं की पौ ॥ निपान अभिधेय होनेपर आङ्+ ह्वेञ् धातुको सम्प्रसारण वृद्धि तथा अप् प्रत्यय करके आहाव निपातन कियागया है ॥ ७४ ॥

भावेऽनुपसर्गस्य ॥ ७५ ॥

भावेऽनुपसर्गस्य ह्वयतेः सम्प्रसारण मप् च स्यात् । यथा-हवः ॥

बुलाना॥ भाव अभिधेय हो तो ह्वेञ् धातु से सम्प्रसारण तथा अप् प्रत्यय हो ७५

हनश्च वधः ॥ ७६ ॥

हनः, च, वधः । अनुपसर्गाद् धन्ते भावेऽप् स्यात्, वधादेशश्च । यथा-शत्रूणां वधः ॥

दुश्मनों का मारना ॥ भाव अभिधेय हो तो उपसर्गरहित हन धातु से अप्प्रत्यय तथा उक्त धातु को वधादेश भी हो ॥ ७६ ॥

मूर्त्तौ घनः ॥ ७७ ॥

मूर्त्तिः काठिन्यम् । मूर्त्तावभि धेयायां हन्ते रप् स्यात्, घनश्चादेशः । यथा-अभ्रघनः । दधिघनः ॥

बद्दलों की सघनता । जमाहुआ दही ॥ मूर्त्ति वाच्य हो तो हन् धातु से अप् प्रत्यय तथा हन्को घनादेश भी हो ॥ ७७ ॥

अन्तर्घनो देशे ॥ ७८ ॥

अ० नः, देशे । अन्तः पूर्वाद्धन्ते रप् घनादेशश्च स्यात्, देशे वाच्ये । यथा-अन्तर्घनः-वाहीक ग्राम विशेषस्य संज्ञयम् । अन्तर्घण इति पाठान्तरम् ॥

देश वाच्य हो तो अन्तः+हन् धातु से अप्प्रत्यय तथाहन् को घन आदेश हो ॥७८॥

अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥७९॥

अँ० शे, प्र० णः, प्र० णः, च । प्र-पूर्वस्य हन्तेः प्रघणः प्रघाणश्चेतीमौशब्दौ निपात्येते-अगारैकदेशे वाच्ये । द्वार देशेद्वौप्रकोष्ठावलिन्दौ--अभ्यन्तरो, बाह्यश्च । तत्र बाह्ये प्रकोष्ठे निपातन मिदम् । प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यते इति । यथा—प्रघणः । प्रघाणः ॥

बाहरी दहलीज के आगे का चबूतरा ॥ अगारैकदेशे वाच्य हो तो प्र + हन धातु से अप् प्रत्ययान्त प्रघण तथा प्रघाण निपातन कियेगये हैं ॥ ७९ ॥

उद्घनोऽत्या धानम् ॥ ८० ॥

उ० नः, अं० नम् । उत्पूर्वस्य हन्ते रुद्घन इति निपात्यतेऽत्याधानं चेत् स्यात् । अत्याधानम्-उपरि स्थापनम् । यस्मिन् काष्ठे अन्यानि काष्ठानि स्थापयित्वा तक्ष्यन्ते--तदुद्घनः ॥

अत्याधान (ऊपर रखना) वाच्य होनेपर उत् + हन धातु से अप् प्रत्यान्त उद्घन यह निपातन किया गया है ॥ ८० ॥

अपघनोऽङ्गम् ॥ ८१ ॥

अ० नः, अ० मं । अप पूर्वस्य हन्ते रप् घन इति निपात्यते-अङ्गं चेत् स्यात् । यथा—अपघनः । अङ्गम्-शरीरावयवः । स चेह न सर्वः, किन्तु पाणिः पादश्चेत्याहुः ॥

अङ्गवाच्य होनेपर अप् + हन धातु से अप् प्रत्ययान्त अपघन निपातन किया गया है ॥ ८१ ॥

करणे ऽयोविद्रुषु ॥ ८२ ॥

एषूपपदेषु हन्तेः करणेऽप् स्याद् घनादेशश्च। यथा-अयो हन्यतेऽनेनेति--अयोघनः। विघनः। द्रुघनः। द्रुघण इत्येके पूर्वपदात् संज्ञाया मिति णत्वम्॥

घन। मुद्गर। कुल्हाड़ी॥ अयस्, वि तथा द्रु उपपद होनेपर हन धातु से करण में अप् प्रत्यय तथा हन धातु को घन आदेश हो॥ ८२॥

स्तम्बे कँ चँ॥ ८३॥

स्तम्बे उपपदे हन्तेः करणे कारके कः स्यादप्च, पक्षे घनादेशश्च। यथा-स्तम्बघ्नः, स्तम्बघनः॥

झाड़ी को तोड़ने वाला॥ स्तम्ब शब्द उपपद हो तो हन धातु से करण कारक में क तथा अप् प्रत्यय हो और अप् के सन्नियोग में हन धातु को घन आदेश भी हो

परौ घः॥ ८४॥

परौ हन्ते रप् स्यात् करणे कारके घश्चादेशः। यथा-परि हन्यतेऽनेनेति--परिघः, पलिघः॥

घन, मुद्गर। परि उपपद हो तो हन धातु से करण कारक में अप् प्रत्यय और हन को घ आदेश हो॥ ८४॥

उपघ्न आश्रये॥ ८५॥

उ० घ्नः, आ० ये। उप पूर्वस्य हन्तेरप् उपधा लोपश्च निपात्यते। आश्रयशब्देन सामीप्यं लक्ष्यते। यथा--पर्वतेनोपहन्यते सामीप्येन गम्यते इति-पर्वतोपघ्नः॥

आश्रय (समीपता) द्योत्य हो तो उपपूर्वक हन धातु से अप्प्रत्ययान्त उपघ्न निपातन किया गया है॥ ८५॥

१—(८। २। २२) इति लोवा॥

सङ्घोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ ८६ ॥

गणे प्रशंसायां च सङ्घोद्धौ शब्दौ निपात्येते । यथा--संहननम्--सङ्घः । उद्धन्यते उत्कृष्टो जायते इति--उद्घः ॥

गण तथा प्रशंसा अर्थमें अप्प्रत्ययान्त सङ्घ और उद्घ निपातन कियेगये हैं ॥ ८६॥

निघो निमितम् ॥ ८७ ॥

निघः, नि० म् । निघ इति निपूर्वाद् धन्तेरप् टिलोपो घत्वं च निपात्यते, निमितं चेद् वाच्ये । समन्तान्मितम्–निमितम् । यथा–निर्विशेषं हन्यन्ते ज्ञायन्ते इति–निघाः–वृक्षाः । समारोहपरिणाहा इत्यर्थः ॥

निमित वाच्य हो तो निपूर्वक हन धातुको अप् प्रत्यय टिलोप तथा घत्व निपातन कियागया है ॥ ८७ ॥

ड्वितः क्त्रिः ॥ ८८ ॥

डु इद्यस्य तस्माद् ड्वितो धातोः क्त्रिः स्यात् भावे। त्रेर्मम् नित्यमिति वचनात्केवलो नोप्रयुज्यते । यथा–(डुपचष् पाके) पाकेन निर्वृत्तम्–पक्त्रिमम् । डुवप्-उप्त्रिमम् । डुकृञ्–कृत्रिमम् ॥

पकाहुआ । बोया हुआ । कियाहुआ, बनावटी ॥ डु जिसका इत् गया हो ऐसे धातु से भाव में क्त्रि प्रत्यय हो ॥८८॥

ट्वितोऽथुच् ॥ ८९ ॥

ट्वितः, अ० च् । टु इद्यस्य तस्मात् ट्वितो धातोरथुच् स्याद् भावे । यथा–(टु-वेपृ)–वेपथुः । (टु ओश्वि)–श्वयथुः ॥

कांपना । जाना ॥ टु जिसका इत् गयाहो एसे धातु से भाव में अथुच् प्रत्ययहो८९

यज याचयत विच्छ प्रच्छ रक्षो नङ् ९०

य० क्षः, नङ्। यजादिभ्यो धातुभ्यो भावे नङ् स्यात् । यथा-यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः। प्रश्नेचासन्नेति ज्ञापकान्न सम्प्रसारणम् ॥

यज्ञ। मांगना। उपाय। जाना। सवाल॥ यज आदि धातुओं से भाव में नङ् प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

स्वपो नन् ॥ ९१ ॥

स्वपः, नन्। स्पष्टम्। यथा-स्वप्नः ॥

सोना, नींद ॥ ञिष्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

उपसर्गे घोः किः ॥ ९२ ॥

उपसर्गे उपपदे घु संज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः स्याद्भावे । यथा-विधिः। प्रधिः। अन्तर्धिः। उपाधीयतेऽनेनेति-उपाधिः। निधिः ॥

क्रम। रथकी नाभि, धुरा। आच्छादन, छिपना। लकब, पद। कोष॥ उपसर्ग पद हो तो घु संज्ञक धातुओं से भाव में कि प्रत्ययहो ॥ ९२ ॥

कर्मण्यधिकरणे च ॥ ९३ ॥

कं० णि, अ० णे, च। कर्मण्युपपदे घोः किः स्यादधिकरणेऽर्थे। यथा-जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति--जलधिः--समुद्रः ॥

अधिकरण कारक में कर्म उपपदहो तो घु संज्ञक धातु से कि प्रत्ययहो॥ ९३ ॥

स्त्रियां क्तिन् ॥ ९४ ॥

भावादौ स्त्रीलिङ्गे धातोः क्तिन् स्यात् । यथा-करणम्--कृतिः । चयनम्--चितिः । मननम्--मतिः ॥ (श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे) ॥ श्रूयतेऽनयेति--श्रुतिः । यजेरिषेश्च--इष्टिः । स्तुतिः ॥ (ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः) ॥ कीर्णिः । गीर्णिः । लूनिः । धूनिः । पूनिः ॥ (चायतेःक्तिनि चि भावोवाच्यः)॥ अपचितिः ॥ (सम्पदा दिभ्यः क्विप्) ॥ सम्पत् । विपत् ॥ (क्तिन्नपीष्यते) ॥ सम्पत्तिः । विपत्तिः ।

भाव आदि में स्त्रीलिङ्गवाच्य हो तो धातुसे क्तिन् प्रत्ययहो ॥९४॥

स्थागापापचो भावे ॥९५॥

स्था० चंः, भावे । स्त्रीलिङ्गे स्थादिभ्यो धातुभ्यः क्तिन् स्याद् भावे । यथा--प्रस्थितिः, उपस्थितिः, संस्थितिः । सङ्गीतिः । सम्पीतिः । पक्तिः ॥

प्रस्थान, हाजिरी, ठैरना । गाना । पीना । पकना ॥ भाव में स्त्रीलिङ्गवाच्य हो तो स्था आदि धातुओं से क्तिन् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

मन्त्रेवृषेषपचमनविदभूवीराउदात्तः ९६

मन्त्रे, वृ०रां:, उ०त्तः । स्त्रीलिङ्गे भावे मन्त्रविषये एभ्यो धातुभ्यः क्तिन् स्यादसावुदात्तः । यथा--वृष्टिः । इष्टिः । पक्तिः । मतिः । वित्तिः । भूतिः । वीतिः । रातिः ॥

वर्षा । अभिलाषा । पकना । मनन । ज्ञान । होना । जाना । देना ॥ मन्त्रविषय में वृषआदि धातुओंसे स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय और वह उदात्त हो ॥ ९६ ॥

ऊति यूतिजूति सातिहेतिकीर्त्तयश्च ९७

ऊ० यः, च। ऊत्यादयः शब्दाः क्तिन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। यथा—अवनम्-ऊतिः। यूतिः। जूतिः। सातिः। हेतिः। कीर्तिः॥

बचाना। मिश्रीकरण। वेग। अवसान। अग्नि ज्वाला, सूर्य प्रभा। कथन, यश॥ ऊति आदि शब्द क्तिन् प्रत्ययान्त उदात्त निपातित हैं॥ ९७॥

व्रजयजो र्भावे क्यप्॥ ९८॥

आभ्यां स्त्रीलिङ्गे भावे क्यप् स्यात् स चोदात्तः। यथा—व्रज्या। इज्या॥

गमन। यज्ञ। व्रज तथा यज धातुसे स्त्रीलिङ्ग भावमें क्यप् प्रत्यय और वह उदात्त हो ९८

संज्ञायांसमजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः॥ ९९॥

संज्ञायां विषये समजादिभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां भावादौ क्यप् स्यादसावुदात्तः। यथा—समजन्त्यस्यामिति- समज्या- सभा। निषीदन्त्यस्यामिति निषद्या-आपणः। निपतन्त्यस्यामिति-निपत्या-पिच्छिला भूः। मन्यतेऽनयेति मन्या-गलपार्श्व शिरा। विदन्त्यनयेति-विद्या। सुत्या-अभिषवः। शय्या। भृत्या। ईयतेऽनया-इत्या-शिबिका डोली इत्यर्थः॥

संज्ञाविषय में सम् पूर्वक जन आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव आदि में क्यप् प्रत्यय हो और वह उदात्त समझाजावे॥ ९९॥

कृञः श च॥ १००॥

(कृञः) इति योगविभागः। कृञः क्यप् स्यात्। श च च.त् क्तिन्। यथा—कृत्या, क्रिया, कृतिः॥

१-(६।४।२०) इत्यूठ्॥ २—(३।१।६७) इति यक्। (७।४।२८) इति रिङ्॥

कृञ् धातु से स्त्री लिङ्ग विषयक भावादि में श, क्यप् तथा क्तिन् प्रत्यय हों १००

इच्छा ॥ १०१

इषेः स्त्रियां शो यगभावश्च निपात्यते । यथा—इच्छा मदीया गमनाय वर्त्तते ॥ (परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्या-नामुपसङ्ख्यानम्) ॥ शो, यक्, च निपात्यते । यथा—परिचर्या-पूजा । परिसर्या-परिसरणम् । अत्रगुणोऽपि ॥ (मृग-अन्वेषणे) चुरादावदन्तः । अतोलोपाभावोऽपि शे यकि णि लोपः-मृगया—आखेटः । अटतेः शे यकि व्यशब्दस्य द्वित्वम्, पूर्वभागे यकार निवृत्तिर्दीर्घश्च-अटाट्या-वृथागमनम् ॥ (जागर्त्तेरकारो वा) ॥ पक्षे शः-जागरा, जागर्या-निद्राभावः ॥

इष धातु से श और यक् प्रत्यय का अभाव निपातन कियागया है ॥ १११ ॥

अः प्रत्ययात् ॥ १०२ ॥

स्त्रियां प्रत्ययान्तेभ्योधातुभ्योऽकार प्रत्ययः स्यात् । यथा—कर्त्तुमिच्छति चिकीर्षति, चिकीर्षतीति-चिकीर्षा । पुत्रीया । पुत्रकाम्या । लोलूया ॥

स्त्रीलिङ्ग में प्रत्ययान्त धातु से अ प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

गुरोश्च हलः ॥ १०३ ॥

गुरोः. च, हलः । स्त्रियां गुरुमतो हलन्तादः स्यात् । यथा—ईहा-चेष्टा । ऊहा-अध्याहारः ॥

स्त्रीलिङ्ग में हलन्त गुरुमान् धातु से अ प्रत्यय हो ॥ १०३ ॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ १०४ ॥

षि०भ्यः, अङ् । शिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ् प्रत्ययः स्यात् । (जॄष्)-ॠदृशोऽङि गुणः । यथा-जरा । त्रपुष्-त्रपा । भिदादिभ्यः । भिदा । छिदा । विदा । मेधा । लेखा । कृपेःसम्प्रसारणंच । कृपा ॥

बुढ़ापा । लज्जा । फाड़ना । काटना । बुद्धि । धारणावती बुद्धि । लेखन ॥ ष् जिसधातुका इत् गया हो और भिद् आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो ॥ १०४ ॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥ १०५ ॥

चि०चः, च । एभ्योऽङ् स्यात् । यथा- चिन्तनम्-चिन्ता । पूजा--अर्चनम् । कथा-कथनम् । कुम्बा-लोकेटट्टीति कथ्यते । चर्चा-विचारः ॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

आतश्चोपसर्गे ॥ १०६ ॥

आतः, च, उं०र्गे । उपसर्गे उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामङ् स्यात् । यथा-उपदा । उपधा । अवस्था ॥ (श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः) ॥ श्रद्धा । अन्तर्धा ॥

भेंट । छल । आयु ॥ उपसर्ग उपपद होतो आकारान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

ण्यासश्रन्थोयुच् ॥ १०७ ॥

ण्या०थः, युच् । ण्यन्तेभ्यो धातुभ्य आस श्रन्थ इत्येताभ्यां च स्त्रियां युच् स्यात् । यथा-कारणा । हारणा । आसना । श्रन्थना ॥ (घट्टिवन्दि विदिभ्यश्चेतिवाच्यम्) ॥ घट्टना ॥ वन्दना । वेदना ॥ (इषेरनिच्छार्थस्य) ॥ अन्वेषणा । अध्येषणा--प्रार्थना ॥ (परेर्वा) ॥ पर्येषणा । परीष्टिः--अन्वेषणा ॥

करानां । चुराना । उपवेशन । ग्रन्थन, गुथना ॥ णिजन्त, आस तथा श्रन्थ धातु से स्त्रीलिङ्ग में युच् प्रत्यय हो ॥ १०७ ॥

रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥ १०८ ॥

रोगाख्यायां गम्यमानायां धातोर्बहुलं ण्वुल् स्यात् । यथा- प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । क्वचिन्न--शिरोऽर्त्तिः ॥ (धात्वर्थे निर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः) ॥ आशिका । शायिका ॥ (इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे) ॥ पचिः । पचतिः । पठिः । पठतिः ॥ (वर्णात् कारः) ॥ निर्देश इति प्रकृतम् । अकारः । ककारः । हकारः ॥ (रादिफः) ॥ रेफः ॥ (मत्वर्थाच्छः) ॥ मत्वर्थीयः ॥ (इणजादिभ्यः) ॥ आजिः । आतिः ॥ (इञ्वपादिभ्यः) ॥ वापिः । वासिः । स्वरभेदः ॥ (इक्कृष्यादिभ्यः) ॥ कृषिः । गिरिः ॥

रोगाख्या गम्यमान होतो स्त्री। लिङ्ग में बहुलकरके धातुसे ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १०८ ॥

संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥

सञ्ज्ञायां विषये धातोर्ण्वुल् स्यात् । यथा--उद्दालकपुष्पभञ्जिका ॥

स्त्रीलिङ्ग वाच्य होतो संज्ञाविषय में धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १०९ ॥

विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ११०

वि०षा, आ०योः, इञ्, च । परिप्रश्ने आख्याने च गम्ये धातोरिञ्वा स्याच्चान् ण्वुल् । यथा--कां त्वं कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं वाऽकार्षीः--सर्वां कारिं, कारिकां, क्रियां, कृत्यां, कृतिं वाऽकार्षम् । एवं गणिं, गणिका, गणनाम्, पाचिं, पाचिकां, पचां पक्तिम् ॥

तूने कौन कामकिया-मैंने सबकाम करलिया ॥ परिप्रश्न (पूछना) आख्यान

(कथन) अर्थात् उसका उत्तर देना होतो स्त्रीलिङ्ग में धातु से इञ् तथा ण्वुल् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ ११० ॥

पर्य्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥ १११ ॥

पर्यायः-परिपाटी क्रमः। अर्हणम्-अर्हः, योग्यता। पर्यायादिषु द्योत्येषु ण्वुच् स्यात्। यथा-भवतः आसिका, शायिका, अग्रगामिका। भवानिक्षुभक्षिकामर्हति। ऋणे-इक्षुभक्षिकां मे धारयति। उत्पत्तौ-इक्षुभक्षिका उपपादि ॥

आपके बैठने की, सोने की, आगे चलने की पारी। आप गन्ना खासक्ते हैं। आपने मेरे गन्ने खाये हैं। मेरे लिये गन्ने पैदा किये ॥ पर्याय, अर्ह, ऋण तथा जन्म अर्थ में स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो तो धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

आक्रोशे नञ्यनिः ॥ ११२ ॥

आँ० शे, नञि, अनिः। आक्रोशे गम्ये नञि उपपदे अनिः स्यात्। यथा-अजीविनिस्ते शठ ! भूयात् ॥

हे मूर्ख ! तू मरजा ॥ आक्रोश (कोशना) गम्यमान हो तथा नञ् उपपद हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से अनि प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ ११३ ॥

कृ० टः, बँ० म्। भावेऽकर्त्तरि च कारके संज्ञायामिति च सर्वं निवृत्तम्। कृत्यसंज्ञका ल्युट् च बहुलमर्थेषु स्युः यथा-दानीयो विप्रः। राज्ञा भुज्यन्ते-राजभोजनाः शालयः। प्रस्कन्दनम्। प्रपतनम् ॥

देनेयोग्य ब्राह्मण। राजाओं के खाने योग्य धान। कूदना। गिरना ॥ कृत्य संज्ञक और ल्युट् प्रत्यय कारकों में बहुलता से हों ॥ ११३ ॥

नपुंसके भावे क्तः ॥ ११४ ॥

नपुंसकलिङ्गे भावे धातोः क्तः स्यात् । यथा—हसितम् । जल्पितम् । शयितम् । भुक्तम् ॥

हसा । कहा । सोया । खाया ॥ नपुंसक लिङ्ग विषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो

ल्युट्[१] च[अ] ॥ ११५ ॥

नपुंसकलिङ्गे भावे धातो ल्युट् स्यात् । यथा—हसनं पठने न कदापि वरम् । शयनं दिवसे बहुहानिकरम् ॥

पढ़ने में हसना कभी भी अच्छा नहीं । दिन में सोना बहुत ही हानि करने वाला है ॥ भाव में नपुंसकलिङ्गवाच्य हो तो धातु से ल्युट् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

कर्मणि[७] च[अ] येन[२] संस्पर्शात्[५] कर्त्तुः[६] शरीर सुखम्[१] ॥ ११६ ॥

येन स्पृश्यमानस्य कर्त्तुः शरीरसुख मुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदे धातो नपुंसकलिङ्गे भावे ल्युट् स्यात् । नित्यसमासार्थमिदं वचनम् । यथा—पयः पानं सुखं पूर्णम् ॥

दूध का पीना पूरा सुख है ॥ जिस कर्म के सम्पर्क से कर्त्ता के शरीर को सुख हो उसके उपपद होनेपर भाव में नपुंसकवाच्य हो तो धातु से ल्युट् प्रत्ययहो ११६

करणाधिकरणयोश्च ॥ ११७ ॥

क० योः, च[अ] । करणेऽधिकरणे च कारके धातोर्ल्युट् स्यात् । यथा-- इध्मप्रव्रश्चनः । अधिकरणे । गोदोहनी ॥

कुल्हाड़ी । बटलोई ॥ करण और अधिकरण कारक में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो । (३ । ३ । १२६) यहांतक करण तथा अधिकरण का अधिकारहै ११७॥

पुंसिसंज्ञायाँ घः प्रायेण ॥ ११८ ॥

पुल्लिङ्गयोः करणाधिकरणयोरभिधेययोर्धातोर्घः स्यात् समुदायेन चेत् संज्ञाऽभिधेया भवेत् । यथा--उरश्छदः । अधिकरणे । आकरः ॥

कवच । खान ॥ संज्ञा अभिधेय हो तो पुल्लिङ्ग विषयक करण तथा अधिकरण में धातु से प्रायः घ प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

गोचर संचर वह व्रज व्यजा पण-निगमाश्च ॥ ११९ ॥

गो०मां, च । गोचरादयः शब्दाघान्ता निपात्यन्ते । यथा--गावश्चरन्त्यस्मिन्निति--गोचरः--देशः । संचरन्तेऽनेनेति--संचर- मार्गः । वहन्त्यनेनेति--वहः--स्कन्धः । व्रजः- पन्थाः । व्यजः--व्यजनम् । आपणः--पण्यस्थानम् । निगच्छन्त्यनेन--निगमश्छन्दः । चात् कषः ॥ निकषः ॥

संज्ञागम्यमान होतो पुंलिङ्ग विषयक करण तथा अधिकरण कारक में घ प्रत्ययान्त गोचरादि शब्द निपातन किये हैं ॥ ११९ ॥

अवेतृस्त्रोर्घञ् ॥ १२० ॥

अवे, तॄस्त्रोः, घञ् । अव उपपदे करणाधिकरणयोः सञ्ज्ञायां गम्यमानायां तरते स्तृणातेश्च धातो घञ् स्यात् । यथा--अवतारः--नद्यादेः । अवस्तारः--जवनिका । कनात इतिप्रसिद्धम् ॥

अव उपपद होतो करण और अधिकरण में संज्ञावाच्य होने पर तॄ तथा स्तॄञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

हलश्च ॥ १२१ ॥

हलः, च । हलन्ताद् धातोः करणाधिकरणयोर्घञ् स्यात्। यथा--विदन्ति-जानन्ति, विद्यन्ते-भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते -लभन्ते, विन्दते -विचारयन्ति सर्वाविद्या येन यस्मिन् वा इति-वेदः । आरमन्त्यस्मिन्निति आरामः।रमन्ते योगिनो यस्मान्नाति—रामः । दाशरथिर्न ॥

संज्ञावाच्य हो तो हलन्त धातु से पुंल्लिङ्ग विषयक करण तथा अधिकरण में घञ् प्रत्ययहो ॥ १२१ ॥

अध्यायन्यायोद्याव संहाराश्च॥१२२॥

अ० रः, च । इमे घञन्ता निपात्यन्ते।यथा—अधीयतेऽस्मिन्निति-अध्यायः । नीयतेऽनेनेति—न्यायः । उद्युवन्ति, संहरन्ति-अनेनेति उद्यावः । संह्रियन्तेऽनेनेति-संहारः—प्रलयः ॥

अध्याय आदि शब्द घञ् प्रत्ययान्त निपातन कियेगये हैं ॥ १२२ ॥

उदङ्कोऽनुदके॥१२३॥

उ० कः, अ० के।अनुदके उदङ्क इति निपात्यते । यथा-घृतोदङ्कः॥

घी का कुप्पा ॥ उदक (जल) भिन्नसंज्ञा विषय में उदङ्क यह निपातन किया गया है ॥ १२३ ॥

जालमानायः ॥ १२४ ॥

जालम्, आ० यः । आनाय इति निपात्यते जालं चेत् स्यात् । यथा—आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेति-आनायः जालम् ॥

जाल अभिधेय हो तो आनाय यह निपातित है ॥ १२४ ॥

खनो घ च ॥ १२५ ॥

खनः, घः, च । करणाधिकरणयोः खनतेर्घघञौ स्याताम् । यथा—आखनः, आखानः—कोलः, मूषको वा । (खनेर्डडरेकेकवकावाच्यः) ॥ यथा—आखः, आखरः, आखनिकः, आखनिकवकः । इमे खनित्र वचनाः ॥

करण तथा अधिकरण कारक में घ, और घञ् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥ १२६ ॥

ईषद्, दुस्, सु इत्येतेषूपपदेषु दुःख सुखार्थेषु धातोः खल् स्यात् । कृच्छ्रे । यथा—दुष्करो भवता क्रियते कटः । अकृच्छ्रे । ईषत्करः, सुकरः ॥ (निमिमीलियां खल चोरात्त्वं नेतिवाच्यम्) ॥ ईषन्निमयः । दुष्प्रमयः । सुविलयः । निमयः । मयः । लयः ॥

कृच्छ्र (दुःख) तथा अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में वर्त्तमान जो ईषत्, दुर् तथा सु उपपद हों तो धातु से खल् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

कर्त्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥ १२७ ॥

क० णोः, च, भू० ञोः । कर्तृकर्मणोरीषदादिषु चोपपदेषु भूकृञोः खल् स्यात् । यथासङ्ख्यं नेष्यते । कर्त्तृकर्मणी च धातोरव्यवधानेन प्रयोज्ये । ईषदादयस्तु ततः प्राक् ॥ (कर्त्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वाच्यम्) ॥ खित्त्वान्मुम् । यथा—अनाढ्येनाढ्येन दुःखेन भूयते इति—दुराढ्यम्भवम्, ईषदाढ्यम्भवम्, स्वाढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यङ्करः, दुराढ्यङ्करः, स्वाढ्यङ्करः ॥

कर्त्ता तथा कर्म में ईषद् आदि उपपद हों तो भू तथा डुकृञ् धातु से खल् प्रत्यय हो १२७

आतो युच् ॥ १२८ ॥

आतः, युच् । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषदादिषूपपदेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् स्यात् । यथा–ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः॥ (भाषायां शासि युधि दृशि धृषि मृषिभ्यो युज्वाच्यः)॥ दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः । दुर्मर्षणः ॥

कृच्छ्र तथा अकृच्छ्र अर्थ में ईषदादि उपपद हों तो आकारान्त धातुओं से युच् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥१२९॥

ईषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि युच् स्यात् । यथा–सूपसदनोऽग्निः ॥

सम्यक् खानेवाला अग्नि ॥ ईषदादि उपपद हों तो गत्यर्थक धातुओं के छन्दो विषय में युच् प्रत्यय हो ॥ १२९ ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ १३० ॥

अ० भ्यः, अपि, दृश्यते । छन्दसि विषये गत्यर्थेभ्योऽप्यन्येभ्यो धातुभ्यो युच् दृश्यते । यथा–सुदोहना ॥

सम्यक् प्राप्त करना ॥ छन्दो विषय में गत्यर्थ धातुओं के भिन्न से भी युच् प्रत्यय दीखता है ॥ १३० ॥

वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद् वा ॥१३१॥

समीपमेव–सामीप्यम् । स्वार्थेष्यञ् । वर्त्तमानेलडित्यारभ्य उणादयो बहुलमिति यावद्–येनोपाधिना ये प्रत्यया विहितास्ते तथैव वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति–च वा स्युः । यथा–कदा आगतवन्तो

भवन्तः-अयमागच्छामि, अयमागमम्। कदा गमिष्यसि-एष गच्छामि, गमिष्यामि वा ॥

आप कब आये हैं-अभी आया हुआ हूं । तू कब आवेगा-अभी आता हूँ ॥ वर्त्तमान समीपीय भूत तथा भविष्यत् काल में वर्त्तमान धातु से विकल्प करके वर्त्तमान वत् प्रत्यय हों ॥ १३१ ॥

आशंसायां भूतवच्च ॥ १३२ ॥

आ०मँ, भू०त्, च । आशंसायां भविष्यति काले भूतवद्वर्त्तमानवच्च वा प्रत्ययाः स्युः । यथा-मेघश्चेदवर्षीत्, वर्षति, वर्षिष्यति वा-धान्यमवाप्स्म वपामः, वप्स्यामो वा । सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः । तेन लङ्लिटौ नो ॥

यदि मेघ वर्षेगा तो धान बोयेंगे ॥ आशंसा (प्रियार्थ प्राप्तीच्छा) वचन उपपद होतो धातु से भविष्यत् काल में विकल्पसे भूत तथा वर्त्तमान वत् प्रत्यय हों १३२

क्षिप्रवचने लृट् ॥ १३३ ॥

क्षिप्रपर्य्याये उपपदे आशंसायां गम्यमानायां धातोर्लृट् स्यात् । यथा-वृष्टिश्चेत् क्षिप्रमाशु त्वरितंचपलं वा, यास्यति-शीघ्रं वप्स्यामः । नेति वक्तव्ये लृड्ग्रहणं लुटोऽपि विषये यथा स्यात् । श्वःक्षिप्रमध्येष्यामहे ॥

यदि वर्षा शीघ्रहोगी तो जल्दी बोयेंगे ॥ क्षिप्र बचन उपपद होतो आशंसा गम्यमान होने पर धातुसे लृट्प्रत्यय हो ॥ १३३ ॥

आशंसावचने लिङ् ॥ १३४ ॥

आशंसावाचिनि उपपदे भविष्यति काले लिङ्स्यात् । यथा-गुरुश्चेदुपेयादाशंसे-अधीयीय । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

यदि गुरुजी आवेंगे तो मैं पढ़ूंगा ॥ आशंसा वाची उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १३४ ॥

नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥ १३५ ॥

न, अ०त्, क्रि०योः । क्रियायाः—सातत्ये सामीप्ये च गम्ये लङ्लुटौ न स्याताम् । यथा—यावज्जीवं भृश मन्न मदात् । यावज्जीवं भृश मध्यापयिष्यति । सामीप्ये—येयं पौर्णमास्यागामिनी तस्या मग्नीना धास्यते, सोमेन यक्ष्यते ॥

जबतक जिया निरंतर अन्न दान किया । जबतक जियेगा लगातार पढ़ायेगा । जो यह पूर्णिमा आती है उसमें अग्निसे धारण तथा सोमसे यजन करेगा ॥ क्रियाके प्रबन्ध तथा सामीप्य में अनद्यतन वत् प्रत्यय न हों । अर्थात् भूत अनद्यतन में लङ् तथा भविष्यत् अनद्यतन में लुट् विहित है वह न हो ॥ १३५ ॥

भविष्यति मर्य्यादावचनेऽवरस्मिन् १३६

भविष्यति काले मर्यादोक्ताववरस्मिन् प्रभिभागेऽनद्यतन वत् प्रत्यय विधानं न स्यात् । यथा—आलवपुराद्यो मार्गो गन्तव्यस्तस्य यदवर मिन्द्रप्रस्थस्य तत्र स्थास्यामः ॥

लाहौर तक जोमार्ग तय करना है उसका उरला जो देहली का मार्ग है वहां ठहरेंगे ॥ भविष्यत् काल में मर्यादा वचन का अवर विभाग कहना होतो धातु से अनद्यतन वत् प्रत्यय न हो ॥ १३६ ॥

कालविभागेचानहोरात्राणाम् ॥ १३७ ॥

कालमर्यादा विभागे सत्यवरस्मिन् विभागे भविष्यति कालेऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधानं न स्यात् । अहोरात्र सम्बधिनी विभागे प्रतिषेधार्थ मिदम् । यथा योऽयमब्दः-आगामी तस्ययदवर माग्रहायण्याः-तत्र युक्ता अध्येष्यामहे ॥

जो यह साल आने वाला है उसके अगहनका पूर्णिमा का जो उरला विभाग है उसमें हम संलग्न हो कर पढ़ेंगे ॥ समयकी मर्यादा के विभागमें उरले विभागकी अपेक्षा होतो भविष्यत् कालमें अनद्यतन प्रत्यय नहो जोकि वह मर्यादा विभाग अहोरात्र सम्बन्धी न होतो ॥ १३७॥

परस्मिन् विभाषा ॥ १३८ ॥

काल मर्य्यादा विभागेसति भविष्यति काले परस्मिन् प्रविभागे वाऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधानं न स्यात् । न चेहो रात्रसम्बन्धी प्रविभागः । यथा-योऽयं संवत्सरः आगामी तस्य यत् परमाग्रहायण्याः तत्राध्येष्यामहे, अध्येतास्तहे वा ॥

जोकि यह वर्ष आने वाला है उसके अगहन की पौर्णमासी का जो परभाग है उसमें पढ़ेंगे ॥ समयकी मर्यादा के विभाग में परभाग की अपेक्षा हो तो विकल्प करके अनद्यतनवत् प्रत्यय न हों, जोकि वह मर्यादा वचन अहोरात्र सम्बन्धी विभाग में न हो तो ॥ १३८ ॥

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ १३९

हेतु हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । यथा-देवदत्तश्चेपठिष्यत् तदा पण्डितोऽभविष्यत् ॥

यदि देवदत्त पढ़ेगा तो पाण्डित होगा ॥ लिङ्निमित्त भविष्य काल में क्रियातिपत्ति हो तो धातु से लृङ्लकार ॥ १३९ ॥

भूते च ॥ १४० ॥

हेतु हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भूतेऽर्थे लृङ् स्यात्, क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । यथा-दृष्टो-मयका स भिक्षु र्भोजनार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्चैको विट् परिव्राजार्थी यदि तेनासौदृष्टोऽभविष्यत् ततोऽभोक्ष्यत् ॥

भोजनार्थी घूमताहुआ मैंने वह एक संन्यासी देखा था और एक वैश्य संन्यासी के अन्वेषण में था यदि उसने उसे देखा होगा तो भोजन किया होगा ॥ लिङ्-निमित्त में क्रियातिपत्ति हो तो भूतकाल में भी लृङ् प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

वोताप्योः ॥ १४१ ॥

वा, आ, उताप्योः । उताप्योरित्यतः (३ । ३ । ५२) प्राग् भूतेलिङ् निमित्ते लृङ् वेत्यधि क्रियते ॥

यहां से लेकर उताप्योः सपर्थयो लिङ् इस सूत्र पर्यन्त जो विधान किया है इस में लिङ् के निमित्त क्रियातिपत्ति हो तो लृङ् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १४१॥

गर्हायां लडपिजात्वोः ॥ १४२ ॥

ग० मँ, लट्. अं० त्वोः । गर्हायां गम्यमानायामपिजात्वो रुपपदयो र्धातो र्लट् स्यात्, कालत्रये । यथा—अपि भार्यां त्यजसि जातुवेश्या माधत्से, गर्हित मिदं कृत्यम् ॥

पत्नी को छोड़कर गणिका को धारण करता है, यह निन्दनीय कार्य है ॥ कुत्सा अर्थ में अपि तथा जातु उपपद हों तो धातु से लट् प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

विभाषा कथंमि लिङ् च ॥ १४३ ॥

गर्हायां गम्यमानायां कथं शब्द उपपदे धातो र्वा लिङ् स्याच्चाल्लट् कालत्रये । यथा—कथं धर्मं त्यजेः,त्यजसि वा । पक्षे कालत्रये लकाराः । अत्र भविष्यति नित्यं लृङ् भूते वा । कथं नाम तत्रभवान् धर्म मत्यच्यत ॥

आपने क्यों धर्म छोड़ा, छोड़ते हो, छोड़ोगे ॥ कथं शब्द उपपद हो तो गर्हा गम्यमान होनेपर धातु से विकल्प करके लिङ् तथा लट् प्रत्यय हों ॥ १४३ ॥

किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥ १४४ ॥

किंवृत्त उपपदे गर्हायां गम्यमानायां धातो र्लिङ् लृटौ स्याताम्। यथा—कः, कतरः, कतमो वा वेदं निन्देत्, निन्दिष्यति वा ॥

कौन वेद की निन्दा करे, करेगा ॥ किं शब्द का प्रयोग उपपद होनेपर गर्हा गम्यमान हो तो धातु से लिङ् तथा लृट् प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि १४५

अं० योः, अं० त्ते, अपि। किंवृत्तेऽकिंवृत्ते चोपपदेऽनवक्लृप्त्यमर्षयोर्धातोर्लिङ् लृटौ स्याताम्। गर्हायामिति निवृत्तम्। अनवक्लृप्तिः—असंभावना। अमर्षः—क्रोधः। यथा—नासम्भावयामि, नोमर्षयेवा भवन्तो वेदान् निन्देयुः, निन्दिष्यन्ति वा। कः, कतरः, कतमो वा वेदान् निन्देत्, निन्दिष्यति—वा। लृङ् प्राग्वत् ॥

किं शब्दका प्रयोग हो अथवा न हो तो अनवक्लृप्ति (ग़ैरमुमकिन) तथा अमर्ष अर्थ में धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो ॥ १४५ ॥

किङ्किलास्त्यर्थेषु लृट् ॥ १४६ ॥

किङ्किलास्त्यर्थेषूपपदेषु अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गर्हागम्यमानायां धातो र्लृट् स्यात्। किङ्किलेति—समुदायः क्रोध द्योतकमुपपदम्। अस्त्यर्थाः, अस्ति, भवति, विद्यतयः। यथा—न श्रद्दधे, न मर्षये वा, किङ् किल त्वं गुरुं निन्दिष्यसि। अस्ति, भवति, विद्यते वा वेष्यां यास्यसि ॥

न मैं स्वीकार करता हूँ और न मैं कुपित होता हूँ कि तू गुरुकी निन्दा करेगा। उपस्थित (स्त्री) होनेपर भी दुष्ट वेश्यागमन करेगा ॥ किङ्किल और अस्त्यर्थ धातु उपपद हो तो अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

जातुयदोर्लिङ् ॥ १४७ ॥

जाँ० दो:, लिङ् । जातु यद् इत्येतयोरुपपदयोरनव क्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोर्धातोर्लिङ् स्यात् । यथा–जातु, यद् वा त्वादृशो गुरुं निन्देन्नावकल्पयामि, नोमर्षयामि । लृङ् प्राग्वत् ॥ (यदायद्योरुपसङ्ख्यानम्) ॥ यदा, यदि भवद्विधः सत्यं निन्देन्नावकल्पयामि नमर्षयामि ॥

मैं कभी नहीं मानता कि तुझ सरीखा गुरुकी कभी निन्दा करे ॥ जातु तथा यद् उपपद हों तो अनव क्लृप्ति और अमर्ष गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

यच्चयत्रयोः ॥ १४८ ॥

यच्चयत्र इत्येतयोरुपदयोरनव क्लृप्त्यमर्षयोर्गमम्यमानयो र्धातो लिङ् स्यात् । यथा–यच्च, यत्र वा त्वमेवं कुर्या न श्रद्दधे, नोमर्षयामि ॥

मैं विश्वास नहीं करता जो कि तू ऐसा कार्य करे ॥ यच्च और यत्र उपपद हों तो अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष के गम्यमान होनेपर धातु से लिङ्प्रत्यय हो १४८

गर्हायां चँ ॥ १४९ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम् । यच्चयत्रयो र्योगे गर्हायां गम्यमानायां लिङेव स्यात् । यथा–यच्च, यत्र वा, त्वंमद्यं पिबेः-अहो अन्याय्यमेतत् ॥

यह निन्दनीय वार्त्ता है कि तू शराब पिये ॥ यच्च तथा यत्र उपपद हों तो निन्दा गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १४९ ॥

चित्रीकरणे चँ ॥ १५० ॥

चित्रीकरणमाश्चर्यमद्भुतं विस्मयनीयम् । यच्च यत्रयो रुपपदयो-

श्चित्रीकरणे गम्यमाने धातोर्लिङ् स्यात् । यथा-यच्च, यत्र वा भवान् ब्रह्मचारी भूत्वा चौर्य्यं कुर्यात्-आश्चर्यमेतद् वर्वर्त्ति भगवन्! ॥

आश्चर्य की वार्त्ता है कि आप ब्रह्मचारी होकर चोरी करें॥ यच्च तथा यत्र उपपद हों तो चित्रीकरण गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५० ॥

शेषे लृडयदौ ॥ १५१ ॥

शेषे, लृङ्, अयँदौ । यच्च यत्राभ्यां विनाऽन्यस्मिन्नुपपदे चित्रीकरणे गम्ये धातोर्लृट् स्यात् । यथा-आश्चर्यमन्धो नाम मां द्रक्ष्यति॥

विस्मय है कि अन्धा मुझे देखेगा ॥ यदि शब्दका प्रयोग न हो तो यच्च और यत्र से भिन्न इतर उपपद होनेपर चित्रीकरण के गम्यमान में धातु से लृट्प्रत्यय हो॥

उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥ १५२ ॥

उँ० प्योः, सँ० योः, लिङ् । उत अपि इत्येतयोस्समर्थयो र्धातो-र्लिङ् स्यात् । यथा-उताधीयीत, अप्यधीयीत ॥

जी हाँ यह पढ़े॥ एकार्थक उत तथा अपि उपपद हों तो धातु से लिङ् प्रत्यय हो॥ यहां से लेकर भूतकाल में भी क्रियातिपत्ति होनेपर लृङ् लकार हो ॥ १५२ ॥

कामप्रवेदनेऽकच्चिति ॥ १५३ ॥

स्वाभिप्रायाविष्करणे गम्यमाने लिङ् स्यात् न तु कच्चिति । यथा-कामो मे भुञ्जीत भवान् ॥

मैं चाहता हूं कि आप भोजन करें ॥ कच्चित् भिन्न उपपद हो तो इच्छा का प्रकाश गम्यमान होनेपर धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५३ ॥

सम्भावनेऽलमितिचेत् सिद्धाऽप्रयोगे १५४

सँ० ने, अलम्, इति, चेत्, सिँ० गे । सम्भावनेऽर्थे लिङ् स्या-

त्तचेत् सम्भावनमलमिति सिद्धाप्रयोगे सति । यथा-अपि पर्वतं भवान् शिरसा भिन्द्यात् ॥

आप पहाड़को शिरसे तोड़ें ॥ जो सिद्ध अलम् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो अलमर्थ सम्भावन में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५४॥

विभाषा धातौसम्भावनवचनेऽयदि १५५

सम्भावनवचने धतावुपपदे यच्छब्दवर्जिते धातो र्वा लिङ् स्यात् । यथा-सम्भावयामि भुञ्जीत, भोक्ष्यते वा-भवान् ॥

मुमकिनकिन है कि आप खायें गे ॥ यद् शब्द वर्जित अलमर्थ सम्भावन अर्थ का कहनेवाला धातु उपपद हो तो धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो जो सिद्ध अलं शब्द का प्रयोग न हो तो ॥ १५५ ॥

हेतेहेतुमतोर्लिङ् ॥ १५६ ॥

हे० तोः, लिङ् । हेतुः कारणम् । हेतुमत् फलम् । हेतुभूते हेतुमति चार्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् वा स्यात् । यथा-धर्म्म कुर्याच्चेत सुखं यायात्, धर्मं करिष्यति चेत् सुखं यास्यति ॥

यदि धर्म्म करेगा तो सुख मिलेगा ॥ हेतु तथा हेतुमान् अर्थ में विकल्प से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५६ ॥

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ १५७ ॥

इच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ्लोटौ स्याताम् । यथा-इच्छामि पठेः, पठ वा । एवमेव कामये, प्रार्थये ॥

मैं चाहता हूं कि तू पढ़े ॥ इच्छार्थक धातु उपपद हों तो धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय हों ॥ १५७ ॥

समानकर्तृकेषुतुमुन् ॥ १५८ ॥

इच्छार्थेषु धातुषु समान कर्त्तृकेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात् । यथा-- इच्छामि भोक्तुम् । एवमेव कामये, वष्टि, वाञ्छामि ॥

भोजन (को) करना चाहताहूं ॥ समान (एक) कर्त्तृक इच्छार्थक धातु उपपद होतो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ॥ १५८ ॥

लिङ् च ॥ १५९ ॥

समानकर्त्तृकेषु इच्छार्थेषूपपदेषु धातुषु लिङ् स्यात् यथा -अधीयीयेतीच्छति ॥

मैं पढ़ूं वह चाहता है ॥ समान कर्त्तृक इच्छार्थक धातु उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १५९ ॥

इच्छार्थेभ्योविभाषा वर्त्तमाने ॥ १६० ॥

इ० भ्यः, विभा० षा, व० ने इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो वर्त्तमाने काले वा लिङ् पक्षेलट् । यथा--इच्छेत्, इच्छति । कामयेत, कामयते ॥

चाहता है ॥ इच्छार्थक धातुओं से वर्त्तमानकाल में धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो ॥ १६० ॥

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् ॥ १६१ ॥

विधिः--प्रेरणम् । निमन्त्रणम्--नियोगकरणम् । आमन्त्रणम्--कामचारणम् । अधीष्टः--सत्कारपूर्वकोव्यापारः । सम्प्रश्नः--सम्प्रधारणम् । प्रार्थनम्--याच्ञा । विध्याद्यर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात् । यथा--विधौ--भोजनं कुर्यात् पठनाय चायं गच्छेत् । निमन्त्रणे--भवानिह भुञ्जीत । आमन्त्रणे--इहासीत महामुने! । अधीष्टे--पुत्रमध्यापयेद्

भवान् । सम्प्रश्ने--किं भो व्याकरणमधीयीय, उतन्यायम् । प्रार्थने--भवति मे प्रार्थनं वेदमधीयीय ॥

यह भोजन करे और पढने के लिये जावे । इससमय आप भोजन करें । महात्माजी ! इहां बैठिये । आप लड़के को पढ़ावें । क्योंजी मैं व्याकरण पढ़ूं या न्याय । आप से मेरी प्रार्थना है कि मैं वेदपढ़ूं ॥ विधि आदि ६ अर्थो में धातु से लिङ् प्रत्यय हों ॥ १६१ ॥

लोट् च ॥ १६२ ॥

विध्याद्यर्थेषु लोडपि स्यात् । यथा--विधौ-ग्रामंगच्छ न स्वगृहम् । इ-इतरत् पूर्वसूत्रवत् ॥

गांव को जा अपने घर को न जा ॥ पूर्वोक्तविधि आदि छह अर्थों में धातु से लोट् प्रत्यय भी हो ॥१६२ ॥

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषुकृत्याश्च १६३

प्रै०षुँ, कृत्याः, च । प्रैषः--विधिः । अतिसर्गः--कामचारानुज्ञा । पैषादिष्वर्थेषु धातोः कृत्यसञ्ज्ञकाः प्रत्ययाः स्युश्चाल्लोट् । यथा--भवताखलु यष्टव्यम्, यजतां च भवानिह । एवं त्वया हिकरणीयं कर्त्तव्यं खलु च कार्य्यम् ॥

आप यज्ञ करें ॥ प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल इन अर्थो में धातु से कृत्य संज्ञक प्रत्यय तथा लोट्लकार भीहो ॥ १६३ ॥

लिङ्चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥ १६४ ॥

लिङ्, च,ऊं०के । प्रैषादिषु गम्यमानेषु ऊर्ध्वमौहूर्तिकेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लिङ् चात् यथा प्राप्तं च प्रत्ययाः स्युः । यथा--मुहूर्त्तादूर्ध्वम--यजेत, यजताम्, यष्टव्यम् ॥

दोघड़ी बाद यज्ञ करना चाहिये ॥ प्रैषादि अर्थ गम्यमान होते ऊर्ध्वमौहूर्त्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लिङ् और यथा प्राप्त प्रत्यय हों ॥ १६४ ॥

स्मे लोट् ॥ १६५ ॥

स्मशब्द उपपदे प्रैषादिषु गम्यमानेषूर्ध्वं मौहूर्त्तिकेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लोट् स्यात् । यथा--ऊर्ध्वमौहूर्त्ताद्यजतां स्म ॥

वह दोघड़ी के पश्चात् यजन करे ॥ स्मशब्द उपपद होतो प्रैषादि अर्थ के गम्यमान होनेपर ऊर्ध्वमौहूर्त्तिक अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो ॥ १६५ ॥

अधीष्टे च ॥ १६६ ॥

स्मशब्द उपपदेऽधीष्टे गम्ये धातोर्लोट् स्यात् । यथा--भवान्स्म अध्यापयतु ॥

आप पढ़ाइये ॥ स्मशब्द उपपद होतो अधीष्ट अर्थ के गम्यमान होनेपर धातु से लोट् प्रत्यय हो ॥ १६६ ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ १६७ ॥

कालादिषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात् । यथा--कालो भोक्तुम् । समयो गन्तुम् । वेला पठितुम् ॥

भोजन का समय । जाने का समय । पढ़ने का समय ॥ कालसमय तथा वेला उपपद होतो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो ॥ १६७ ॥

लिङ् यदि ॥ १६८ ॥

यच्छब्दे उपपदे कालसमयवेलासु च लिङ् स्यात् । यथा-कालः, समयः, वेला वा यत् स भुञ्जीत ॥

यदि वह खाये तो भोजन का समय है ॥ यद् शब्द सहित कालसमय तथा वेला उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो ॥ १६८ ॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ॥ १६९ ॥

अर्हे, कृ० चः, च । अर्हे कर्त्तरि वाच्ये गम्ये वा धातोः कृत्यतृचः प्रत्ययाः स्युश्चाल्लिङ् । यथा—भवता खलु कन्या वोढव्या, वाह्या, वहनीया । भवान् खलुकन्यायाः वोढा भवान् खलु कार्यां वहेत् ॥

आप इस कन्या से विवाह करें अर्थात् यह कन्या आपके योग्य है ॥ अर्ह (योग्य) कर्त्तावाच्य वा गम्यमान हो तो धातु से कृत्यसंज्ञक तृच् तथा लिङ् प्रत्यय हो ॥ १६९ ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥ १७० ॥

आ० योः, णिनिः । स्पष्टम् । यथा—अवश्यंकारी । सहस्रंदायी ॥

सर्वथा करनेवाला । सहस्र (हज़ार) का देनदार ॥ अवश्य भाव विशिष्ट तथा आधमर्ण्य विशिष्ट कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो ॥ १७० ॥

कृत्याश्च ॥ १७१ ॥

कृत्याः, च । कृत्यसंज्ञकाश्च प्रत्यया आवश्यकाधमर्ण्ययोरुपाधिभूतयोर्धातोस्स्युः । यथा—अवश्यं धर्म्मः सेव्यः । शतं देयम् ॥

धर्म अवश्य सेवन करना चाहिये । सौ (रुपये) देना चाहिये ॥ उपाधि भूत आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में धातु से कृत्यसंज्ञक प्रत्यय हों ॥ १७१ ॥

शकि लिङ् च ॥ १७२ ॥

शक्नोत्यर्थोपाधिके धात्वर्थे लिङ् चात् कृत्याश्च स्युः । यथा भवता खलु भारो वोढव्यः, वहनीयः, वाह्यः । भवान् खलु भारं वहेत् ॥

आप बोझा ले जासके हैं ॥ शक्त्यर्थोपाधिक धात्वर्थ हो तो धातु से लिङ् और कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भी हों ॥ १७२ ॥

आशिषि लिङ्लोटौ ॥ १७३ ॥

आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानाद्धातोर्लिङ् लोटौ स्यातामु । यथा–चिरञ्जीव्याः, जीव, जीवतात् वा त्वम् ॥

तू अधिक जीता रह ॥ आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् तथा लोट् प्रत्ययहों १७३

क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥ १७४ ॥

आशिषि विषये धातोः क्तिच्क्तौ प्रत्ययौ स्याताम् , संज्ञायां विषये । यथा–भवतात्–भूतिः । क्तः देवा एनं देयासुर्देवदत्तः ॥

ऐश्वर्य । देवता इसे देवें, इस नाम वाला ॥ यदि समुदाय से संज्ञा गम्यमान हो तो आशीर्वाद अर्थ में धातु से क्तिच् तथा क्त प्रत्ययहों ॥ १७४ ॥

माङि लुङ् ॥ १७५ ॥

माङ् युपपदे धातोर्लुङ् स्यात् । यथा--स माकार्षीत् ॥

वह न करे माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से लुङ् प्रत्यय हो ॥ १७५ ॥

स्मोत्तरे लङ् च॥ १७६॥

स्मशब्दोत्तरे माङ्युपपदे धातोर्लङ् स्यात । चाल्लुङ् । यथा–मास्म करोत्, मा स्म कार्षीत् ॥

मतकर ॥ स्म जिस से परे हो वह माङ् उपपद हो तो धातु से लुङ् तथा लङ् प्रत्यय हो १७६

इति तृतीयाऽध्यायस्य तृतीयःपादः ॥

अथ तृतीयाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ॥ १॥

धात्वर्थानां सम्बन्धे यस्मिन् काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि

स्युः । यथा--वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद् । भूतं लट् । सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता । सोमेन यक्ष्यमाणोयःपुत्रस्तत्कर्तृकंभवनम् ॥

रहते हुये ने आकाश से उतरते देखा । सोमयज्ञ जिसने किया है उस के पुत्र होगा ॥ सोमयाजी यह शब्द भूतकाल और भविता यह भविष्यकाल में है परन्तु यहां भूतकाल भविता के भविष्यकाल का सम्बन्ध पाकर सिद्धहोता है । धात्वर्थ सम्बन्ध में अयथाकालोक्त भी प्रत्यय हों ॥ १ ॥

क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥ २ ॥

क्रि० रे, लोट्, लोटः, हिस्वौ, वा, च, तध्वमोः । पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातो र्लोट् स्यात्तस्य च हिस्वौ स्याताम् । तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदं संज्ञौ भवेतां तिङ्सञ्ज्ञौ च । तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा स्याताम् । पुरुषैकवचन संज्ञे तु नानयोरतिदिश्येते । हिस्व विधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुष वचन विषये परस्मै पदिभ्यो हिः कर्त्तरि । आत्मनेपदिभ्यः स्वोभावकर्म कर्त्तृषु ॥

क्रिया के समभिहार (वार२ होना) अर्थ में वर्त्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो और लोट् को परस्मै पद के विषय में हि तथा आत्मने पद में स्व आदेश हो परन्तु त, ध्वम् को हि और स्व आदेश विकल्प से हो ॥ २ ॥

समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥ ३ ॥

अनेक क्रिया समुच्चये द्योत्ये प्रागुक्तं वा स्यात् ॥ यथा - भ्राष्ट्रमट, कूपमट, मृत्युमटे इत्येवायमटाति । एवमेव सर्वत्र ॥

भाड़ में जा, कुये में पड़, मरजा ॥ अनेक क्रियाओं के अध्याहार में धातु से विकल्प करके लोट् हो और उस लोट्के स्थानमें पूर्वोक्त हि और स्व आदेश हो॥३॥

यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥४॥

य॰ धि, अ॰ गं॰, पूँ॰ न् । पूर्वस्मिन् लोड् विधाने यथा विध्यनु प्रयोगः स्यात् । यथा—लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनातीति छिनत्तीति न प्रयुज्यते । अधीष्वाधीष्वेत्येवायमधीते । पठतीति न प्रयुज्यते ॥

पूर्वोक्त लोट् विधान में यथाविधि अनुप्रयोगहो अर्थात् जिस धातु से लोट् विहित हो उसी धातु का सङ्ख्या काल और पुरुष के नियम से पीछे प्रयोगहो॥४॥

समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥ ५ ॥

लोड्विधौ समुच्चये सामान्यार्थस्य धातोरनुप्रयोगः स्यात् । अनुप्रयोगाद्यथायथं लडादयस्तिबादयश्च । ततः सङ्ख्याकालयोः पुरुष विशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः । यथा—ओदनं भुङ्क्ष्व, क्षीरं पिब, मोदकान् खादेत्येवायमभ्यवहरति ॥

भात, दूध, लड्डू खा । समुच्चय अर्थ में लोट् विधान हो तो सामान्य अर्थ कहनेवाले धातुओं का अनुप्रयोग हो ॥ ५ ॥

छन्दसि लुङ् लङ् लिटः ॥ ६ ॥

छन्दसि धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वेषु कालेषु लुङ्लङ्लिटो वा स्युः । पक्षेयथा स्वं प्रत्ययाः यथा—देवोदेवेभिरागमत् । अत्रलोडर्थेलुङ् । इदं तेभ्योकरं नमः । लङ् । अग्निममार । अत्रम्रियते इत्यर्थः । लिट् ॥

दिव्यगुणयुक्त ईश्वर प्राप्त हो । यह उनके लिये नमस्कृति की है ॥ धात्वर्थ सम्बन्ध होने पर छन्द विषय में सर्वकालों में विकल्प से लुङ्, लङ् और लिट् प्रत्यय हों ॥ ६ ॥

लिङर्थे लेट् ॥ ७ ॥

१-(७ । १ । १०) इत्यैस् निषेधः ॥

विध्यादौ हेतु हेतुमद्भावादौ च धातो लेट् स्याच्छन्दसि। यथा—तारिषत्[1] । जोषिषत्[2] ॥

तारे सेवे॥ विध्यादि तथा हेतुहेतुमद्भाव में धातु से विकल्प करके छन्दोविषय में लेट् लकार हो।

उपसंवादाशङ्कयोश्च ॥ ८ ॥

उँ० योः, अ च। उपसंवादे, आशङ्कायां च गम्यमानायां छन्दसि लेट् स्यात्। यथा—अहमेव पशूनामीशै[3]। नोज्जिह्मायन्तो नरकंपताम॥

मैं पशुओं का स्वामी हूं। क्या कुटिलता करते हुये हम दुःख को प्राप्त न हों (अपितु होवें)॥ उपसंवाद (एवजमावज़ा) और आशङ्का (मुमुकिन) गम्यमान हो तो छन्दविषय में धातु से लेट् लकार हो॥ ८॥

तुमर्थे सेसेनसे असेन् क्से कसेनध्यै अध्यैन् कध्यैकध्यैन् शध्यै शध्यैन्त-वैतवेङ् तवेनः ॥ ९॥

तुमुनोऽर्थस्तुमर्थः। तत्रच्छन्दसि धातोः समादयः प्रत्ययाः स्युः। यथा--से। वँक्षे[4]। सेन्। एँषे[5]। असे। जीवसे। असेन्नित्याद्युदात्तः। क्से। प्रेषे[6]। कसेन्। श्रियँसे[7]। अध्यै। अध्यैन्। पृणध्यै। पक्षे आ-

---

१-तृ-प्लवनसन्तरणयोः सिविधौ बहुलं णिद्भ्दाव उक्तस्ततो वृद्धिः। २-जुषीप्रीतिसेवनयोरनुदात्तेत, व्यत्ययेन परस्मैपदम्, इतश्च लोपः परस्मैपदेषु लेटोडाटाविति तिपोडागमः, सिब्बहुलं लेटीति सुप्, इडागमः। ३-ईश ऐश्वर्ये। उत्तमैकवचनमिट्। इतश्च-इतिलोपो नास्ति परस्मैपदेषु इत्युक्तेः टेरेत्वं तस्य ऐ। उपसंवादः-पणबन्धः यदि मे भवानिदं कुर्यात्तर्हीदमहं दास्यामीति। समयकरणं पणवन्धः। आशङ्का सम्भावना।

४—वचः से कुत्वं षत्वम्। कषसंयोगे क्षः। ५—एषे इति इको गुणः। नकारोऽन्नित्यादिर्नित्यम्'इत्याद्युदात्तार्थः। ६—प्रेषे इति। इकः से क्त्विादगुणे आद्गुणः। ७—श्रियसे इति। इयङ् नित्त्वादाद्युदात्त :।

द्युदात्तम् । कध्यै । कध्यैन् । आहुवध्यै[1] । पक्षेनितस्वरः । शध्यै । मादयध्यै[2] । शध्यैन् पिबध्यै[3] । तवै । दातवै[4] । तवेङ् । सूतवे[5] । तवेन् । कर्त्तवे[6] ॥

कहने को । प्राप्तिको । जीनेको । जानेको । शोभाको । पूरण करनेको । हवन करनेको । प्रसन्न कराने को । पीने को । देने को । पैदा करनेको । करने को । तुमर्थ (तुमुन् प्रत्ययका) में छन्दोविषय होनेपर धातु से से, सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ् तवेन् ये १९ प्रत्यय हों ॥९॥

प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥ १० ॥

छन्दसीमे तुमर्थे निपात्यन्ते । यथा--प्रयै । प्रयातुम् । रोहिष्यै । रोहणाय । अव्यथिष्यै । अव्यथनाय ॥

तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्ययान्त "प्रयै" रुह से इष्यै प्रत्ययान्त "रोहिष्यै" और नञ् पूर्वक व्यथ से इष्यै प्रत्ययान्त "अव्यथिष्यै" शब्द निपातन कियेगये हैं ॥ १० ॥

दृशे विख्ये च ॥ ११ ॥

इमौ छन्दसि निपात्येते । यथा—दृशे । द्रष्टुमित्यर्थः । विख्ये । विख्यातुम् ॥

तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर दृशिर् धातु से के प्रत्ययान्त "दृशे" और विपूर्वक ख्याधातु से के प्रत्ययान्त" विख्ये" निपातित कियेगये हैं ॥ ११ ॥

शकि णमुल्कमुलौ ॥ १२ ॥

छन्दसिविषये शक्नोतावुपपदे तुमर्थे इमौस्याताम् । यथा—विभाजं नाशक्नुवन् । विभक्तुमित्यर्थः । अपलुपं नाशकत् । अपलोप्तुमित्यर्थः ॥

१ जुहोतेरुवङ् । २ मदीहर्षे ण्यन्ताच्छध्यै प्रत्ययः । तस्यभाववाचि सार्वधातुकत्वात् सार्वधातुकेयकि प्राप्ते व्यत्ययेनशप्गुणादेशौ । ३—अत्रापि यक्प्रसंगे व्यत्ययेनशप् । पाघ्रा इति पिबादेशः । ४ददातिस्तव आयादेशे लोपः शाकल्यस्य, इति यलोपः । ५ ङित्त्वान्नगुण । ६—कृञोगुणः ॥

शक्ल धातु उपपद हो तो तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ १३ ॥

ईश्वरशब्द उपपदे छन्दसि विषये तुमर्थे इमौस्याताम् । यथा—ईश्वरो विचरितोः । विचरितुमित्यर्थः । ईश्वरो विलिखः । विलेखतुमित्यर्थः ॥

ईश्वरशब्द उपपद हो तो तुमर्थ में छन्दोविषय होनेपर धातु से तोसुन और कसुन् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥ १४ ॥

कृत्यनामार्थो भावकर्मणी । तस्मिन् कृत्यार्थे छन्दसि विषये तवै केन् केन्य, त्वन् इतीमे स्युः । यथा—नम्लेच्छितवै । न म्लेच्छितव्यमित्यर्थः । अवगाहे । अवगाहितव्यमित्यर्थः । दिदृक्षेण्यः । दिदृक्षितव्यमित्यर्थः । कर्त्वम् । कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥

कृत्यार्थ (भाव, कर्म) में छन्दोविषय होनेपर धातु से तवै, केन, केन्य और त्वन् प्रत्यय हों ॥ १४ ॥

अवचक्षे च ॥ १५ ॥

कृत्यार्थे छन्दसिविषये अवपूर्वाच्चक्षिङ् एश् प्रत्ययो निपात्यते । यथा—नावचक्षे । नावख्यातव्यमित्यर्थः ॥

कृत्यार्थ में छन्दोविषय होनेपर अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एश् प्रत्ययान्त " अवचक्षे " निपातन कियागया है ॥ १५ ॥

१-शित्वात्सार्वधातुकत्वं तेन ख्याञादेशो नो ।

भावलक्षणेस्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमि-जनिभ्यस्तोसुन् ॥ १६ ॥

भाँ०णे, स्थे०भ्यः, तोसुन् । भावोलक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्त्तमानेभ्यः स्थादिभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये तुमर्थे तोसुन् स्यात् । यथा—आसंस्थातोः सीदन्ति । आसमाप्तेः सीदन्तीत्यर्थः । इण् । उदेतोः । कृञ् । अपकर्त्तोः । वदि । प्रवदितोः । चरि । प्रचरितोः । हु । होतोः । आतमितोः । जनितोः ॥

प्राप्त होने को । अपकार करने को । प्रवाद को । प्रचारके लिये । दानके लिये । सर्वाभिलाष को । पैदाकरने को । छन्दो विषय में तुमर्थ होता भाव अर्थ में वर्त्तमान स्थाआदि धातुओं से तोसुन् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

सृपितृदोः कसुन् ॥ १७ ॥

भावलक्षणे वर्त्तमानयोः सृपितृदोर्धात्वोश्छन्दसिविषये तुमर्थे कसुन् स्यात् । यथा—विसृपः[1] । आतृदः[2] ॥

छन्दो विषय में तुमर्थ होतो भाव लक्षण अर्थ में वर्त्तमान सृप्लृ और उतृदिर् धातु से कसुन् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा १८

प्रतिषेधार्थयोरलं खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । यथा—अलंदत्त्वा[3] । पीत्वा[4] खलु ॥

अपात्रको न देना चाहिये । खराब वस्तु न पीना चाहिये ॥ प्रतिषेधवाची अलम् और खलु शब्द उपपद हों तो प्राग् देशस्थ आचार्यों के मत में क्त्वा प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

१—गमनादित्यर्थः । २—उतृदिर् हिंसानादरयोः ॥ ३-(७ । ४ । ४६) इति ददातेर्ददादेशः । ४—(६ । ४ । ६६) इतीकारादेशः ॥

उदीचां माङो व्यतीहारे ॥ १९

उ० मं, माङः, व्य० रे । व्यतीहारेऽर्थेमाङः क्त्वा स्यादुदीचां मतेन । अपूर्वकालार्थमिदम् । यथा--अपमित्य याचते । अपमित्य हरति । उदीचांग्रहणाद्यथाप्राप्तमपि । याचित्वा । हृत्वा ॥

बदलकर मांगता है । बदलकर लेता है । व्यतीहार (व्यतिक्रम) अर्थ में वर्तमान मेङ् धातु से उत्तरदेशस्थों के मत में क्त्वा प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

परावरयोगे च ॥ २० ॥

परेण पूर्वस्यावरेण परस्य योगे गम्ये धातोः क्त्वा स्यात् । यथा--अप्राप्य नदीं पर्वतः । परनदीयोगोऽत्रपर्वतस्य । अतिक्रम्य पर्वतं-स्थितानदी । अवर पर्वत योगोऽत्रनद्याः ॥

पर से पूर्वका और अवर से परका योगगम्यमान होते धातुसे क्त्वाप्रत्यय हो ॥२०॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ॥ २१ ॥

समानकर्तृकयो र्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । यथा--भुक्त्वाव्रजति । स्नात्वा भुक्त्वापीत्वैति ॥

खाकर जाता है ॥ स्नानकर खाकर और पीकर जाता है ॥ समानकर्तृक धात्वर्थों में से पूर्वकाल धात्वर्थ में वर्त्तमान धातु से क्त्वा प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल्च ॥ २२ ॥

पौनः पुन्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वाच । यथा--स्मारं स्मारंशयनमेति । स्मृत्वा स्मृत्वा । पायं पायं व्रजति भवनम् ॥

याद कर करके सोता है । पी पीकर घर जाता है । आभीक्ष्ण्ये (बारर) अर्थ

१--मेङ् प्रणिदाने क्त्वोल्यपि मयतेरिदन्यतरस्यामितीत्वम्, ह्रस्वस्य तुक् ॥ २-द्वित्वमलन्त्रमिति काशिका, सि०कौ० ॥ ३--आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इत्युपसङ्ख्यानाद् द्विर्वचनम् ॥ ४-आतोयुक् ॥

गम्यमान हो तो समान कर्तृक धातुओं में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

न यद्यनाकाङ्क्षे ॥ २३ ॥

न, यँदि, अँ० क्षे । अनाकाङ्क्षे यच्छब्दे उपपदे धातोः क्त्वा-णमुलौ न स्याताम् । यथा–यदयं भुङ्क्ते ततः पठति । यदयमधीते ततः शेते ॥

जब यह खालेता है तब पढ़ता है । जब यह पढ़लेता है तब सोता है ॥ अनाकाङ्क्ष (इच्छाका न होना) वाक्य में यद्शब्द उपपद हो तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हो ॥ २३ ॥

विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ २४ ॥

एषूपपदेषु समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले धातोः क्त्वा णमुलौ वा स्याताम् । यथा–अग्रे भोजं व्रजति । अग्रे भुक्त्वा । प्रथमं भोजम् । प्रथमं भुक्त्वा । पूर्वं भोजम् । पूर्वं भुक्त्वा । पक्षे लडादयः । अग्रे भुङ्क्ते ततो जतीत्यर्थः ॥

अग्रे, प्रथम और पूर्व उपपद हों तो समान कर्त्तृकधात्वर्थों में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में वर्त्तमान धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय विकल्प से हों ॥ २४ ॥

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ २५ ॥

कर्मणिँ, आँक्रोशे, कृञः, खमुँञ् । कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्ये कृञः खमुञ् स्यात् । यथा–चौरङ्कारमाक्रोशति । करोतिरुच्चारणे । चोरशब्द मुच्चार्येत्यर्थः ॥

चोरशब्द मुच्चार्येत्यर्थः ॥ कर्म उपपद हो तो आक्रोश गम्यमान होनेपर डुकृञ् धातु से खमुञ् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

स्वादुमि णमुल् ॥ २६ ॥

स्वाद्वर्थेषु कृञोणमुल् स्यादेककर्तृकयोः पूर्वकाले पूर्वपदस्य मान्तत्वं निपात्यते। यथा–अस्वादुं स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते–स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते। सम्पन्नङ्कारम्। लवणङ्कारम्। सम्पन्नलवण शब्दौ स्वादुपर्यायौ। वासरूपेण क्त्वापि। स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते॥

स्वादु अर्थ उपपद होतो समान कर्तृक धात्वर्थों में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में डुकृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो॥ २६॥

अन्यथैवंकथमित्थंसुसिद्धाप्रयोगश्चेत् २७

अ०सुं, सि०गः, चेत्। एषूपपदेषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धः अप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत् कृञ्। व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। यथा–अन्यथाकारम्। एवङ्कारम्। कथङ्कारम्। इत्थङ्कारंभुङ्क्ते। इत्थंभुङ्क्ते इत्यर्थः॥

सिद्धाप्रयोग (अनिष्पत्ति) होतो अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम् इनके उपपद होनेपर डुकृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो॥ २७॥

यथातथयोरसूयाप्रतिवचने॥ २८॥

यँ०योः, अँ०ने। असूयाप्रतिवचने गम्येऽनयोरुपपदयोः कृञो णमुल् स्यात्। यथा–यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकांर भोक्ष्ये किं तवाऽनेन। प्रष्टुमनर्हः सन्यदि पृच्छति तदेदमुत्तरम्॥

सिद्धाप्रयोग होतो यथा और तथा के उपपद होनेपर असूया (निन्दा) प्रतिवचन के गम्यमान होने में डुकृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो॥ २८॥

कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये॥ २९॥

सकलस्यभावः–साकल्यम्। तस्मिन् विशिष्टेऽर्थे कर्मण्युपपदे आ-

भ्यां णमुल् स्यात् । यथा–पुस्तकदर्शमधीते । यानि यानि पुस्तकानि पश्यति तानि तानि सर्वाण्यधीते इत्यर्थः । छात्रवेदं भोजयति । यं यं छात्रं जानाति, लभते, विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थः ॥

कर्म उपपद होतो साकल्य (समूह) अर्थ में दृशिर् और विद धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

यावति विन्दजीवोः ॥ ३० ॥

यावच्छब्द उपपदे विन्दते र्जीवतेश्च णमुल् स्यात् । यथा–यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते । यावज्जीवति तावदधीते इत्यर्थः ॥

यावत् शब्द उपपद होतो विन्द और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

चर्मोदरयोः पूरेः ॥ ३१ ॥

चर्मोदरयोः कर्मणोरुपपदयोः पूरयतेर्णमुल् स्यात् । यथा–चर्मपूरंस्तृणाति । चर्मपूरयित्वेत्यर्थः । उदरपूरं भुङ्क्ते । उदरं पूरयित्वेत्यर्थः ॥

चर्म (चमड़ा) और उदर (पेट) कर्म उपपद होतो पूरी (ण्यन्त) धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

वर्षप्रमाणऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ३२

व० णे. ऊलोपः, च, अ० म् । कर्मण्युपपदे पूरयते र्णमुल् स्यादूकारलोपश्च वा समुदायेन वर्षप्रमाणे गम्ये । यथा-गोष्पदपूरं वृष्टोमेघः । गोष्पदप्रं वृष्टोमेघः । गोः पादं पूरयन् वृष्टइत्यर्थः ॥

यदि समुदाय से वर्षा की इयत्ता (इतनी) गम्यमान होतो पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय और पूरी के ऊकार का लोप विकल्प से हो ॥ ३२ ॥

चेले क्नोपेः ॥ ३३ ॥

चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु क्नोपेर्णमुल् स्याद्वर्षप्रमाणे गम्ये । यथा–चेलं* क्नोपं वृष्टोमेघः । वस्त्र क्नोपम् । वसनक्नोपम् ॥

जितनी वर्षा से कपड़े भीगसक्ते हैं उतनी वर्षा हुई ॥ वर्षप्रमाण गम्यमान हो तो चेलार्थक (वस्त्रवाच्य) कर्म उपपद होनेपर ण्यन्त क्नूयी धातु से णमुल् प्रत्यय हो

निमूलसमूलयोः कषः ॥ ३४ ॥

एतयोरुपपदयोः कषेर्णमुल् स्यात् । यथा–निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति । निर्गतं मूल्यमस्य निमूलम् । सह मूलेन समूलम् । तथा कषतीत्यर्थः ॥

निमूल और समूल कर्म उपपद हों तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥ ३५ ॥

एषुकर्मसूपपदेषु पिषेर्णमुल् स्यात् । यथा–शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः । चूर्णपेषं पिनष्टि । चूर्णं पिनष्टीत्यर्थः । रूक्षपेषं पिनष्टि । रूक्षं पिनष्टीत्यर्थः ॥

शुष्क, चूर्ण और रूक्ष कर्म उपपद हों तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥३५॥

समूलाकृतजीवेषु हनकृञ्ग्रहः ॥ ३६ ॥

एषुकर्मसूपपदेषु हनादिभ्यः क्रमशो णमुल् स्यात् । यथा–समूल घातं न्यवधीदरींश्च । समूलान्निःशेषानरीन् शत्रून्निहतानित्यर्थः । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं गृह्णाति । जीवतीति जीवः । इगुपधलक्षणः कः । जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः ॥

---

* यथा वर्षणे चेलानि शब्दायन्ते तथा वृष्ट इत्यर्थः । अन्ये तु क्नूयी शब्दे उन्दे च, उन्दी क्लेदने, क्लिदू आर्द्रीभावे, इत्येवं क्नोपमिति णमुलन्तस्य प्रकृत्यर्थं पर्यालोच्य यथा वर्षणेन चेलान्यार्द्रा भवन्ति तावद् वृष्ट इति व्याचख्युः । इति त० बो० ॥

१-(७ । ३ । ५४) इति घत्वम् । (३ । १ । १०८) इति तत्वम् । (३ । ४ । ४६ ।) इत्यनुप्रयोगे । लुङिचेति वधादेशः । तस्याकारान्तत्वादुपदेशेऽनेकाच्त्वादिङ् निषेधोनोभवति. अतो लोपेकृते तस्य स्थानिवद् भावादतो हलादेरिति वा वृद्धिर्न ॥

समूल, अकृत और जीव कर्म उपपद हों तो हन कृञ् और ग्रहधातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३६ ॥

करणे हनः ॥ ३७ ॥

करणउपपदे हन्तेर्णमुल् स्यात् । यथा—पाद घातं हन्ति । पादेन हन्तीत्यर्थः ॥

करण उपपद हो तो हन धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३७ ॥

स्नेहने पिषः ॥ ३८ ॥

स्निह्यते येन तस्मिन् करणे पिषेर्णमुल् स्यात् । यथा—उदपेषं पिनष्टि । उदकेन पिनष्टीत्यर्थः ॥

स्नेह वाचक करण उपपद हो तो पिष्लृ धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ३८ ॥

हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥ ३९ ॥

हस्तार्थे करणे उपपदे आभ्यां णमुल् स्यात् । यथा—हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्त्तम् । पाणिवर्तम् । हस्तेन गुलिकां करोत्यर्थः । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्रहम् । हस्तेन गृह्णातीत्यर्थः ॥

हस्तवाचक करण उपपद हो तो ण्यन्त वृतु और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ३९

स्वे पुषः ॥ ४० ॥

स्व इत्यर्थग्रहणम् । स्ववाचिनि करणे उपपदे पुषेर्णमुल् स्यात् । यथा—स्वपोषं पुष्णाति । धनपोषम् । गोपोषम् । आत्मपोषम् । पितृपोषम् । आत्मीयज्ञाति धनवाचनस्वशब्दः ॥

१-गुलः गुडइव रसोऽस्त्यास्याः इति अर्श आदिभ्योऽच् ततश्चाप प्रत्ययस्थात्कादिति इत् ॥

स्ववाचक करण उपपद हो तो पुष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

अधिकरणे बन्धः ॥ ४१ ॥

अधिकरणवाचिन्युपपदे बध्नातेर्णमुल् स्यात् । यथा—चक्रबन्धं बध्नाति । चक्रे बध्नातीत्यर्थः ॥

अधिकरण उपपद हो तो बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ४२ ॥

सञ्ज्ञायां बध्नातेर्णमुल् स्यात् । यथा—क्रौञ्चबन्धं बद्धः । मयूरिका बन्धम् । अट्टालिकाबन्धम् । बन्धविशेषाणामिमाः सञ्ज्ञाः ॥

सञ्ज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

कर्त्रोर्जीवपुरुषयो र्नशिवहोः ॥ ४३ ॥

कर्त्रोः, जी० योः, न० होः । कर्त्तृवाचिनोर्जीवपुरुषयोरुपपदयोर्यथासङ्ख्यं नशिवहिभ्यां णमुल् स्यात् । यथा—जीवनाशं नश्यति । जीवो नश्यतीत्यर्थः । पुरुषवाहं वहति । पुरुषः प्रेष्यो भूत्वा वहतीत्यर्थः ॥

कर्त्तृवाची जीव और पुरुष उपपद हो तो नश और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥

ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥ ४४ ॥

ऊर्ध्वशब्दे कर्त्तृवाचिन्युपपदे शुषिपूरिभ्यां णमुल् स्यात् । यथा—ऊर्ध्वशोषं शुष्यति । वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते । ऊर्ध्वमुख एव घटादिर्वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थः ॥

कर्त्तृवाचक ऊर्ध्वशब्द उपपद हो तो शुष और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो ४४

उपमाने कर्मणि च ॥ ४५ ॥

उपमाने कर्मणि कर्त्तरि चोपपदे धातोर्णमुल् स्यात् । यथा-घृतनिधायंनिहितं तत्कम् । घृतमिवसुरक्षितमित्यर्थः । अजकनाशं नष्टः । अजक इव नष्ट इत्यर्थः ॥

उपमानवाची कर्म और कर्त्ता उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ ४६ ॥

कॅ० षु, य० धि, अ० गः । निमूलसमूलयोरित्यारभ्य कषादयः यस्माण्णमुलुक्त स एवानुप्रयोक्तव्य इत्यर्थः तथैवोदाहृतम् ॥

कषादि (३ । ४ । ३४) सूत्रस्थ धातुओं से लेकर जिस धातु से णमुल् प्रत्यय हो वही धातु अनुप्रयोक्तव्य है ॥ ४६ ॥

उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ ४७ ॥

उं० शः, तृं० म् । दंश दंशने । अस्माद्धातोरुपपूर्वात्तृतीयान्ते उपपदे णमुल् स्यात् । यथा-मूलकोपदंशं भुङ्क्ते मूलकेनोपदंशम् ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो उपपूर्वक दंश धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यहां से लेकर पूर्वकाल का सम्बन्ध है ॥ ४७ ॥

हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ ४८ ॥

तृतीयान्ते उपपदेऽनुप्रयोग धातुनासमानकर्मकाद्धिंसार्थात् णमुल् स्यात् । यथा-दण्डोपघातं गाः कलयति । दण्डेनोपघातम् । दण्डताडम् । दण्डेनताडम् ॥

दण्डे से पीटकर गौओं को गिनता है ॥ तृतीयान्त उपपदहो तो अनुप्रयोग धातु के साथ समान कर्मवाले हिंसार्थक धातुओं से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

१-(२ । २ । २१) वेति समासः ॥

सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ ४९ ॥

सं० म्, च, उं० पः । उपपूर्वेभ्यः पीडादिभ्यः सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते चोपपदे णमुल् । यथा--पार्श्वोपपीडंशेते । पार्श्वयोरुपपीडम् । पार्श्वाभ्यामुपपीडम् । व्रजोपरोधं गाः स्थापयति । व्रजेन व्रजे वा उपरोधम् । पाण्युपकर्षंधानाः संगृह्णाति पाणावुपकर्षम् । पाणिनोपकर्षम् ॥

पसुलिओं को दबाकर सोता है । गोवाड़े में रोककर गौओं को ठहराता है । हाथ से खींचकर धानों (भुनेहुए जव) का संग्रह करता है ॥ सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त उपपद हों तो उपपूर्वक पीड, रुध और कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

समासत्तौ ॥ ५० ॥

सन्निकर्षे गम्ये तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु ग्राहम् । केशैर्ग्राहम् ॥

बालों को पकड़कर लड़ते हैं ॥ तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद हों तो समासत्ति (सन्निकटता) गम्यमान होनेपर धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

प्रमाणे च ॥ ५१ ॥

प्रमाणमायामः । प्रमाणे गम्ये तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--द्व्यङ्गुलोत्कर्षं[1] खण्डिकां छिनत्ति । द्व्यङ्गुलेन द्व्यङ्गुलेवोत्कर्षम् ॥

तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद हों तो प्रमाण के गम्यमान होनेपरभी धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

१-द्वयोरङ्गुल्योः समाहारो द्व्यङ्गुलम् । तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः इत्यच् समासान्तः । द्व्यङ्गुलेनोत्कृष्य. परिच्छिद्यत्यर्थः. खलः खण्डः खण्डिका॥

अपादाने परीप्सायाम्ँ ॥ ५२ ॥

परीप्सा त्वरा । अपादाने उपपदे परीप्सागम्यमानायां धातोर्णमुल् स्यात् । यथा–शंय्योत्थायं[1] धावति ॥

खाट से उठा और दौड़ा ॥ अपादान उपपद होतो परीप्सा गम्यमान होनेपर धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५२ ॥

द्वितीयायाँ चँअ ॥ ५३ ॥

द्वितीयान्त उपपदे परीप्सा गम्यमानायां धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--यष्टिग्राहं[2] युध्यन्ते । लोष्टग्राहम् ॥

द्वितीयान्त उपपद हो तो परीप्सा गम्यमान होने पर धातु से णमुल् प्रत्ययहो ५३

स्वाङ्गेँऽध्रुँवे ॥ ५४ ॥

अध्रुवे स्वाङ्ग् वाचिनि द्वितीयान्त उपपदे धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--अक्षिनिकाणं जल्पति ॥

आंख निकालकर कहता है ॥ स्वाङ्गवाची अध्रुव (अस्थिर) द्वितीयान्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्ययहो ॥ ५४ ॥

परिक्लिश्यँमाने चँअ ॥ ५५ ॥

परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्त उपपदे धातोर्णमुल् स्यात् । यथा--उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते ॥

छाती से रिगड़ कर लड़ते हैं ॥ परिक्लिश्यमान (सर्व प्रकार से पीड़ा विशेष) स्वाङ्ग वाचक द्वितीयान्त उपपदहो तो धातु से णमुल् प्रत्ययहो ॥ ५५ ॥

१--उदः स्थास्तम्भोरिति तिष्ठति सकारस्यतत्वम् शय्यायाउत्थाय ॥ २-एवं खलु युद्धाय त्वरन्ते यदासन्न यष्ट्यादिकं भवति तदेव गृहीत्वा धावन्ति नायुधं प्रतीक्षन्तइत्यर्थः ॥

विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ ५६ ॥

द्वितीयान्ते उपपदे विशयादिभ्यो णमुल् स्याद् व्याप्यमाने आसेव्यमानेचाऽर्थे गम्ये । यथा–गेहानुप्रवेशप्रवेशमास्ते । गेहंगेहमनुप्रवेशम् । गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशम् । एवं गेहानुप्रपातम् । गेहानुप्रपादम् । गेहानुस्कन्दम् ॥

द्वितीयान्त उपपद हो तो व्याप्यमान और आसेव्यमान के गम्यमान होनेपर विश पत्लृ पद और स्कन्दिर् धातु से णमुल प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु॥५७॥

क्रियामन्तरयति–क्रियान्तरः । तस्मिन् धात्वर्थे वर्त्तमानादस्यतेस्तृष्यतेश्च कालवाचिषु द्वितीयान्तेपूपदेषु णमुल् स्यात् । यथा–द्व्यहात्यासं गाः पाययति । द्व्यहमत्यासम् । द्व्यहतर्षम् । द्व्यहंतर्षम् । अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते । अद्य पाययित्वा द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः ॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद हों तो क्रियान्तर धात्वर्थ में वर्त्तमान अस्यति (असु) और ञितृष धातु से णमुल् प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ ५८ ॥

नाम्नि,आ दि ०होः। नामशब्दे द्वितीयान्ते उपपदे आदिशेर्ग्रहेश्च णमुल् स्यात् । यथा–नामदेशमाचष्टे । नामग्राहमाह्वयति ॥

नाम लेकर पुकारता है ॥ द्वितीयान्त नामशब्द उपपद हो तो आङ् पूर्वक दृशिर् और ग्रह धातु से णमुल प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ॥ ५९ ॥

अयथाभिप्रेताख्यानं नाम अप्रियस्योच्चैः प्रियस्य नीचैः कथनम्। अयथाभिप्रेताख्याने गम्ये अव्यय उपपदे करोतेः क्त्वा णमुलौ स्याताम्। यथा–उच्चैः कृत्य।उच्चैः कृत्वा। उच्चैः कारमप्रियमाचष्टे। नीचैःकृत्य। नीचैः कृत्वा। नीचैः कारं प्रियं ब्रूते।

चिल्लाकर बोलता है। मीठे स्वर से धीरे बोलता है॥ अव्यय उपपद हो तो अयथाभिप्रेताख्यान गम्यमान होनेपर डुकृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्ययहो ५९

तिर्यच्यपवर्गे ॥ ६० ॥

तिर्यचि, अ० र्गे। समाप्तौ गम्यमानायां तिर्यक् शब्दे उपपदे कृञः क्त्वाणमुलौ स्याताम्।यथा-तिर्यक्कृत्य तिर्यक्कृत्वा गतः। तिर्यक्कारं समाप्य गत इत्यर्थः॥

अपवर्ग (समाप्ति) गम्यमान हो तो तिर्यक् शब्दके उपपद होनेपर डुकृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्ययहो॥ ६०॥

स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः॥ ६१।

तस्प्रत्यये स्वाङ्गवाचिन्युपपदे करोतेर्भवतेश्च धातोः क्त्वा णमुलौ स्याताम्। यथा--मुखतः कृत्य गतः। मुखतः कृत्वा। मुखतः कारम्। मुखतो भूय। मुखतो भूत्वा। मुखतो भावम्॥

मुख में करके गया। मुखमें होकर॥ तस् प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची उपपद हो तो डुकृञ् और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो॥ ६१॥

नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे॥ ६२॥

नाधार्थ प्रत्ययान्ते च्व्यर्थ विषये उपपदे कृभ्वो क्त्वा णमुलौ स्याताम् । यथा--अनाना नाना कृत्वा । नाना कृत्य । नाना कृत्वा । नानाकारम् । विनाकृत्य । विनाकृत्वा । विनाकारम् । नानाभूय । नानाभूत्वा । नानाभावम् । अनेकं द्रव्यमेकं भूत्वा । एकधा भूय । एकधा भूत्वा । एकधा भावम् । एकधा कृत्य । एकधा कृत्वा । एकधाकारम् ॥

नार्थ और धार्थ प्रत्ययान्त उपपद हों तो च्व्यर्थ में डुकृञ् और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों ॥ ६२ ॥

तूष्णीमि भुवः ॥ ६३ ॥

तूष्णींशब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्याताम् । यथा—तूष्णींभूय । तूष्णींभूत्वा । तूष्णीं भावम् ॥

चुप होहोकर ॥ तूष्णीम् शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

अन्वच्यानुलोम्ये ॥ ६४ ॥

अन्वचि, आं० म्ये । आनुकूल्ये गम्ये अन्वक् शब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ स्याताम् । यथा-अन्वग् भूय आस्ते । अन्वग् भूत्वा । अन्वग् भावम् । अग्रतः, पार्श्वतः, पृष्ठतो वाऽनुकूलो भूत्वा आस्ते इत्यर्थः ॥

अन्वक् शब्द उपपद हो तो आनुलोम्य (आनुकूल्य) अर्थ में भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ ६५ ॥

एषूपपदेषु धातोस्तुमुन् स्यात् । यथा-शक्नोति भोक्तुम् । धृष्णोति भोक्तुम् । जानाति भोक्तुम् । ग्लायतिभोक्तुम् । घटते भोक्तुम् । (अर्हतीतियोग्यता) । आरभते भोक्तुम् । लभते भोक्तुम् । प्रक्रमते भोक्तुम् । सहते भोक्तुम् । अर्हति भोक्तुम् । अस्त्यर्थेषु-अस्ति भोक्तुम् । भोजमस्तीत्यर्थः । भवति भोक्तुम् । विद्यते भोक्तुम् ॥

शक, ञिधृषा, ज्ञा, ग्लै, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह और अस्त्यर्थ (अस, भू, विद) धातु उपपद हों तो तुमुन प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥ ६६ ॥

पँ० पु, अँ० पु । पर्याप्तिः-पूर्णता । तद्वाचिषु सामर्थ्यवचने षूपपदेषु तुमुन् स्यात् । यथा-पर्याप्तो भोक्तुम् । भोक्तुंसमर्थइत्यर्थः । प्रवीणः कुशलः पटुरित्यादि ॥

पर्याप्ति (सामर्थ्य) वाचक अलमर्थ शब्द उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो

कर्त्तरि कृत् ॥ ६७ ॥

कृत् सञ्ज्ञकाः कर्त्तरि कारके स्युः । यथा-कारकः । कर्त्ता । नन्दनः । ग्राही । पचः ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ताकारक में हों ॥ ६७ ॥

भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्याँ वा ॥ ६८ ॥

इमे कृत्यान्ताः कर्त्तरिवा निपात्यन्ते । पक्षे तयोरेवेति सकर्मकात् कर्माणि । अकर्मकात्तु भावेज्ञेयाः । यथा-भवतीति-भव्यः । भव्यमनेनवा । गायतीति-गेयः-साम्नामयम् गेयं सामानेनेति वा । प्रव-

चनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य । प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्याय इतिवा । उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः । उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः । जायतेऽसौजन्यः । जन्यमनेनेति वा । आप्लवतेऽसा वाप्लाव्यः । आप्लाव्यमनेनेति वा । आपतत्यसावापात्यः । आपत्यमनेनेतिवा ॥

भव्यआदि शब्द कर्त्ताकारक में विकल्प से निपातित हैं ॥ ६८ ॥

लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः ॥ ६९ ॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्त्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्त्तरि च । यथा—पठ्यते पाठश्चैत्रेण । पठति पाठंचैत्रः । अकर्मकेभ्यः । आस्यते मैत्रेण । आस्ते मैत्रः ॥

चैत्र पाठको पढ़ता है । मैत्र बैठता है ॥ लकार सकर्म धातुओं से कर्म औरकर्त्ता में हों और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता में हों ॥ ६९ ॥

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ ७० ॥

तयोः, एव, कृ०र्थाः । तयोरेव भावकर्मणोः कृत्यसञ्ज्ञकाः क्तखलर्थाश्च प्रत्ययाः स्युः । यथा—कर्मणिकर्त्तव्यो होमोभवता । भावे । शयितव्यं त्वयाशीघ्रम् । आशितव्यं नगन्तव्यम् । कर्मणि क्तः । कृतोहोमस्तेन । मया मोदका नभुक्ताः । भावे । आशितं भवता । शयितं भवता । कर्मणि खलर्थाः । ईषत्करः कटस्त्वया । सुकरः । दुष्करः । भावे । ईषदाढ्यंभवंमया ॥

आप को होमकरना चाहिये । तुझेजल्दी सोना चाहिये । बैठो जाओन । उसने हवन किया । मैंने लड्डू नहीं खाये । आप बैठे । आप सोये ॥ कृत्य संज्ञक तथा क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही हों ॥ ७० ॥

आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥ ७१ ॥

आदिकर्मणि यः क्तः स कर्त्तरि स्यात् चाद्भावकर्मणोः। यथा-प्रकृतो घटं कुलालः। भवे-प्रकृतं चैत्रेण। कर्मणि-प्रकृतो घटः कुलालेन। प्रभुक्तो मोदकान् मैत्रः। प्रभुक्तं मैत्रेण। प्रभुक्तामोदकामैत्रेण॥

कुम्हारने घड़ा बनाना आरम्भ किया। मैत्रने लड्डूखाये॥ आदिकर्म में जो विहित क्त वह कर्त्ता तथा भाव और कर्म में हो॥ ७१॥

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च॥ ७२॥

ग०भ्यः, च। एभ्यो धातुभ्यः कर्त्तरि क्तः स्यात् भावकर्मणोश्च। यथा--गतोमैत्रोग्रामम्। गतं मैत्रेण। गतो मैत्रेण ग्रामः। अकर्मकात्। ग्लानःसः। ग्लानं तेन। उपश्लिष्टो गुरुमसौ। उपश्लिष्टोगुरुरमुना। उपशयितो गुरुंभवान्। उपशायितं भवता। उपशायितोगुर्भवता। उपस्थितो गुरुंभवान्। उपस्थितं भवता। उपस्थितो गुरुर्भवता। उपासितं भवता। उपासितोगुरुर्भवता। अनूषितो गुरुंभवान्। अनूषितम्। अनूषितो गुरुर्भवता। अनुजाता माणवको माणविकाम्। अनुजातं माणवकेन। अनुजाता माणवकेन माणविका। आरूढोऽश्वं भवान्। आरूढं भवता। आरूढोऽश्वो भवता। अनुजीर्णो वृषलीं वृषलः। अनुजीर्णं वृषलेन। अनुजीर्णा वृषली वृषलेन॥

मैत्र गांवको गया। उसने ग्लानि (नफरत) की। वह गुरु से मिला। गुरुके निकट सोया। गुरुके समीप स्थित रहा। आप गुरुके पास बैठा। आप गुरुके पास रहा। लड़कीके पश्चात् लड़का हुआ। आप घोड़ेपर चढ़ा। पापिनी के पीछे पापी दुबला है॥ गत्यर्थक अकर्मक, श्लिष, शीङ्, स्था, आस्, वस्, जन, रुह, और जीर्यति (जॄष) धातु से कर्त्ता भाव और कर्म में क्त प्रत्यय हो॥ ७२॥

दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने॥ ७३॥

इमे सम्प्रदाने कारके निपात्येते । यथा—दशन्ति तस्मै-दाशः । गां हन्ति तस्मै-गोघ्नोऽतिथिः[1] ॥

सम्प्रदान कारक में दाशृ धातु से अच् प्रत्ययान्त दाश तथा गो + हन धातु से टक् प्रत्ययान्त गोघ्न निपातित है ॥ ७३ ॥

भीमादयोऽपादाने ॥ ७४ ॥

भी० यः, अ० ने । भीमादयः शब्दा अपादाने कारके निपात्यन्ते । यथा—भीमः । भीष्मः । प्रस्कन्दनः । भयानकः । मूर्खः । खलतिः । समुद्रः । स्रुचः ॥

अपादान कारक में मक् (उणादि) प्रत्ययान्त भीमादि शब्द निपातित हैं ७४

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ ७५ ॥

ताभ्याम्, अन्यत्र, उ० यः । उणादयः शब्दा स्ताभ्यामपादान सम्प्रदानाभ्या मन्यत्र कारके स्युः । यथा—कृपितोऽसौ कृपिः । तन्यत इति तन्तुः । वृत्तमितिवर्त्म । चरितं चर्म ॥

खेती । सूत । रास्ता । चमड़ा ॥ सम्प्रदान और अपादान से भिन्न कारकों में उणादि प्रत्यय हों ॥ ७५ ॥

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्य गति प्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ ७६ ॥

क्तः, अ० णे, च, ध्रौ० भ्यः । एभ्योऽधिकरणे क्तः स्यात् । चाद्यथा प्राप्तम् । यथा—ध्रौव्यार्थेभ्यः, आसितो मैत्रः । आसितं तेन । इदमेषामासितम् । गत्यर्थेभ्यः- यातो मैत्रोग्रामम् । यातोमैत्रेणग्रामः ।

[1] गोघ्न इति, । अत्र दानपूर्वके हनने हन्तिर्वर्तते । अर्घार्ह इति, । अर्घोमधुपर्क तदङ्गत्वेन गोहननं विहितम् । एतावद् गोरालम्भनस्थानमतिथिः पितरो विवाहश्चेति । इति त० बो० ॥

यातं मैत्रेण । इदमेषां यातम् प्रत्यवसानार्थेभ्यः । भुक्तो मोदको मैत्रः । भुक्तो मोदको मैत्रेण । भुक्तं मैत्रेण । इदमेषां भुक्तम् ॥

ध्रौव्य (अकर्म) गत्यर्थक और प्रत्यवसानार्थ (भोजनार्थ) धातुओं से अधिकरण कारक में क्त प्रत्यय हो और चकार से यथा प्राप्त हो ॥ ७६ ॥

लस्य ॥ ७७ ॥

अधिकारोऽयम् । लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् ॥

यहां से लेकर इस पाद की समाप्ति तक लकारों को कार्यविधान कियाजावेगा ॥ ७७ ॥

तिप् तस् झि सिप् थस् थ मिप् वस् मस् ता तां झ थासाथां ध्व मिड् वहि महिङ् ॥ ७८ ॥

इमेऽष्टादशलादेशाः स्युः । यथा-भजति, भजतः, भजन्ति । भजसि, भजथः, भजथ । भजामि, भजावः, भजामः । भजते, भजेते, भजन्ते । भजसे, भजेथे, भजध्वे । भजे, भजावहे, भजामहे ॥

सेवा करता है ॥ लकार के स्थान में तिप् आदि १८ प्रत्यय आदेश हों ॥ ७८ ॥

टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ ७९ ॥

टितः, आ॰म् , टेः, ए । टितोलस्यात्मने पदानां टे रेत्वं स्यात् । यथा--एधते ॥

टित् (ट जिसका इत् गया हो) लकारों के आत्मनेपद प्रत्ययों के टि भाग को एकारादेश हो ॥ ७९ ॥

थासः से ॥ ८० ॥

टितोलस्य थासः स्थाने से स्यात् । यथा—एधसे । पक्तासे । पद्यसे ॥

टित लकारों के थास् प्रत्यय को से आदेश हो ॥ ८० ॥

लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥ ८१ ॥

लिटः, तझयोः, ए० च् । लिडादेशयोस्तझयोर्यथासङ्ख्यमेश् इरेच् इतीमावादेशौ स्याताम् । यथा—असौ न लेभे भवदीय कीर्त्तिम् । ते लेभिरे चोत्तम वेदबोधम् ॥

उसने आपकी कीर्त्ति प्राप्त नहीं की । उन्हों ने सर्वोत्तमवेद के ज्ञान को प्राप्त किया ॥ लिट् लकार के त और झ को क्रमशः एश् और इरेच् आदेश हो ॥८१ ॥

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुस-णल्वमाः ॥ ८२ ॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयो नवक्रमादादेशाः स्युः । यथा—पपाच । पेचतुः । पेचुः । पेचिथ, पपक्थ । पेचथुः । पेच । पपाच, पपच । पेचिव । पेचिम ॥

उसने पकाया ॥ परस्मैपद संज्ञक तिप् आदि नव प्रत्ययों के स्थान में यथाक्रम णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म, ये नव प्रत्यय आदेश हों॥ ८२ ॥

विदो लटो वा ॥ ८३ ॥

विदः, लटः, वा । वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः । यथा—वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्षे वेत्ति । वित्तः । विदन्ति । वेत्सि । वित्थः । वित्थ । वेद्मि । विद्वः । विद्मः ॥

वह जानता है ॥ विद् धातुके लट् लकार सम्बन्धी परस्मैपद प्रत्ययओं को णलादि नव आदेश विकल्प से हों ॥ ८३ ॥

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥ ८४॥

ब्रुवः, प० म्, आदितः, आहः, ब्रुवः। ब्रुवो लटः परस्मैपदानामादितः पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युः ब्रुवश्चाहादेशः। यथा—आह। आहतुः। आहुः। आत्थ। आहथुः। पक्षे। ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रवीषि। ब्रूथः ॥

वह बोलता है ॥ ब्रूञ् धातु के लट् लकार सम्बन्धी परस्मैपद के तिप् आदि पांच वचनों को क्रमसे णल् आदि पांच आदेश विकल्प से और ब्रू धातु को आह आदेश हो ॥ ८४ ॥

लोटो लङ्वत् ॥ ८५ ॥

लोटः, लङ्वत्। लोटो लङ्वत् कार्यं स्यात्। तामादयः सलोपश्च। यथा—पचताम्। पचतम्। पचत। पचाव। पचाम ॥

लोटलकार का लङ् के सदृश कार्य हो ॥ ८५ ॥

एरुः ॥ ८६ ॥

एः, उः। लोडादेशस्येकारस्योकारादेशः स्यात्। यथा—पठतु। पठन्तु ॥

वह पढ़े। वे दोनों पढ़ें ॥ लोट् लकार के स्थान में जो इकारादेश उसको उकारादेश हो ॥ ८६ ॥

सेर्ह्यपिच्च ॥ ८७ ॥

से:[६], हि[१], अपित्, च[अ]। लोटः सेर्हिस्यादसावपिच्च । यथा–लुनीहि । पुनीहि ॥

काट । पवित्रकर ॥ लोट् की सि को अपित् (प जिसका इत् न गया हो) हि आदेश हो ॥ ८७ ॥

वाच्छन्दसि ॥ ८८ ॥

वा, छं० सि । छन्दसि विषये वाऽपित्वं लोटो हि स्यात् । यथा–जुहोधि । जुहुधि ॥

यज्ञ कर ॥ छन्दोविषय में लोट्लकार की सि को विकल्प से अपित् हि आदेश हो ॥

मेर्निः ॥ ८९ ॥

मे:[६], निः । लोडादेशस्य मेर्निः स्यात् । यथा–गच्छानि । पठानि ॥

जाऊं । पढूं । लोट्लकार के स्थान में जो मि आदेश उसको नि हो ॥ ८९ ॥

आमेतः ॥ ९० ॥

आम्[१], एतः[६] । लोट एकारस्य आमादेशः स्यात् । यथा–एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥

वह बढ़े । वे दोनों बढ़े । वे बढ़ें ॥ लोट् लकार सम्बन्धी एकार को आम् आदेश हो ॥ ९० ॥

सवाभ्यां वामौ ॥ ९१ ॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वा, अम् इमावादेशौ स्याताम् । यथा–एधस्व । एधध्वम् ॥

१-(६ । ४ । ११३) इतीत्वम् ॥ २-(२ । ४ । ७६) इति शपः श्लौ द्विर्वचनम् । (६ । ४ । १०१) इति हेर्धिः ॥

तू वद । तुम वदो । सकार और वकार से परे लोट्लकार सम्बन्धी ए को व और अम् आदेश हो ॥ ९१ ॥

आडुत्तमस्य पिच्च ॥ ९२ ॥

आट्, उत्तमस्य. पित्. च। लोडुत्तमस्याडागमः स्यादसावपिच्च। यथा-करवाणि । करवाव । करवाम। करवै । करवावहै। करवामहै ॥

मैं करूं । हम दोनों करें । हम करें ॥ लोट्लकार सम्बन्धी उत्तमपुरुषको आट् का आगम हो और वह अपित् हो ॥ ९२ ॥

एत ऐ ॥ ९३ ॥

एतः, ऐ। लोडुत्तमस्य पुरुषस्य एत ऐ स्यात्। यथा-एधै। एधावहै। एधामहै ॥

मैं बढूं । हम दोनों बढ़ें । हम बढ़ें ॥ लोट्लकार के उत्तमपुरुष सम्बन्धी एकार को ऐकारादेश हो ॥ ९३ ॥

लेटोऽडाटौ ॥ ९४ ॥

लेटः, अडाटौ । लेटः अट् आट् इमावागमौ स्याताममूचपितौ। यथा-भाविषति । भाविषाति ॥

वह होवे ॥ लेट्लकार को अट् और आट् का पर्याय से आगम हो और पित् हो

आत ऐ ॥ ९५ ॥

आतः, ऐ। लेट् आकारस्य ऐ स्यात्। यथा-एधिषैते २ । एधैते २॥

वे दोनों बढ़ें ॥ लेट्लकार सम्बन्धी आकार को ऐकारादेश हो ॥ ९५ ॥

वैतोऽन्यत्र ॥ ९६ ॥

वा, एतः, अन्यत्र । लेट् लकारस्य ऐ वा स्यात्, आत ऐ इति

विषयं विहाय । यथा—एधिषतै । एधिषातै । एधिषते । एधिषाते । एधतै । एधातै । एधते । एधाते ॥

"आतऐ" इस सूत्र के विषय को छोड़कर अन्यत्र(दूसरे स्थानपर)लेट्सम्बन्धी ए को विकल्प से ऐ आदेश हो ॥ ९६ ॥

इतश्च लोपःपरस्मैपदेषु ॥ ९७ ॥

इतः, च, लोपः, प०बु । लेट् सम्बन्धिन इकारस्य परस्मैपद विषयस्य लोपोवा स्यात् । यथा—भाविषत् । भाविषात् । भविषत् । भविषात् । भवत् । भवात् । (झलां जशोन्त इतिदः ।) भाविषद् । भाविषाद् । भाविषद् । भविषाद् । भवद् । भवाद् । पक्षे । भाविषाति । भाविषाति । भविषति । भविषाति । भवति । भवाति ॥

वहहो ॥ लेट्लकार सम्बन्धी परस्मैपद विषयक इकारका विकल्पसे लोपहो ॥९७॥

सउत्तमस्य ॥ ९८ ॥

सः, उ०स्य । लेडुत्तम पुरुषस्य सस्य लोपोवा स्यात् । यथा—भाविषाव २ । भाविषावः २ । भविषाव २ । भविषावः २ । भवाव २ । भवावः २ । भाविषाम २ । भाविषामः २ । भविषाम २ । भविषामः २ । भवाम २ । भवामः २ ॥

लेट्लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प से लोप हो ॥ ९८ ॥

नित्यं ङितः ॥ ९९ ॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमपुरुषस्य नित्यं लोपः स्यात् । यथा—अपचाव । अपचाम ॥

हम ने पकाया । हम दोनों ने पकाया ॥ ङित् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का नित्य लोप हो ॥ ९९ ॥

इतश्च ॥ १०० ॥

इतः च । ङिल्लकार सम्बन्धिन इकारस्य नित्यं लोपः स्यात् । यथा-अपठत् । अपाठीत् ॥

उस ने पढ़ा । ङित् लकार सम्बन्धी परस्मैपदीय इकारका नित्यलोप हो ॥ १०० ॥

तस्थस्थमिपां तान्तंतामः ॥ १०१ ॥

ङितश्चतुर्णां तामादयःक्रमादादेशास्स्युः । यथा-भवताम् । भवतम् । भवत । अभवम् । लोटोलङ्वत्कार्यंज्ञेयम् ॥

ङित् लकारों के तस्, थस्, थ और मिप् को क्रमशः ताम्, तम्, त और अम् आदेश हों ॥ १०१ ॥

लिङः सीयुट् ॥ १०२ ॥

लिङात्मने पदस्य सीयुडागमः स्यात् । यथा-एधेत । एधेयाताम् । एधेरन् ॥

आत्मनेपदीय लिङादेशों को सीयुट् का आगम हो ॥ १०२ ॥

यासुट्परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च ॥ १०३ ॥

यासुट्. प०पुं, उ०त्तः, ङित्, च । परस्मैपदानां लिङो यासुडागमः स्यात्, सचोदात्तोङिच्च । यथा-कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः ॥

वहकरे । वेदोनों करें । वेकरें ॥ परस्मैपद विषयक लिङ्लकार को ङित् और उदात्त यासुट् का आगम हो ॥ १०३ ॥

किदाशिषि ॥ १०४ ॥

कित्, आशिषि। आशिषि लिङो यासुडागमः किच्च स्यात्। यथा—सविद्वान् भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म॥

ईश्वर करे वह विद्वान होवे॥ परस्मैपद विषयक आशिष् लिङ् में यासुट् का आगम हो और वह कित् समझा जावे॥ १०४॥

झस्य रन्॥ १०५॥

लिङो झस्य रनादेशः स्यात्। यथा--यजेरन्। पचेरन्॥

वे यज्ञ करें। वे पकावें॥ लिङ् सम्बन्धी झकार को रन् आदेश हो॥ १०५॥

इटोत्॥ १०६॥

इटः, अत्। लिङादेशस्येटोऽत् स्यात्। यथा--अधीयीय॥

मैं पढ़ूं॥ लिङादेश इट् को अत् (अ) आदेश हो॥ १०६॥

सुट् तिथोः॥ १०७॥

लिङस्तकारथकारयोः सुडागमः स्यात्। यथा--कृषीष्ट। कृषीयास्ताम्। कृषीरन्। कृषीष्ठाः। कृषीयास्थाम्॥

वह जोते॥ लिङ्लकार सम्बन्धी तकार और थकार को सुट् का आगम हो॥ १०७॥

झेर्जुस्॥ १०८॥

झेः, जुस्। लिङादेशस्य झेर्जुसादेशः स्यात्। यथा--यजेयुः॥

वे यजन करें॥ लिङादेश (लिङ्लकार के स्थान में जो हुआ आदेश) झि को जुस् आदेश हो। १०८॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च॥ १०९॥

सि०भ्यः, च । सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च परस्य ङित् सम्बन्धिनो झेर्जुसादेशः स्यात् । यथा-(सिचः) अकार्षुः । अहार्षुः । अभ्यस्तात् । अबिभयुः । अजागरुः । विदेः । अविदुः ॥

उन्हों ने किया । उन्हों ने हरलिया । वेडरे । वे जागे : उन्हों ने जाना ॥ सिच् अभ्यस्त संज्ञक और विद धातु से परे झि को जुस् आदेश हो ॥ १०९ ॥

आतः ॥ ११० ॥

सिच आकारान्ताच्च परस्य झेर्जुसादेशः स्यात् । यथा-अस्थुः । अदुः ॥

वे ठहरे ॥ उन्हों ने दिया ॥ जिससे परे सिच् प्रत्यय का लुक् हुआ हो तो ऐसे आकारान्त धातु से परे जो झि उसको जुस् आदेश हो ॥ ११० ॥

लङः शाकटायनस्यैव ॥ १११ ॥

लङः, शा०स्य, एव । आकारान्तादुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुसादेशो वा स्यात् । यथा-अयुः । अयान् ॥

वे प्राप्त हुये ॥ आकारान्त धातु से परे लङादेश झि को शाकटायनके मत में जुस् आदेश हो ॥ १११ ॥

द्विषश्च ॥ ११२ ॥

द्विषः, च । द्विषः परस्य लङादेशस्य झेर्जुसादेशो वा स्यात् । यथा--अद्विषुः । अद्विषन् ॥

उन्हों ने वैरकिया ॥ द्विष्धातु से परे लङादेश झि को शाकटायन के मत में ही जुस् आदेश हो ॥ ११२ ॥

तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥ ११३ ॥

तिङः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधातुक सञ्ज्ञकाः स्युः। यथा--नयति। स्वपिति। रोदिति। पचमानः। यजमानः॥

लेजाता है। सोताहै। रोता है। पकाताहुआ। यजन करता हुआ॥ तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुक संज्ञक हों॥ ११३॥

आर्द्धधातुकं शेषः॥ ११४॥

तिङः शितश्च विहायान्यः प्रत्त्यय आर्द्धधातुकसञ्ज्ञकःस्यात्। यथा-लविता। लवितुम्। लवितव्यम्॥

धातु से विहित तिङ् और शित से भिन्न प्रत्यय आर्द्धधातुकसंज्ञक हो ११७

लिट् च ॥ ११५॥

लिडादेशस्तिङार्द्ध धातुकसञ्ज्ञः स्यात्। यथा–पेचिथ॥

तूने पकाया था॥ लिट् के स्थान में हुये तिङादेश आर्द्धधातुकसंज्ञक हों ११५

लिङाशिषि ॥ ११६॥

लिङ्, आशिषि। आशिषिविषये यो लिङ् स आर्द्धातुधाकसंज्ञकः स्यात्। यथा–पविषीष्ट॥

ईश्वर! वह पवित्र करे॥ आशीर्विषय में लिङ् आर्द्धधातुकसंज्ञक हो॥११६॥

छन्दस्युभयथा ॥ ११७॥

छन्दसि, उ० था। छन्दसिविषये उभयथा स्यात्। सार्वधातुक-मार्धधातुकं च। यथा–वर्धन्तु। वर्धयन्तु। आर्द्धधातुकत्वाणणिलोपः॥

बढावें॥ छन्दोविषय में उभयथा कार्य हो॥ ११७॥

इति तृतीयाऽध्यायस्य चतुर्थपादः समाप्तः॥

अथ चतुर्थाध्यायारम्भः ॥

प्रथमः पादः ॥

ङ्याप् प्रातिपदिकात् ॥ १ ॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्चेत्यापञ्चमाध्याय परि समाप्तेरधिकारः॥

ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से पञ्चमाध्याय की समाप्ति पर्य्यन्त स्वादि प्रत्यय विधान कियेजाते हैं, यह अधिकार जानना चाहिये ॥ १ ॥

स्वौजस् मौट् छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसि भ्या म्भ्यस् ङसोसाम् ङ्योस्सुप् ॥ २ ॥

ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः। ङ्यन्तात्। यथा—कुमारी। कुमार्य्यौ। कुमार्य्यः १ कुमारीम्। कुमार्य्यौ। कुमारीः २ कुमार्य्या। कुमारीभ्याम्। कुमारीभिः ३ कुमार्य्यै। कुमारीभ्याम्। कुमारीभ्यः ४ कुमार्याः। कुमारीभ्याम्। कुमारीभ्यः ५ कुमार्य्याः। कुमार्य्योः। कुमारीणाम् ६ कुमार्य्याम्। कुमार्योः। कुमारीषु ७ हे कुमारि!। हे कुमार्य्यौ!। हे कुमार्य्यः!। आपः। यशोदा। यशोदे। यशोदाः १ यशोदाम्। यशोदे। यशोदाः २ यशोदया। यशोदाभ्याम्। यशोदाभिः ३ यशोदायै। यशोदाभ्याम्। यशोदाभ्यः ४ यशोदायाः। यशोदाभ्याम्। यशोदाभ्यः ५

१-(६।१।६८) इति सुलोपः ॥ २-(७।३।१०७) इति ह्रस्वत्वम् ॥

यशोदायाः । यशोदयोः । यशोदानाम् ६ यशोदायाम् । यशोदयोः । यशोदासु ७ हे यशोदे ! । हे यशोदे ! । हे यशोदाः ! । प्रातिपदिकात् । दृषद् । दृषदौ । दृषदः । दृषदम् । दृषदौ । दृषदः । दृषदा । दृषद्भ्याम् । दृषद्भिः । दृषदे । दृषद्भ्याम् । दृषद्भ्यः । दृषदः । दृषद्भ्याम् । दृषद्भ्यः । दृषदः । दृषदोः । दृषदाम् । दृषदि । दृषदोः । दृषत्सु । हे दृषद् ! । हे दृषदौ ! । हे दृषदः ! ॥

ङ्यन्त (ङी प्रत्यय जिसके अन्तमें हों) आबन्त (आप्प्रत्यय जिसके अन्तमें हो) और प्रतिपदिक से सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस् ओस्, आम्, ङि, ओस्, सुप् ये २१ प्रत्यय हों ॥ २ ॥

स्त्रियाम् * ॥ ३ ॥

अधिकारोऽयम् । समर्थानामिति यावत् ॥

स्त्रीलिङ्गमें प्रत्यय हो यह (४ । १ । ८२) सूत्रतक अधिकार है ॥ ३ ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥ ४ ॥

अ० तः, टाप् । अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां टाप् स्यात् । यथा—अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । एषु जातिलक्षणोङीष्प्राप्तः । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । एषुवयसि प्रथम इति ङीप्प्राप्तः ॥ (संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्) ॥ सम्फला । भस्त्रफला । ङ्यापोरितिह्रस्वः ॥ (सत्प्राक्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्) ॥ सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । काण्डपुष्पा । प्रान्तपुष्पा । शतपुष्पा । एकपुष्पा ॥ (शूद्राचामहत्पूर्वाजातिः) ॥

१-(७ । ३ । १०६) इत्योप एकारः ॥

* स्तनकेशवती स्त्रीस्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः । उभयोरन्तरं यच्चतदभावेनपुंसकम् ॥

क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमेतिपुंयोगेऽपि । कोकिला जातावपि ॥ (मूलान्नञः) ॥ अमूला ॥

अजादि और अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

ऋन्नेभ्योङीप् ॥ ५ ॥

ऋ० भ्यः, ङीप् । ऋकारान्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा—कर्त्री । हर्त्री । धनिनी । छत्रिणी ॥

ऋकारान्त और नान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

उगितश्च ॥ ६ ॥

उगितः, च । उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा-भवतीक्वयाति । पचन्तीगायति । दीव्यन्ती । शप्श्यनोरितिनुम् ॥ (धातोरुगितः प्रतिषेधोवाच्यः) ॥ उखास्रत् । पर्णध्वत् ब्राह्मणी ॥ (अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम्) ॥ प्राची । प्रतीची । उदीची ॥

उगिदन्त प्रादिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

वनोरच ॥ ७ ॥

वनः, र, अ च । वन्नन्तात्तदन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् रश्चान्तादेशः । वन्निति ङ्वनिप् क्वनिप् वनिपां सामान्य ग्रहणम् । यथा—धीवरी । अतिधीवरी । पीवरी । शर्वरी ॥

वन्नन्त और तदन्द प्रादिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

पादोऽन्यतरस्याम् ॥ ८ ॥

पादः, अ० अम् । पाच्छब्दः कृतसमासान्तः । तदन्तात् प्रातिपदि-

कात् स्त्रियां ङीब्वास्यात् । यथा--द्विपदी, द्विपात् । त्रिपदी, त्रिपाद् । चतुष्पदी, चतुष्पाद् ॥

पादन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्पसे ङीप् प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

टाबृचि ॥ ९ ॥

टाप्, ऋचि । ऋचि वाच्यायां पादान्ताट्टाप् स्यात् । यथा-द्विपदा ऋक् । त्रिपदा । एकपदा ॥

ऋक् वाच्य होतो पादन्तप्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् टापौ न स्याताम् । यथा--पञ्च । षट् । सप्त । नव । दश । स्वस्रादिभ्यः । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्रः । चतस्रः ॥

षट्संज्ञक और स्वस्रादि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में टाप् और ङीप् प्रत्यय नहीं १०

मनः ॥ ११ ॥

मन्नन्तात् प्रातिपदिकान्नङीप् । यथा—सीमा । सीमानौ । सीमानः । दामा । दामानौ । दामानः ॥

मन्नन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ११ ॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ १२ ॥

अनः, बं० हेः । अन्नन्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीप् न स्यात् । यथा—बहुयज्वा । बहुयज्वानौ । बहुयज्वानः ॥

अन्नन्तबहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय नहो ॥ १२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ १३ ॥

डाप्, उ० मॆ. अ०म। सूत्रद्वयोपात्ताभ्यां डाब् वा स्यात्। यथा-सीमा, सीमे, सीमाः।सीमा, सीमानौ, सीमानः। बहुयज्वा। बहुयज्वे। बहुयज्वाः। बहुयज्वा। बहुयज्वानौ बहुयज्वान ॥

मन्नन्त और अन्नन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके डाप् प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

अनुपसर्जनात् ॥ १४ ॥

अधिकारोऽयम्। यूनस्तिरित्यभिव्याप्य ॥

(४। १। ७७) इस सूत्रतक अनुपसर्जन प्रातिपदिकसे प्रत्यय विधान किया जाता है यह अधिकार है ॥ १४ ॥

टिड्ढाणञ् द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप् ठक् ठञ् कञ् क्वरपः॥ १५॥

टिदादिभ्य[x] प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् स्यात्। यथा-समाजचरी[1]। ढस्य। सौभेद्रेयी[2]। अणः। कुम्भकारी[3]। अञः। औत्सी[4]। द्वयसजः। ऊरुद्वयसी[5]। दघ्नचः। उरूदघ्नी। जानुदघ्नी। मात्रचः। ऊरुमात्री। जानुमात्री। तयपः। पञ्चतयी[6]। दशतयी। ठकः। आक्षिकी[7]। ठञः। लावणिकी[8]। कञः। यादृशी[9]। तादृशी। क्वरपः। इत्वरी[10] ॥ (नञ् स्नञी कक् तरुण तलुनानामुपसङ्ख्यानम्) ॥ स्त्रैणी[11]। पौस्नी। शाक्तीकी[12]। याष्टीकी। तरुणी। तलुनी ॥

१—चरेष्टः, कर्त्तरि टः। २—स्त्रीभ्योढक्। [७। १। २] इत्येयादेशः। ३—कर्मण्यण्। ४—उत्से भवा ' उत्सादिभ्योऽञ्। ५ऊरू प्रमाणमस्याः असौ। 'प्रमाणे द्वयसच् दघ्नञ्मात्रचः। ६—पञ्च अबयवा यस्याः, संख्याया अवयवे तयप्। ७—तेन दीव्यति—, इति ठक्। ८लवणं पण्यमस्याः। ' लवणाठ्ञ्। ९—त्यदादिषु दृशः—इति कञ्। आसर्वनाम्नः, इत्याकारः। १०-एतितच्छीला। इण् नश जिसर्त्तिभ्यः-क्वरपः। ह्रस्वस्यापिति कृतितुक्। ११—स्त्रीपुंसाभ्याम्—इति नञ्स्नञौ १२—शक्तिग्रहणमस्याः शक्तियष्ट्योरीकक्।

टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और करप् ये ग्यारह प्रत्यय जिन के अन्त में हों उन अनुपसर्जनों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ १५ ॥

यञश्च ॥ १६ ॥

यञः, च । यञन्ताच्च प्रातिपदिकात्स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा-गार्गी । वात्सी ॥

यञन्त प्रादिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

प्राचांष्फ तद्धितः ॥ १७ ॥

यञन्तात्ष्फो वा स्यात् स्त्रियां स च तद्धितः । यथा-वात्स्यायनी । वात्सी ॥

प्राग्देशी आचार्यों के मत से स्त्रीलिङ्ग में यञन्त प्रातिपदिक से ताद्धित संज्ञकफ प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ १८ ॥

लोहितादिभ्यः कतशब्दान्तेभ्यो यञन्तेभ्यो नित्यं ष्फः स्यात् । यथा-लौहित्यायनी । कात्यायनी ॥

लोहित, कत शब्दान्त यञन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में नित्यष्फ प्रत्यय हो १८

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥ १९ ॥

कौरव्य माण्डूक शब्दाभ्यां स्त्रियां ष्फः स्यात् । यथा-(कुर्वादिभ्यो ण्यः) कौरव्यायणी । ढक् च मण्डूकादित्यण् । माण्डू-

१-[६ । ४ । १५०] इति यकार लोपः । २-[७ । १ । २] इति फस्यायन् ।

कायनी ॥ (आसुरे रूपसङ्ख्यानम्) ॥ आसुरायणी ॥

ण्यन्य कौरव्य और मण्डूकशब्द से स्त्रीलिङ्ग में ष्फ प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

वयसि प्रथमे ॥ २० ॥

प्रथमवयो वाचिनोऽदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा--कुमारी । किशोरी ॥ (वयस्यचरमइतिवाच्यम्) ॥ वधूटी । चिरण्टी ॥

स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धी प्रथमावस्था वाच्य होतो अदन्त प्रातिपदिकसे ङीप्प्रत्ययहो॥२०

द्विगोः ॥ २१ ॥

द्विगुसंज्ञकाददन्तात् प्रातिपदिकात् ङीप् स्यात् । यथा त्रिलोकी । दशपूली ॥

द्विगुसंज्ञक अजन्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बलेभ्योन-तद्धितलुकि ॥ २२ ॥

अ० भ्यः, न, त० कि । अपरिमाणान्ताद् विस्ताद्यन्ताच्च द्विगो ङीप् न स्यात् तद्धित लुकि सति । यथा--पञ्चभिरश्वैः क्रीता--पञ्चाश्वा । आर्हीयष्ठक् । अध्यर्धेति लुक् । द्वौ बिस्तौ पचति-द्विबिस्ता । त्र्याचिता । द्विकम्बल्या । परिमाणान्तात्तु द्व्याढकी ॥

१--वधूट चिरण्टशब्दौ यौवन वाचिनौ । २--त्रयाणां लोकानां समाहारे तद्धितार्थे इति द्विगुः । अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः--इति स्त्रीत्वम् ।

३-(द्वावाढकौ पचतीति विग्रहे 'आढकाचित पात्रात् खोऽन्यतरस्याम्, द्विगोष्ठंश्च, इति खठनौ विहितौ ताभ्यां मुक्ते प्राग्वतीयष्ठञ् । तस्य 'अध्यर्ध-' इति लुक् ।

तद्धित लुक् होनेपर अपरिमाणान्त विस्तान्त आचितान्त और कम्बल्यान्त अदन्त द्विगु प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग वाच्य में ङीप् न हो ॥ २२ ॥

काण्डान्तात् क्षेत्रे ॥ २३ ॥

क्षेत्रे यः काण्डान्तो द्विगुस्ततो न ङीप् स्यात् तद्धित लुकि सति । यथा -द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः ॥

क्षेत्र वाच्य हो तो तद्धित लुक् होनेपर काण्ड शब्दान्त द्विगु से स्त्रीलिङ्ग वाच्य में ङीप् प्रत्यय न हो ॥ २३ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ २४ ॥

प्रमाणे यः पुरुषशब्दस्तदन्ताद् द्विगोर्वा ङीप् स्यात् तद्धितलुकि सति । यथा—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः सा द्विपुरुषी पुरुषा वा परिखा॥

प्रमाण में जो पुरुष शब्द तदन्त द्विगु से तद्धित लुक् होने पर स्त्रीलिङ्गवाच्य में विकल्प से ङीप् प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ २५ ॥

वं० हेः, ऊं० सः, ङीषं । ऊधस् शब्दान्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा—घटोध्नी । कुण्डोध्नी ॥

ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीष् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

सङ्ख्याव्ययादेर्ङीप् ॥ २६ ॥

सं० देः, ङीपं । सङ्ख्यादेरव्ययादेश्च बहुव्रीहेरूधश्शब्दान् ङीप् स्यात् । यथा—द्व्यध्नी । अत्यूध्नी ॥

१-प्रमाणे द्वय सजिति विहितस्य मात्रचः प्रमाणे लो द्विगो र्नित्यमिति लुक् ॥ २-(५ । ४ । १३१) इत्यनङादेशः ॥

सङ्ख्यादि और अव्ययादि ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

दामहायनान्ताच्च ॥ २७ ॥

दाँ० त, चा अ सङ्ख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताच्च स्त्रियां ङीप् स्यात्।यथा-द्विदाम्नी । द्विहायनी । (त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्) ॥ वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते॥त्रिहायणी ।चतुर्हायणी ॥

सङ्ख्यादि दामान्त और हायनान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्यमें ङीप् प्रत्ययहो॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्॥२८॥

अँनः, उ० नः, अ० स्। आ अन्नन्ताद् बहुव्रीहेरुपधालोपि नो वा ङीप् स्यात् । यथा-बहुराज्ञी, बहुराजा । बहुतक्ष्णी, बहुतक्ष्णा ॥

उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके ङीप् प्रत्ययहो॥२८॥

नित्यं सञ्ज्ञाच्छन्दसोः ॥ २९ ॥

अन्नन्ताद् बहुव्रीहेरुपधा लोपिनः संज्ञायां विषये छन्दसि च नित्यं ङीप् स्यात् । यथा-सुराज्ञी नाम नगरी । शतमूर्ध्नी ॥

संज्ञा और छन्द विषय में उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्गवाच्य में नित्य ङीप् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

केवलमामकभागधेयपापापर समानार्य्यकृत सुमङ्गलभेषजाच्च॥३०॥

के० तं, च अ। केवलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सञ्ज्ञायां विषये छन्दसि च स्त्रियां ङीप् स्यात् । यथा-केवली । मामकी। भागधेयी।

पापी । अपरी । समानी । आर्य्यकृती । सुमङ्गली । भेषजी । अन्यत्रकेवला इत्यादि ॥

संज्ञा और छन्दो विषय में केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमङ्गल, भेषज इन नव प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥३०॥

रात्रेश्चाजसौ ॥ ३१ ॥

रात्रेः, च, अजसौ । रात्रिशब्दान् ङीप् स्यात् अजस्विषये छन्दसि । यथा–ह्वयामि रात्रीं जगतोनिवेशनीम् ॥

छन्दो विषय में जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्गवाच्य में रात्रिशब्द से ङीप् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ३२ ॥

अं० तोः, नुक् । एतयोः स्त्रियां नुगागमः ङीप् च स्यात् । यथा–अन्तर्वत्नी–गर्भिणी । पतिवत्नी, जीवितपतिः ॥

अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से स्त्रीलिङ्ग वाच्य में ङीप् प्रत्यय और दोनों को नुक् का आगम हो ॥ ३२ ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ३३ ॥

पत्युः, नः, यं० गे । यज्ञेन सम्बन्धे पतिशब्दस्य नकारादेशः स्यात् । यथा–वसिष्ठस्य पत्नी । तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीत्यर्थः । दम्पत्योः सहाधिकारात् ॥

यज्ञ के साथ संयोग होनेपर स्त्रीलिङ्ग वाच्य में पतिशब्दको नकारादेश हो ३३

विभाषा सपूर्वस्य ॥ ३४ ॥

पतिशब्दान्तस्य सपूर्वस्य प्रातिपदिकस्य नो वा स्यात्। यथा-वृद्धस्य पतिः। वृद्धपतिः। वृद्धपत्नी॥

सपूर्वक पतिशब्दान्त प्रातिपदिक को स्त्रीलिङ्गवाच्य में विकल्प करके नकारान्तादेश हो

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ३५ ॥

सपत्न्यादिषु नित्यं पत्युर्नकारादेशः स्यात्। यथा-समानः पतिर्यस्याः--सा सपत्नी। एकपत्नी। वीरपत्नी। भ्रातृपत्नी। पुत्रपत्नी॥

समानादि शब्द जिसके पूर्व हैं ऐसे पतिशब्द को स्त्रीलिङ्गवाच्य में नित्य नकारान्तादेश हो॥ ११॥

पूतक्रतो रै च॥ ३६ ॥

पूं० तोः, ऐ, च। पूतक्रतुशब्दस्य स्त्रिया मैकारान्तादेशो ङीप् च स्यात्। इयं त्रिसूत्री पुंयोग एवेष्यते। यथा-पूतक्रतोः स्त्री--पूतक्रतायी। यया तु क्रतवः पूताः स्यात् पूतक्रतु रेवसा॥

पूत क्रतु शब्द से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय और अन्त को ऐकारादेश हो

वृषाकप्यग्नि कुसित कुसीदाना-मुदात्तः॥ ३७ ॥

वृं० म्, उं० त्तः। एषामुदात्त ऐ आदेशः स्यात् ङीप् च। यथा--वृषाकपेः स्त्री--वृषाकपायी। अग्नायी। भूस्थान देवता। कुसितायी। कुसीदायी॥

वृषाकपि, अग्नि, कुसित और कुसीद शब्द से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीप् प्रत्यय और अन्त को उदात्त ऐ आदेश हो॥ ३७॥

मनोरौ वा ॥ ३८ ॥

मनोः, औ, वा । मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्तौकारश्च वा ताभ्यां सन्नियोगविशिष्टो ङीप् च । यथा—मनोः स्त्री—मनावी । मनायी । मनुः ॥

स्त्रीलिङ्गवाच्य होनेपर मनुशब्दसे विकल्प करके उदात्त औकारादेश और ङीप् प्रत्ययहो ॥ ३८ ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ३९ ॥

वर्णाद्, अ० त्, तो० तः, नः । वर्णवाचिनः प्रातिपदिकादनुदात्तान्तात्तकारोपधाद् वा ङीप् स्यात् तकारस्य नकारादेशश्च । यथा—एनी । एता । रोहिणी । रोहिता ॥

तोपधवर्णवाची अनुदात्तान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गवाच्य में विकल्प करके ङीप् प्रत्यय और तकार को नकारादेशहो ॥ ३९ ॥

अन्यतो ङीष् ॥ ४० ॥

अ० तः, ङीष् । तोपधभिन्नाद् वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा—कल्माषी । सारङ्गी ॥

तोपध से इतरवर्णवाची अनुदात्तान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गवाच्य में ङीष् प्रत्ययहो ॥ ४० ॥

षिद् गौरादिभ्यश्च ॥ ४१ ॥

षि० भ्यः, च । षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा—नर्त्तकी । गौरी । अनड्वाही । अनडुही ॥ (पिप्पल्यादयश्च)॥ पिप्पली । हरीतकी । आकृतिगणोऽयम् ॥

षित् (ष जिसका इत् गया हो) और गौरादि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

जानपद कुण्ड गोणस्थल भाज नाग काल नील कुश कामुक कवराद् वृत्त्य मत्रा वपना कृत्रिमा श्राणास्थौ-ल्य वर्णाना च्छादनाऽयो विकार मै-थुनेच्छा केशवेशेषु ॥ ४२ ॥

जानपदादिभ्य एकादशभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः क्रमाद् वृत्त्यादि ष्वर्थेषु ङीष् स्यात् । यथा—जानपदी वृत्तिश्चेत् । अन्यातु जनपदी, स्वैरीविशेषः । कुण्डी अमत्रं चेत् । कुण्डान्या । गोणी आवपनंचेत् । गोणान्या । स्थलीअकृतिमाचेत् । स्थलान्या । भाजी श्राणाचेत् । भाजान्या । नागीस्थूलाचेत् । नागान्या । कालीवर्णश्चेत् । का-लान्या । नीली अनाच्छादनंचेत् । नीलाऽन्या । नील्या रक्ता शा-टीत्यर्थः । नील्या अन्वक्तव्य इत्यन् । अनाच्छादनेपि न सर्वत्रकिन्तु ॥ (नीलादौषधौ) ॥ नीली ॥ (प्राणिनिच) ॥ नीलीगौः ॥ (सं-ज्ञायां वा) ॥ नीली । नीला । कुशी अयोविकारश्चेत् । कुशान्या । कामुकी मैथुनेच्छाचेत् । कामुकान्या । कबरी केशनां सन्निवेशवि-शेषः । कबरान्या । चित्रेत्यर्थः ॥

वृत्ति, अमित्र, आवपन, अकृतिमा, श्राणा, स्थौल्य, वर्ण, अनाच्छादन, अयोवि-कार, मैथुनेच्छा, केशवेश ये अर्थ वाच्य होंतो यथासङ्ख्य जानपद, कुण्ण, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक और कबर प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४२ ॥

शोणात् प्राचाम् ॥ ४३ ॥

शोणशब्दात् प्राचामाचार्याणां मतेनास्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा-शोणी। शोणा॥

प्राग्देशीय आचार्यों के मत में शोण (सिन्दूर) शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो॥ ४३॥

वोतो गुणवचनात्॥ ४४॥

वा०उतः, गु०त्। उदन्ताद् गुणवचनात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां वा ङीष् स्यात्। यथा-पट्वी। पटुः। मृद्वी। मृदुः॥ (खरुसंयोगोपधान्न)॥ खरुः पतिंवराकन्या। पाण्डुरियंखड्वा॥

उकारन्त गुणवाची प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे ङीष् प्रत्यय हो॥ ४४॥

बह्वादिभ्यश्च॥ ४५॥

ब०भ्यः, च। बहु इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् स्यात। यथा-बह्वी। बहुः। कृदिकारादक्तिनः। रात्रिः। रात्री। सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके। शकटिः। शकटी॥

बहु आदि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्पकरके ङीष् प्रत्यय हो॥ ४५॥

नित्यं छन्दसि॥ ४६॥

बह्वादिभ्यश्छन्दासि विषये नित्यं स्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा-बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥

हे परेश! सर्वपदार्थ तथा पशुओं की रक्षा कीजिये। बहु आदि प्रातिपदिकों से छन्दो विषय होनेपर स्त्रीलिङ्ग में नित्य ङीष् प्रत्यय हो॥ ४६॥

भुवश्च॥ ४७॥

भुवः, च । छन्दसि विषये स्त्रियां भुवोनित्यं ङीष् स्यात् । यथा-विभ्वी ॥

भूशब्द से स्त्रीलिङ्ग में छन्दोविषय होनेपर नित्य ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ४८ ॥

पु०तं०आं०म् । या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्त्तते ततोङीष् स्यात् । यथा-गोपस्यस्त्री गोपी । गणकस्यस्त्री-गणकी । (पालकान्तान्न) ॥ गोपालिका ॥ सूर्य्यदेवतायां चाप्वाच्यः) सूर्यस्यस्त्रीदेवतासूर्य्या ॥

जो पुमाख्या पुंयोगसे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान है उससे ङीष् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययव यवनमातुलाचार्य्याणामानुक् ॥४९ ॥

इ०म्, आं०क् । इन्द्रादीनामानुगागमो ङीष् च स्यात् । इन्द्रादीनांपणांमातुलाचार्ययोश्च पुंयोग एवेष्यते । तत्र ङीषिसिद्धे आनुगागममात्रं विधीयते इतरेषां चतुर्णामुभयं विधीयते । यथा-इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ॥ (हिमारण्ययोर्महत्वे) ॥ महद्धिमम्-हिमानी । महदरण्यम्-अरण्यानि ॥ (यवाद्दोषे) ॥ दुष्टो यवोयवानी ॥ (यवनाल्लिप्याम्) ॥ यवनानां लिपिर्यवानी ॥ (मातुलोपाध्याययोरानुग्वा) ॥ मातुलानी । मातुली । उपाध्यायानी । उपध्यायी ॥ (यातुस्वयमेवाध्यापिकातत्रवाङीष्) ॥ उपाध्यायी । उपाध्याया ॥ (आचार्यादणत्वंच) ॥ आचार्यस्य स्त्रीआचार्यानी । पुंयोग इत्येव । आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ॥

१-गा:पालयतीति गोपाल: स एव गोपालक: तस्यस्त्री त्यर्थः ॥

(अर्य्यक्षत्रियाभ्यांवास्वार्थे) ॥ अर्याणी । अर्या । स्वामिनी वैश्या वेत्यर्थः । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया । पुंयोगेतु । अर्यी । क्षत्रयी ॥

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यमज, मातुल, और आचार्य शब्द से यथा योग्य पुंयोगादि में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥ ५० ॥

क्रीतान्ताददन्तात्प्रातिपदिकात् करणादेः स्त्रियां ङीप् स्यात्।यथा-वस्त्रेण क्रीयतेऽसौ—वस्त्रक्रीती । क्वचिन्नो । धनक्रीता ॥

करणपूर्वक क्रीतान्त अदन्त प्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गवाच्यमें ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ५१ ॥

क्तादिं, अँ० म् । करणादेः क्तान्तात् स्त्रियां ङीप् स्यादल्पत्वे द्योत्ये । यथा—अभ्रलिप्ती द्यौः । अल्पैरभ्रैर्मेघैर्लिप्ता इत्यर्थः ॥

अल्पाख्या (कुछ कथन) द्योत्य हो तो करणपूर्वक क्तान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ५२ ॥

बँ० हेः, चँ, अँ० त् । बहुव्रीहेः क्तान्तादन्तोदात्तादन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । (जातिपूर्वादिति वाच्यम्) ॥ तेन बहु नञ् सुकालसुखादि पूर्वान्नो । यथा—ऊरुभिन्नी । नेह । बहु कृता । (जातान्न) ॥ दन्तजाता । (पाणि गृहीती) भार्य्याम् ॥ पाणिगृहीतान्या ॥

अन्तोदात्त क्तान्त अदन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय हो ॥ ५२ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा ॥ ५३ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदादन्तोदात्ताद्बहुव्रीहेः स्त्रियां वा ङीष् स्यात् । यथा-सुरापीती । सुरापीता । पीता । सुरा यया सा वित्यर्थः ॥

अस्वाङ्गपूर्वपद अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीष् प्रत्यय हो॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ॥५४

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्तादन्तात्प्रातिपदिकाद्वा ङीष् स्यात् । यथा-केशानतिक्रान्ता-अतिकेशी । अतिकेशा। चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा ॥

असंयोगोपध जो स्वाङ्ग तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से विकल्प कर ङीष् प्रत्यय हो

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ॥ ५५ ॥

नाॅ० त, च । एभ्यःप्रातिपदिकेभ्यो वा ङीष् स्यात् । यथा-तुङ्गनासिकी । तुङ्गनासिका । तिलोदरी । तिलोदरा । विम्बोष्ठी । विम्बोष्ठा । दीर्घजङ्घी । दीर्घजङ्घा । समदन्ती । समदन्ता । चारुकर्णी । चारुकर्णा । तीक्ष्णशृङ्गी । तीक्ष्णशृङ्गा ॥ (पुच्छाच्च) सुपुच्छी । सुपुच्छा ॥ (कबरमणि विषशरेभ्योनित्यम्) ॥ कबरं चित्रं पुच्छं यस्याः सा कबरपुच्छीमयूरी इत्यादि ॥ (उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च) ॥ उलूकपक्षी शाला । उलूकपुच्छी सेना ॥

नासिकादि शब्द हैं जिनके अन्त में उन प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके ङीष् प्रत्यय हो ॥ ५५ ॥

न क्रोडादि बह्वचः ॥ ५६ ॥

क्रोडाद्यन्ताद् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां न ङीष् । यथा-कल्याणक्रोडा । अश्वानामुरः क्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ॥

क्रोडादि बह्वजन्तशब्द हैं आदि में जिनके ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय न हो ॥ ५६ ॥

सह नञ् विद्यमानपूर्वाच्च ॥ ५७ ॥

सं० त, च । सह नञ् विद्यमान इत्येवं पूर्वात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां न ङीष् । यथा-सकेशा । अकेशा । विद्यमाननासिका ॥

सह, नञ् और विद्यमान है पूर्व जिसके ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय न हो ॥ ५७ ॥

नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् ॥ ५८ ॥

नखमुखान्तात् प्रातिपदिकात् संज्ञायां स्त्रियांविषये ङीष् न । यथा-शूर्पणखा । गौरमुखा ॥

स्त्रीलिङ्गविषय में संज्ञागम्यमान हो तो नख और मुखान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय न हो ॥ ५८ ॥

दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि ॥ ५९ ॥

छन्दसि विषये दीर्घ जिह्वीति निपात्यते ॥

छन्दोविषय में दीर्घजिह्वी यह शब्द निपातित है ॥ ५९ ॥

दिक्पूर्वपदान् ङीप् ॥ ६० ॥

दि० तं, ङीप् । दिक् पूर्वपदात् स्वाङ्गान्तात् प्रातिपादिकात् परस्य ङीषो ङीबादेशः स्यात् । यथा-प्राङ्मुखी शाला । स्वरे आद्युदात्तंपदम् ॥

दिशावाचक शब्द पूर्वपद हैं जिसके ऐसे स्वाङ्गान्त प्रातिपदिक से ङीष् के के स्थान ङीप् आदेश हो ॥ ६० ॥

वाहः ॥ ६१ ॥

वाहन्तात् प्रातिपदिकात् ङीष् स्यात्। यथा—दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे ॥

वाहन्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ६२ ॥

सखी अशिश्वी इमौ शब्दौ ङीषन्तौ भाषायां निपात्येते। यथा—सखीयं मे सावित्री। नास्याः शिशुरस्तीति-अशिश्वी ॥

भाषा में सखी और अशिश्वी शब्द निपातित हैं ॥ ६२ ॥

*जातेरस्त्री विषयादयोपधात् ॥ ६३ ॥

जातिवाचि यन्नच स्त्रियां नियतमयोपधं ततःस्त्रियां ङीष् स्यात्। यथा—सूकरी। कुक्कुटी। कठी ॥ (योपध प्रतिषेधे गवय हय मुकय मनुष्य मत्स्यानामप्रतिषेधः) ॥ गवयी। हयी। मुकयी। मनुषी। मत्स्यी ॥

अयोपाधि अस्त्रीविषयक जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष्प्रत्यय हो ६३

पाक कर्ण पर्ण पुष्प फल मूल वालोत्तरपदाच्च ॥ ६४ ॥

पा०तं, च। पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रि-

*आकृति ग्रहणा जातिर्लिङ्गानांच नसर्वभाक्। सकृदाख्यात निग्राह्या गोत्रंच चरणैःसह ॥

यां ङीष् स्यात् । यथा—ओदनपाकी । शङ्ककर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । मूलकफली । दर्भमूली । गोवाली । ओषधि विशेषे रूढाइमे ॥

पाकादि शब्द हैं उत्तरपद जिसके उसप्रातिपदिकसे स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय हो । ६४।

इतोमनुष्यजातेः ॥ ६५ ॥

इतः,मं०तेः । मनुष्यजातिवाचिन इकारान्ता द्योपधात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यात् । यथा—कुन्ती । दाक्षी ॥

मनुष्यजातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गमें ङीष् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

ऊङुतः ॥ ६६ ॥

ऊङ्, उतः । उकारान्तादयोपधान् मनुष्यजाति वाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियामूङ् स्यात् यथा—कुरुः । कुरुनादिभ्योण्यः । तस्य स्त्रियामबन्तीत्यादिनालुक् ॥ (अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम्) ॥ अलाबूः । कर्कन्धूः ॥

अयोपध उकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६६ ॥

बाह्वन्तात् सञ्ज्ञायाम् ॥ ६७ ॥

सञ्ज्ञायांविषये बाहुशब्दान्तात्स्त्रियामूङ् स्यात् । यथा—भद्रबाहूः ॥

संज्ञाविषय में बाहुशब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६७ ॥

पङ्गोश्च ॥ ६८ ॥

पङ्गोः, च । पङ्गुशब्दात्स्त्रियामूङ् स्यात् । यथा—पङ्गूः ॥(श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च) ॥ चादूङ् । श्वश्रूः ॥

पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६८ ॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ ६९ ॥

औपम्ये गम्ये ऊरूत्तरपदात् स्त्रियामूङ् स्यात् यथा-करभोरूः। कदलीस्तम्भोरूः ॥

उपमागम्यमानहोतो ऊरूत्तरपद प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्गमें ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ॥ ७० ॥

सं०दे:, च। एभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियामूङ्स्यादौपम्ये। यथा-संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः[1]॥(सहित सहाभ्यां चेतिवाच्यम्)॥ साहितोरूः। सहोरूः॥

संहित, शफ, लक्षण और वामशब्द हैं आदि में जिसके ऐसे ऊरूत्तर प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ ७१ ॥

कं०ल्वो:, छं०सि। छन्दसिविषये कद्रुकमण्डलुभ्यां स्त्रियामूङ् स्यात्। यथा-कद्रूः। कमण्डलूः॥(गुग्गुलु मधुजतु पतयालूमिति वाच्यम्)॥ गुग्गुलूः। मधूः। जतूः। पतयालूः॥

छन्दोविषय में कद्रु और कमण्डलु शब्दोंसे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो ॥७१ ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ७२ ॥

कद्रुकमण्डलुभ्यां संज्ञायां स्त्रियामूङ् स्यात्। यथा-कद्रूः। कमण्डलूः[2]॥

संज्ञा विषय में कद्रु तथा कमण्डलु प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्गवाच्य हो तो ऊङ् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

१—वामौ सुन्दरौ ऊरू यस्या इति विग्रहः ॥ २—कमण्डलुरिति—चतुष्पदाज्जातिवाचकोऽयम् ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ ७३ ॥

शा० ञः, ङीन् । शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । यथा—शार्ङ्गरवी[1] । वैदी[2] । (नृनरयोर्वृद्धिश्च)॥ नारी ॥

शार्ङ्गरवादि और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीन् प्रत्यय हो॥७३॥

यङश्चाप् ॥ ७४ ॥

यङः, चाप् । यङन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप् स्यात् । यङ इति ञ्यङ्ष्यङोः सामान्यग्रहणम् । यथा—आम्बष्ठ्या[3] । कारीषगन्ध्या[4]॥

यङन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में चाप् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

आवट्याच्च ॥ ७५ ॥

आ० त्, च । अस्माच्चाप् स्यात् । यञश्चेति ङीपोपवादः । यथा—आवट्या । अवटशब्दो गर्गादिः ॥

यञ् प्रत्ययान्त आवट्य शब्दसे स्त्रीलिङ्ग में चाप् प्रत्यय हो ॥ ७५ ॥

तद्धिताः ॥ ७६ ॥

आपञ्चमाऽध्यायपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम् ॥

यहां से पञ्चम अध्याय की समाप्तितक तद्धित का अधिकार है ॥ ७६ ॥

यूनस्तिः ॥ ७७ ॥

१—शृङ्गशब्दादपत्येण् आदिवृद्धिः । २—विदस्यापत्यं स्त्री ' अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् । पूर्ववज्जातिलक्षणे ङीषिप्राप्ते ङीन् विधीयते ॥ ३—आम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री ' वृद्धेकोसला—' इतिञ्यङ् । ४—करीषस्येव गन्धोयस्य कारीष गन्धि । उपमानाच्च—गन्धस्येदन्तादेशः । तस्य गोत्रापत्यं स्त्री अण् । अणिञोरनार्षयोः—' इतिष्यङादेशः । स च यद्यपिस्त्रियामेव विहितस्तथापि ङित्- करणं सामर्थ्यात् तदन्तादप्ययं चाप् ॥

यूनः, ति । युवन्शब्दात् स्त्रियां तिप्रत्ययः स्यात् । सच तद्धितः यथा-युवतिः ॥

युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में तद्धित संज्ञक ति प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ॥ ७८ ॥

अणिञोः, अं०योः, गु० योः, ष्यङ्, गोत्रे । गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् । (प०) निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ इत्यणिञोरेव षङावितौ यङश्चाप् यथा-कुमुदगन्धेरपत्यंस्त्री-कौमुदगन्ध्या । वाराह्या ॥

गोत्र में विहित जो अनार्ष अण् और इञ् प्रत्यय तदन्त गुरूपोत्तम प्रातिपदिकों को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश हो ॥ ७८ ॥

गोत्रावयवात् ॥ ७९ ॥

गोत्रावयवा गोत्राभिमताः कुलाख्यास्ततो गोत्रे विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् । यथा-पौणिक्या । भौणिक्या ॥

गोत्र अवयवों से गोत्र में विहित जो अण और इञ् तदन्त प्रातिपदिकों को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश हो ॥ ७९ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ ८० ॥

क्रौ०भ्यः, च । स्त्रियां ष्यङ् स्यात् । यथा-क्रौड्या व्याड्या ॥ (सूतयुवत्याम्) ॥ सूत्या (भोजक्षत्रिये) ॥ भोज्या ॥

क्रौड आदि प्रातिपादिक से स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

दैवयज्ञि शौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ ८१ ॥

दै० भ्यः, अ० म् । एभ्यो वा स्त्रियां ष्यङ् स्यात् । यथा—दैवयज्ञ्या । दैवयज्ञी । शौचवृक्ष्या । शौचवृक्षी । सात्यमुग्र्या । सात्यमुग्री । काण्ठेविद्ध्या काण्ठेविद्धी ॥

दैवयज्ञि, शौचवृक्षि, सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ष्यङ् प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

समर्थानां प्रथमाद् वा ॥ ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते । प्राग्दिश इति यावत् । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम् । कृतसन्धिकार्यत्वमिति यावत् ॥

समर्थों में प्रथम समर्थ प्रातिपदिक से विकल्प करके प्रत्यय हो यह पञ्चमाऽध्यायके द्वितीय पादकी समाप्ति तक अधिकार है ॥ ८२ ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ ८३ ॥

प्राक्, दी० तः, अण् । तेन दीव्यतीत्यतः प्रागणधिक्रियते ॥

चतुर्थाध्याय के तृतीयपाद की समाप्तिपर्यन्त अण् प्रत्यय का अधिकार है ॥८३॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ ८४ ॥

अ० भ्यः, च । एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । यथा—आश्वपतम् । शातपतम् । गाणपतम् । साभापतम् ॥

अश्वपति आदि शब्दों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अण् प्रत्ययहो ॥ ८४ ॥

१—(७ । २ । ११७) इत्याद्यचो वृद्धिः ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाद्ण्यः ॥ ८५ ॥

दित्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः पत्युत्तर पदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात् । यथा—दैत्यः । आदित्यः । आदित्यम् । सैनापत्यम् ॥ (यमाच्चेति वाच्यम्) ॥ याम्यम् ॥ (वाङ्मति पितृमतां छन्दस्युपसङ्ख्यानम्) ॥ वाच्यम् । मात्यम् । पैतृमत्यम् ॥ (पृथिव्याञाञौ) ॥ पार्थिवा ॥ पार्थिवी ॥ (देवाद्यञञौ) ॥ दैव्यम् । दैवी ॥ (बहिषष्टिलोपो वाच्यः) ॥ बाह्यः ॥ (ईकक्च) ॥ वाहीकः ॥ (ईकञ्छन्दसि) ॥ वाहीकः स्वरे विशेषः ॥ (स्थास्नोऽकारः) ॥ अश्वत्थामः । पृषोदरादित्वात् सस्य तः ॥ (भवार्थे तु लुग्वाच्यः) ॥ अश्वत्थामा ॥ (लोम्नोऽपत्येषु बहुषु) ॥ अकारः । बह्वादीञोऽपवादः । उडुलोमाः । उडुलोमान् ॥ (गोरजादि प्रसङ्गे यत्) ॥ गव्यम् ॥

दिति, अदिति, आदित्य और पत्युत्तर पद प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ण्य प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥ ८६ ॥

उ० भ्यः, अञ् । प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेञ् स्यात् । यथा—औत्सः ॥ (अग्निकलिभ्यां ढक् वाच्यः) ॥ अग्नेरपत्यादि आग्नेयम् । कालेयम् ॥

उत्स आदि प्रातिपदिकों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अञ् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥ ८७ ॥

धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ् स्नञौ स्याताम् । यथा—स्त्रीषु भवम्—स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीणां समूहः—स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीभ्यो हितम् । स्त्रैणम् । पौंस्नम् ॥

पञ्चमाऽध्यायके द्वितीय पादावधि जितने अर्थ हैं उन में स्त्री और पुंस् शब्द से यथाक्रम नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों ॥ ८७ ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ ८८ ॥

द्विगोः, लुक्, अ० त्ये। द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितोऽजादिरन्यपत्यार्थः प्राग्दीव्यतीयस्तस्य लुक् स्यात्। यथा—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः। द्वौवेदावधीते–द्विवेदः। त्रिवेदः॥

अपत्य भिन्न द्विगु से विहित प्राग्दीव्यतीय अर्थों में जो प्रत्यय उसका लुक् हो ८८

गोत्रेऽलुगचि ॥ ८९ ॥

गोत्रे, अलुक्, अचि। अजादौ प्रागदीव्यतीये विवक्षिते गोत्र प्रत्ययस्या लुक् स्यात्। यथा—गर्गाणां छात्राः—गार्गीयाः। वात्सीयाः॥

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्ययपरे होतो गोत्रमें विहित प्रत्ययका लुक् न हो ॥ ८९ ॥

यूनिलुक् ॥ ९० ॥

प्राग्दीव्यतीये अजादौ प्रत्यये विवक्षिते युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। यथा—ग्लुचुकस्यगोत्रापत्यम्–ग्लुचुकायनिः। वक्ष्यमाणः फिन्। ततो यून्यण्। ग्लौचुकायनः तस्यच्छात्रोऽपि ग्लौचुकायनः। अणो लुकि वृद्धत्वाभावाच्छोन॥

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय विवक्षित होतो युव प्रत्यय का लुक् हो ॥ ९० ॥

फक्फिञोरन्यतरस्याम् ॥ ९१ ॥

भ०योः, अ०म्। प्राग्दीव्यतीये अजादौ प्रत्यये विवक्षिते फक् फिञोर्वा लुक् स्यात्। यथा—कात्यायनस्य छात्राः। कातीयाः। का-

१–तदधीते तद्वेदेत्यत्रार्थे द्विगुः। २—वृद्धाच्छः। (६। ४। १५१) इतिहलः परस्यापत्य यकारस्यलोपः।

त्यायनीयाः । यस्कस्यापत्यम्-यास्कः । शिवाद्यण् । तस्यापत्यं-युवा-यास्कायनिः । अणोद्व्यच इति फिञ् तस्यछात्राः, यास्कीयाः । यास्कायनीयाः ॥

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय विवक्षित होतो युव संज्ञक फक् तथा फिञ् प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो ॥ ९१ ॥

तस्याऽपत्यम् ॥ ९२ ॥

तस्य, अपत्यम् । तस्येति षष्ठी समर्थादपत्येऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः । यथा-उपगोरपत्यम्-औपगवः ॥

समर्थों में प्रथमा षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में यथाविहित (उक्त तथा वक्ष्यमाण) प्रत्यय हों । इस पादकी समाप्तिपर्यंत अपत्यका अधिकारहै ॥ ९२ ॥

एकोगोत्रे ॥ ९३ ॥

एकः, गोत्रे । गोत्रे एकएव अपत्यप्रत्ययः स्यात् । यथा-उपगोर्गोत्रापत्यम्-औपगवः । गार्ग्यः । नाडायनः ॥

गोत्रापत्य में एक (प्रथम) ही प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥

गोत्रात्, यूनि, अ०म् । यून्यपत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव अपत्यप्रत्ययः स्यात् स्त्रियांतु नो युवसंज्ञा । यथा-गर्गस्य युवापत्यम्- गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः ॥

स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर युवापत्य की विवक्षा होतो गोत्र प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

अतइञ् ॥ ९५ ॥

अतः, इञ्। अपत्येऽर्थेऽदन्तात् प्रातिपदिकादिञ् स्यात्। दशरथस्यापत्यम्—दाशरथिः॥

अदन्त प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हो॥ ९५॥

बाह्वादिभ्यश्च॥ ९६॥

बा० भ्यः, च। बाहु इत्येव मादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये इञ् स्यात्। यथा—बाहुर्नाम कश्चिदाद्यपुरुषः। तस्यापत्यम्—बाहविः॥

बाहु आदि शब्दों से परे अपत्य अर्थ मे इञ् प्रत्यय हो॥ ९६॥

सुधातुरकङ् च॥ ९७॥

स० तुः, अकङ्, च। सुधातृशब्दादपत्ये इञ् तत् सन्नियोगेन च तस्या कङादेशः स्यात्। यथा—सुधातु रपत्यं सौधातकिः॥ (व्यासवरुड निषाद चण्डाल बिम्बानां चेति वाच्यम्)॥ वैयासकिः। वारुडकिः। नैषादकिः। चाण्डालकिः। बैम्बकिः॥

सुधातृ शब्द से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो और अन्त को अकङ् आदेश हो

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्॥ ९८॥

गोत्रे० कु० भ्यः, च फञ्। गोत्र सञ्ज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् स्यात्। यथा—कौञ्जायन्यः। ब्राध्नायन्यः॥

गोत्रापत्य वाच्य हो तो कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से च्फञ् प्रत्यय हो॥ ९८॥

नडादिभ्यः फक्॥ ९९॥

१-(७।३।३) इत्यैजागमः। २-इञोऽपवादः। चकारो विशेषणार्थः। व्रातच्फञो रास्त्रियामिति। यकारो वृद्ध्यर्थः॥

गोत्रापत्ये नडादिभ्यः फक् स्यात्। यथा–नडस्याऽपत्यं पौत्रादिः- नाडायनः। चारायणः ॥

नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में फक् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

हरितादिभ्योऽञः ॥ १०० ॥

ह० भ्यः, अञः। एभ्योऽञन्तेभ्यो यूनि फक्। यथा–हरितस्यापत्यम्-हारितायनः। कैदासायनः ॥

अञ् प्रत्ययान्त हरित आदि प्रातिपदिकों से युवापत्य में फक् प्रत्यय हो।१००

यञिञोश्च ॥ १०१ ॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात्। यथा–गार्ग्यायणः। दाक्षायणः ॥

गोत्र में यञन्त तथा इञन्त प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु

शरद्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फक् स्यात् क्रमाद् भृग्वादिष्वपत्य वियषेषु। यथा–शारद्वातायनो भार्गवश्चेत्। शारद्वतोऽन्यः। शौनकायनो-वात्स्यश्चेत्। शौनकोऽन्यः। दार्भायणः आग्रायणश्चेत्। दार्भिरन्यः ॥

शरद्वत्, शुनक, दर्भ प्रातिपदिकों से यथाक्रम भृगु, वत्स और आग्रायण अर्थों में फक् प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

द्रोणपर्वत जीवन्ता दन्यतरस्याम् १०३

द्रो० द्, अ० म्। एभ्यो गोत्रे वा फक् स्यात्। यथा- द्रौणायनः। द्रौणिः। पार्वतायनः। पार्वतिः। जैवन्तायनः। जैवन्तिः।

द्रोण, पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिक से गोत्रापत्य में विकल्प से फक् प्रत्यय हो॥

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ॥ १०४ ॥

अ० ये, वि० भ्यः, अञ् । एभ्यो गोत्रेऽञ् स्यात् । येत्यत्रानृष-यस्तेभ्य अनन्तरे सूत्रेस्वार्थेष्यञ् । यथा--विदस्यगोत्रापत्यम्--वैदः । अनन्तरो वैदिः । बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ् । पुत्रस्यापत्यम्-पौत्रः । दुहितुरपत्यम्-दौहित्रः ॥

ऋषि वर्जित पुत्रादि शब्दों से अनन्तरापत्य में और विदादि प्रातिपदिकोंसे गोत्रापत्य में अञ् प्रत्ययहो ॥ १०४ ॥

गर्गादिभ्योयञ् ॥ १०५ ॥

ग० भ्यः, यञ् । गर्गादिभ्यो गोत्रापत्ये यञ् स्यात् । यथा-गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

गोत्रापत्य में गर्ग आदि प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः ॥ १०६ ॥

म० वोः, ब्रा० योः । गोत्रे यञ् स्यात् । यथा-माधव्यो ब्राह्मणः । माधवोऽन्यः । बाभ्रव्यः कौशिक ऋषिः । बाभ्रवोऽन्यः ॥

यथाक्रम ब्राह्मण और कौशिक गोत्र वाच्य हो तो मधु और बभ्रु प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय हो ॥ १०६ ॥

कपि बोधा दाङ्गिरसे ॥ १०७ ॥

क० द्, आं० से । कपि बोध शब्दाभ्यामाङ्गिरसेऽपत्यविशेषे गोत्रे यञ् स्यात् । यथा-काप्यः । बौध्यः ॥

आङ्गिरसगोत्रवाच्य हो तो कपि और बोध शब्द से यञ् प्रत्यय हो १०७ ॥

वतण्डा च्च ॥ १०८ ॥

व० तं, चँ। वतण्डशब्दादाङ्गिरसेऽपत्यविशेषे गोत्रे यञ् स्यात्। यथा-वातण्ड्यः ॥

आङ्गिरसगोत्रवाच्य हो तो वतण्ड शब्द से यञ् प्रत्यय हो ॥ १०८ ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥ १०९ ॥

वतण्डशब्दादाङ्गिरस्यां स्त्रियां यञो लुक् स्यात्। यथा-वतण्डी ॥

अङ्गिरस गोत्रीय स्त्रीवाच्य हो तो वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् हो

अश्वादिभ्यः फञ् ॥ ११० ॥

गोत्रापत्ये। यथा--आश्वायनः। आश्मायनः ॥

अश्व आदि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य में फञ् प्रत्यय हो ॥ ११० ॥

भर्गात्त्रैगर्त्ते ॥ १११ ॥

भर्गशब्दादपत्ये विशेषे त्रैगर्त्ते गोत्रे फञ् स्यात्। यथा--भार्गायणस्त्रैगर्त्तः। भार्गिरन्यः ॥

त्रैगर्त्त गोत्रवाच्य होतो भर्गशब्द से फञ् प्रत्यय हो ॥ १११ ॥

शिवादिभ्योऽण् ॥ ११२ ॥

गोत्र इति निवृत्तम्। यथा--शिवस्यापत्यम्--शैवः ॥

शिवआदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में अण प्रत्यय हों ॥ ११२ ॥

१—शार्ङ्गरवादित्वान् ङीन्।

अवृद्धाभ्योनदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ॥ ११३ ॥

अ०भ्यः, न०भ्यः, त०भ्यः । अवृद्धो नदीमानुषी नामभ्योऽण् स्यात् । यथा—यमुनाया अपत्यम्—यामुनः । नार्मदः । मानुषीभ्यः । शिक्षिताया अपत्यम्- शैक्षितः ॥

अपत्यार्थ में नदी और मानुषीवाचक अवृद्ध नामोंसे अण् प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ११४ ॥

ऋ०भ्यः, च । ऋषयोमन्त्रद्रष्टारः । एभ्योऽण् स्यात् । यथा- वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः । श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः । वासुदेवः । आनुरुद्धः । कुरुभ्यः, नाकुलः । साहदेवः ॥

ऋषि, अन्धक, वृष्णि और कुरुशब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ११४ ॥

मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ ११५ ॥

मातुः, उत्, स० याः । सङ्ख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । यथा—द्वयोर्मात्रोरपत्यम्—द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः ॥

सङ्ख्यावाची, सम् तथा भद्र शब्द जिसके पूर्व हों ऐसे मातृशब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय और उकारादेशहो ॥ ११५ ॥

कन्यायाः कनीन च ॥ ११६ ॥

कन्याशब्दादपत्येऽण् तत्सन्नियोगेन कनीनादेशश्च । यथा—क-

न्यायाः-अपत्यम्-कानीनो व्यासः कर्ण ईसा इत्यपिश्रूयते। अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः ॥

कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय और कन्या को कनीन आदेश हो॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥

विकर्णशुङ्गच्छगल शब्देभ्यो यथासङ्ख्यं वत्स भरद्वाजात्रिष्वपत्यविशेषेष्वण् स्यात्। यथा-वैकर्णोवात्स्यः। वैकर्णिरन्यः। शौङ्गोभारद्वाजः। शौङ्गिरन्यः। छागल आत्रेयः। छागलिरन्यः॥

यथाक्रम वत्स, भरद्वाज अत्रि अपत्यवाच्य हों तो विकर्ण, शुङ्ग और छगल शब्द से अण् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

पीलाया वा ॥ ११८ ॥

अपत्येवाण्। यथा-पीलाया अपत्यम्--पैलः। पैलेयः ॥

पीला शब्दसे अपत्य में विकल्प से अण् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

ढक् च मण्डूकात् ॥ ११९ ॥

चादण् पक्षे इञ्। यथा-माण्डूकेयः। माण्डूकः। माण्डूकिः ॥

माण्डूक प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढक् इञ् और अण् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १२० ॥

स्त्रीभ्यः, ढक्। स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात्। यथा-वैनतेयः॥ याशोदेयः॥

स्त्री प्रत्ययान्त प्रादिपदिकों से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

द्व्यचः ॥ १२१ ॥

द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक् स्यात्। यथा-दत्ताया अपत्यम्-दात्तेयः ॥

स्त्रीप्रत्ययान्त दो अच् वाले प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्ययहो ॥१२१॥

इतश्चानिञः ॥ १२२ ॥

इतः, च, अनिञः । इकारान्ता दनिञन्ताद् द्व्यचोऽपत्येढक् स्यात् । यथा-दौलेयः । नैधेयः ॥

अनिञन्त इकारान्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च ॥ १२३ ॥

शु० भ्यः, च। ढक् स्यात्। यथा-शुभ्रस्यापत्यम्-शौभ्रेयः ॥

शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो ॥१२३॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ १२४ ॥

विकर्णशब्दात् कुषीतशब्दाच्च काश्यपेऽपत्यविषये ढक् स्यात्। यथा-वैकर्णेयः । कौषीतकेयः ॥

काश्यप गोत्रोत्पन्न अपत्यवाच्य हो तो विकर्ण तथा कुषीत शब्द से ढक् प्रत्ययहो॥

भ्रुवो वुक् च ॥ १२५ ॥

भ्रुवः, वुक्, च। भ्रूशब्दादपत्ये ढक् तत्सन्नियोगेन च वुगागमः। यथा-भ्रौवेयः ॥

भ्रू शब्द से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो और भ्रू शब्दको वुक्का आगमहो१२५

कल्याण्यादीनामिनङ्च ॥ १२६ ॥

क०म्, इनङ्, च । अपत्ये एषामिनङादेशश्चाच्च ढक् । यथा-काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः ॥

कल्याणी आदि शब्दों से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो तथा कल्याणी आदि शब्दों को इनङ् आदेश हो ॥ १२६ ॥

कुलटाया वा ॥ १२७ ॥

कु०याः, वा । कुलान्यटतीति- कुलटा । वेनङादेशो ढक् प्रत्ययश्च स्यात् । यथा-कौलटिनेयः । कौलटेयः ॥

कुलटा (बदमाश) शब्द से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय हो और कुलटा को विकल्प से इनङादेश हो ॥ १२७ ॥

चटकाया ऐरक् ॥ १२८ ॥

च०याः, ऐरक् । (चटकस्येति वाच्यम्) ॥ यथा-चटकस्य चटकायावाऽपत्यम्-चाटकैरः ॥ (स्त्रियामपत्ये लुग्वाच्यः) ॥ चटकाया अपत्यस्त्री, चटका । अजादित्वाट्टाप् ॥

चटका (चिड़िया) शब्द से अपत्यार्थ में ऐरक् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ १२९ ॥

गो०याः, ढ्रक् । यथा-गौधेरः ॥

गोधा (गोह) शब्द से अपत्यार्थ में ढ्रक् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

आरगुदीचाम् ॥ १३० ॥

आरक्, उ० म् । गोधाया अपत्ये वाऽऽरक् स्यात् । यथा-गौधारः ॥

उद्दालकस्थों के मत में गोधाशब्द से अपत्यार्थ में आरक् प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

क्षुद्राभ्यो वा ॥ १३१ ॥

क्षु०भ्यः, वा । अङ्गहीनाः शीलहीनाश्चक्षुद्रा ताभ्यो वा द्रक् । पक्षे ढक् । यथा—काणेरः । काणेयः । दासेरः । दासेयः ॥

क्षुद्रावाची प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में विकल्प से द्रक् प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥ १३२ ॥

पि०सुः, छण् । पितृष्वसृशब्दादपत्ये छण् स्यात् । यथा—पैतृष्वस्रीयः ॥

पितृ स्वसु शब्द से अपत्य अर्थ में छण् प्रत्यय हो ॥ १३२ ॥

ढकि लोपः ॥ १३३ ॥

पितृष्वसुरन्त लोपः स्याड्ढकि । यथा—पैतृष्वसेयः । अतएवज्ञापकाड्ढक् ॥

अपत्यार्थ ढक्प्रत्ययपरे होतो पितृष्वसृशब्द से अन्तका लोप हो ॥ १३३ ॥

मातृष्वसुश्च ॥ १३४ ॥

मा०सुः, च । पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात् । यथा—मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥

अपत्यार्थ में पितृष्वसृशब्द के समान मातृष्वसृ शब्द से भी छण् प्रत्यय और ढक् प्रत्यय के परे अन्तका लोप हो ॥ १३४ ॥

चतुष्पादभ्यो ढञ् ॥ १३५ ॥

च०भ्यः, ढञ् । चतुष्पादभि धायिनीभ्यः प्रकृतिभ्योऽपत्ये ढञ्

स्यात् । यथा-कामण्डलेयः । कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाज्जातिविशेषे ॥
चतुष्पाद्वाची प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ १३६ ॥

गृ०भ्यः, च । अपत्ये ढञ् स्यात् । यथा-गार्ष्टेयः । हार्ष्टेयः ॥
गृष्टि आदि प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

राजश्वशुराद् यत् ॥ १३७ ॥

(राज्ञो जाता वेवेति वाच्यम्) ॥ राजन् श्वशुरशब्दाभ्यामपत्ये यत् स्यात् । यथा-राजन्यः । श्वशुर्यः ॥
राजन् तथा श्वशुर शब्द से अपत्यार्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १३७॥

क्षत्राद् घः ॥ १३८ ॥

जातौ क्षत्रशब्दादपत्ये घः स्यात् । यथा-क्षत्रियः ॥
क्षत्र शब्द से अपत्य अर्थ में घ प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

कुलात् खः ॥ १३९ ॥

कुलशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् केवलाच्चापत्येखः स्यात् । यथा-श्रोत्रीयकुलीनः । कुलीनः ॥
कुल जिसके अन्त में हो अथवा केवल कुलशब्द से अपत्यार्थ में खप्रत्यय हो ॥

अपूर्व पदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ॥ १४० ॥

१-(६ । ४ । १६८) इत्यनो नो लोपः । २-(७ । १ । २) इति घस्य इयादेशः । ३-(७ । १ । २) इति खस्य ईनादेशः ॥

अ० द्, अ अ० म्, य० ञौ । अपूर्वपदात् कुलशब्दान्ताद् वा यड् ढकञौ स्याताम् । पक्षे खः । यथा—कुल्यः । कौलेयकः । कुलीनः । पदग्रहणं किम् । बहुकुल्यः । बाहुकुलेयकः । बहुकुलीनः ॥

पूर्वपद रहित कुलशब्द से अपत्यार्थ में विकल्प से यत् और ढकञ् प्रत्यय हो ॥

महाकुलादञ् खञौ ॥ १४१ ॥

मं० द्, अं० ञौ । अन्यतरस्यामित्यनुवर्त्तते । पक्षे खः । यथा—माहाकुलः । माहाकुलीनः । महाकुलीनः ॥

महाकुलशब्द से अपत्यार्थ में विकल्प से अञ और खञ् प्रत्यय हो ॥१४१ ॥

दुष्कुलाद् ढक् ॥ १४२ ॥

दुष्कुलशब्दादपत्ये ढक् स्यात् । खश्च यथा—दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ॥

दुष्कूल प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में विकल्प से ढक् प्रत्यय हो ॥ १४२ ॥

स्वसुश्छः ॥ १४३ ॥

स्वसृशब्दादपत्ये छः स्यात् । यथा—स्वस्रीयः ॥

स्वसृशब्द से अपत्यार्थ में छ प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥ १४४ ॥

भ्रातुः, व्यत्, अ च । भ्रातृशब्दादपत्ये व्यत् स्याच्चाच्छः । यथा—भ्रातृव्यः । भ्रात्रीयः ॥

भ्रातृशब्द से अपत्यार्थ में व्यत् और छ प्रत्यय हो ॥ १४४ ॥

व्यन् सपत्ने ॥ १४५ ॥

भ्रातुर्व्यन् स्यादपत्ये प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन शत्रौ वाच्ये। यथा-भ्रातृव्यः शत्रुः। पाप्मना भ्रातृव्येणेति तूपचारात् ॥

यदि प्रकृति प्रत्यय समुदाय से शत्रु वाच्य हो तो भ्रातृशब्द से व्यन् प्रत्यय हो।

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ १४६ ॥

रे०भ्यः, ठक्। ठस्येकः। यथा-रैवतिकः ॥

रेवति आदि प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने णः च ॥ १४७ ॥

गोत्रं या स्त्री तद्वाचकाच्छब्दात् कुत्सायां णठकौ स्याताम्। यथा-गार्ग्या अपत्यं गार्गो गार्गिको वा जाल्मः ॥

स्त्रीलिङ्ग गोत्रवाची शब्द से निन्दागम्यमान होनेपर अपत्यार्थ में ण और ठक् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

वृद्धात् ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥ १४८ ॥

सुवीरदेशोद्भवाः सौवीराः। वृद्धात्सौवीरगोत्राद्यूनि बहुलं ठक् स्यात् कुत्सायाम्। यथा--भागवित्तेर्भागवित्तिकः। पक्षे फक् भागवित्तायनः ॥

निन्दा गम्यमान हो तो वृद्ध सौवीर गोत्र से अपत्यार्थ में बहुलकरके ठक् प्रत्यय हो ॥ १४८ ॥

फेश्छ च ॥ १४९ ॥

फेः, छं, च। कुत्सायां फिञन्तात् सौवीरगोत्रापत्ये छठकौ स्याताम्। यथा--यमुन्दस्यापत्यम् यामुन्दायनिः। तिकादित्वात् फिञ्। तस्यापत्यं यामुन्दायनीय। या मुन्दायनिकः ॥

कुत्सा गम्यमान हो तो फिञ् प्रत्ययान्त सौवीर गोत्र प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में छ तथा ठक् प्रत्यय हो ॥ १४९ ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥ १५० ॥

नो अत्र यथा सङ्ख्यम् । अल्पाच्तरस्य व्यभिचारत्वात् । आभ्यां सौवीर विषयाभ्यामपत्ये णफिञौ । स्याताम् । यथा—फाण्टाहृतः । फाण्टाहृतायनिः । मैमतः । मैमतायनिः ॥

सौवीर विषयक फाण्टाहृति तथा मिमत शब्द से अपत्यार्थ में ण और फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५० ॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ १५१ ॥

कुरु इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये ण्यः स्यात् । यथा—कौरव्यः ॥

कुरुआदि शब्दों से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ १५२ ॥

एभ्यो ण्यः स्यात् । यथा—हारिषेण्यः । लाक्षण्यः । कौम्भकार्य्यः ॥

सेनान्त, लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकोंसे अपत्यार्थमें ण्य प्रत्यय हो ॥ १५२ ॥

उदीचामिञ् ॥ १५३ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्योऽपत्ये इञ् स्यादुदीचांमतेन । यथा—कारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः ॥

उदग्देश वाची आचार्य्यों के मत से सेनान्त लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय हो ॥ १५३ ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥ १५४ ॥

यथा—तैकायनिः ॥

तिक आदिशब्दों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५४ ॥

कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ॥ १५५ ॥

आभ्यां फिञ् । यथा—कौसलस्यापत्यम्—कौसल्यायनिः । कर्मारस्यापत्यम्—कार्मार्यायणिः । (छागवृषयोरपि) ॥ छागस्यापत्यम्—छागयायनिः । वार्ष्यायणिः ॥

कौसल्य और कार्मार्य शब्द से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५५ ॥

अणो द्व्यचः ॥ १५६ ॥

अणन्ताद् द्व्यचोऽपत्ये फिञ् स्यात् । यथा—कार्त्रायणिः* ॥

अण् प्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५६ ॥

उदीचां वृद्धाद् गोत्रात् ॥ १५७ ॥

वृद्धं यच्छब्दरूपमगोत्रं तस्मादपत्ये फिञ्स्यादुदीचां मतेन । यथा—आम्रगुप्तायनिः । आम्रगुप्तिः ॥

उदग्देशीय आचार्यों के मत में अगोत्र वृद्ध प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो ॥ १५७ ॥

वाकिनादीनां कुक् च ॥ १५८ ॥

वाकिन इत्येवमादिभ्यः शब्देभ्योऽपत्ये वा फिञ् तत् सन्नियोगेन चैषां कुगागमः । यथा—वाकिनकायनिः । वाकिनिः ॥

वाकिन आदि शब्दों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय और वाकिन आदि शब्दों को कुक् का आगम हो ॥ १५८ ॥

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥ १५९ ॥

* (त्यदादीनां वा फिञ् वाच्यः)—त्यादायनिः । त्यादः ।

पुत्रान्तात् प्रातिपदिकाद्यः फिञ् तस्मिन् परभूते वा कुगागमः स्यात् पुत्रान्तस्य । यथा—गार्गीपुत्रकायणिः । गार्गीपुत्रायणिः । गार्गीपुत्रिः ॥

उदग्देशीय आचार्य्यों के मत में अगोत्र वृद्ध पुत्रान्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय हो और पुत्रान्त प्रातिपदिक को कुक् का आगम विकल्प से हो ॥

प्राचाम वृद्धात् फिन् बहुलम् ॥ १६० ॥

अवृद्धाच्छब्दरूपादपत्ये बहुलं फिन् स्यात्प्राचां मतेन । यथा—ग्लुचुकायनिः । ग्लौचुकिः ॥

प्राग्देशीय आचार्य्यों के मत से अवृद्ध शब्द से अपत्यार्थ में फिन् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १६० ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥ १६१ ॥

मनुशब्दादञ्यत् प्रत्ययौ स्याताम् । तत्सन्नियोगेन च षुगागमः समुदायेन चेज्जातिर्गम्यते । यथा—मानुषः । मनुष्यः ॥

यदि समुदाय से जातिगम्यमान हो तो मनु शब्द से अञ् और यत् प्रत्यय हो

अपत्यंपौत्र प्रभृति गोत्रम् ॥ १६२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् । यथा—गर्गस्यापत्यम् पौत्रप्रभृति—गार्ग्यः ॥

पौत्र प्रभृति अपत्य गोत्र गोत्र संज्ञक हो ॥ १६२ ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ॥ १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसञ्ज्ञकमेव स्यात् । नतु गोत्रसञ्ज्ञकम् । यथा—गार्ग्यायणः ॥

वंशमें पित्रादिके जीतेहुए पौत्र प्रभृति का अपत्य युव संज्ञक हो ॥ १६३ ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥ १६४ ॥

ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनीयान् चतुर्थादि युवसंज्ञकः स्यात्। यथा-गार्ग्ये जीवति गार्ग्यायणोस्य कनीयान् भ्राता ॥

बड़े भाई के जीतेहुए छोटा भाई युव संज्ञक हो ॥ १६४ ॥

वा अस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति

भ्रातुरन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसञ्ज्ञकं वा स्यात्। एकं जीवति ग्रहणम्, अपत्यविशेषणम्, द्वितीयं सपिण्डस्य। तरब्निर्देशः उभयोरुत्कर्षार्थः। स्थानेन वयसाचोत्कृष्टे पितृव्ये, मातामहे, भ्रातरिवा, वयसाधिके जीवति। यथा-गार्ग्यस्यापत्यम्-गार्ग्यायणः। गार्ग्यो वा ॥

बड़े भाई से इतर पीढ़ी में किसी अतिवृद्ध पितृव्यादिके जीनेपर पौत्रप्रभृति का अपत्य विकल्प से युवसंज्ञक हो ॥ १६५ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियाद् अञ् ॥ १६६ ॥

जनपद क्षत्रिययोर्वाचकादञ् स्यादपत्ये। यथा-पाञ्चालः * ॥

क्षत्रिय वाची जनपद शब्द से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १६६ ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ १६७ ॥

* (वृद्धस्यचपूजायामिति वाच्यम्]। तत्रभवान् गार्ग्यायणः। [यूनश्चकुत्सायामितिगोत्रं वाच्यम्) गार्ग्योजाल्मः।

* (क्षत्रिय समान शब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्) पञ्चालानां राजा-पाञ्चालः। (पूरोरण वक्तव्यः) पौरवः। [पाण्डोर्ड्यण्] पाण्डवः ॥

आभ्यामपत्येऽञ् स्यात्। यथा—साल्वेयः गान्धारः॥

क्षत्रिय वाची साल्वेय और गान्धारि जनपद प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्ययहो॥ १६७॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् १६८

जनपद शब्दात् क्षत्रियाभिधायिनोद्व्यचो मगधादिभ्यश्चापत्येऽण् स्यात्। यथा—आङ्गः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः॥

जनपद शब्दसे क्षत्रिय अभिधेय होतो द्व्यच् प्रातिपदिक और मगध कलिङ्ग सूरमस प्रातिपदिकों से अपत्यार्थ में अण् प्रत्ययहो॥ १६८॥

वृद्धेत्कोसलाजादात् ञ्यङ् १६९

जनपद शब्दात् क्षत्रियाभिधायिनो वृद्धाच्च प्रातिपदिकादिकारान्ताच्च कोसलाजादशब्दाभ्यां चापत्ये ञ्यङ् स्यात्। यथा--आम्बष्ठ्यः इत्—आवन्त्यः कौसल्यः। अजादस्यापत्यम् आजाद्यः॥

क्षत्रियवाची वृद्ध संज्ञकः इकारान्त कोसल और अजाद जनपद शब्दों से अपत्यार्थ में ञ्यङ् प्रत्ययहो॥ १६९॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः॥ १७०॥

जनपद शब्दात क्षत्रियाभिधायिनः कुरुशब्दान्नादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो ण्यः स्यात्। यथा—कौरव्यः। नैषध्यः॥

क्षत्रिय वाची कुरु और नकारादि जनपद शब्दों से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्ययहो॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्

साल्वो जनपदः। तदवयवाः। उदुम्बरादयः। तेभ्यः प्रत्यग्रथा-

दिभ्य स्त्रिभश्च इञ् स्यात्। यथा--औदुम्बरिः प्रात्यग्रथिः कालकूटिः। आश्मकिः ॥

क्षत्रिय वाची साल्वावयव प्रत्यग्रथ कलकूट अश्मक इन जनपद शब्दों से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्ययहो ॥ १७१ ॥

ते तद्राजाः ॥ १७२ ॥

अञादयः एतत् सञ्ज्ञकाः स्युः ॥

क्षत्रिय वाचक जनपद शब्दों से विहित अञादि प्रत्यय तद्राजक संज्ञकहो ॥

कम्बोजात् लुक् ॥ १७३ ॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक् स्यात्। यथा–कम्बोजः* ॥

कम्बोज शब्दसे उत्पन्न तद्राज सञ्ज्ञक प्रत्ययका लुकहो ॥ १७३ ॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥ १७४ ॥

तद्राजस्य लुक् स्यात्। यथा–अवन्ती। कुन्ती। कुरूः ॥

स्त्री अभिधेय होतो अवन्ति कुन्ति और कुरु शब्दसे उत्पन्न तद्राज संज्ञक प्रत्ययका लुक् हो ॥ १७४ ॥

आतश्च ॥ १७५ ॥

तद्राजस्याकारस्य स्त्रियां लुक् स्यात्। यथा–शूरसेनस्यापत्यम्–शूरसेनानां वा राज्ञी शूरसेनी ॥

स्त्री वाच्य होतो तद्राज संज्ञक अकार प्रत्ययका लुक्हो ॥ १७५ ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ १७६ ॥

* [कम्बोजादिभ्य इति वाच्यम्] चोलस्यापत्यम्—चोलः। यवनस्यापत्यम्—यवनः।

एभ्यस्तद्राजस्य न लुक्। यथा—पञ्चालस्यापत्यम्—पञ्चालानां वा राज्ञी पाञ्चाली। भर्गस्यापत्यम्—भार्गी। यौधेयस्यपत्यम्—यौधेयी ॥

प्राच्य भर्गादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से उत्पन्न तद्राज संज्ञक प्रत्यय का लुक् न हो ॥ १७६ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः

तेन रक्तं रागात् ॥ १ ॥

रज्यतेऽनेति रागः। यथा—कषायेण रक्तं वस्त्रं—काषायम्। माञ्जिष्ठम्॥

तृतीया समर्थ रागविशेषवाची शब्द से रक्त अर्थमें यथाविहित प्रत्यय हों ॥ १ ॥

लाक्षारोचनात् ठक् ॥ २ ॥

लाक्षादिभ्योरागवचनेभ्यस्तृतीयासमर्थेभ्यो रक्तमित्येतस्मिन् विषये ठक् स्यात्। यथा—लाक्षयारक्तं वस्त्रम्—लाक्षिकम् रौचनिकम् *

तृतीया समर्थ रागवाची लाक्षा और रोचनाशब्दसे रक्त अर्थमें ठक् प्रत्यय हो।।२॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ ३ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थान्नक्षत्र विशेषवाचिनः शब्दाद् युक्त इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—पुष्पेण युक्तं -पौषम्--अहः, पौषीरात्रिः ॥

तृतीयासमर्थ नक्षत्र विशेषवाची शब्दसे युक्तकाल अर्थ में यथाविहित प्रत्ययहो ॥ ३

---

* [सलककर्दमाभ्यामुपसङ्ख्यानम्) शाकलिकम्। कार्दमिकम्। [आभ्यामणपि) शाकलम्। कार्दमम् [नील्या अन् वक्तव्यः]। नील्यारक्तं नीलंवस्त्रम्। [पीतात्कन्वाच्यः]। पीतेनरक्तं पीतकम् [हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्] हारिद्रम्। माहारजनम् ॥

लुब् विशेषे ॥ ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुप् स्यात् । षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तर विशेषश्चेन्नगम्यते । यथा- अद्यपुष्यः ॥

यदि विशेषकालवाच्य नहोतो नक्षत्र विशेषवाचीशब्दसे उत्पन्नपत्ययकालुक्हो ४

सञ्ज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ॥ ५ ॥

सञ्ज्ञायां विषये श्रवणशब्दादश्वत्थशब्दाच्चोत्पन्नस्य प्रत्ययस्य लुप् स्यात् । यथा-श्रवणारात्रिः । अश्वत्थोमुहूर्त्तः ॥

सञ्ज्ञा विषय में नक्षत्रवाची तृतीया समर्थ श्रवण और अश्वत्थ शब्द से उत्पन्न प्रत्यय का लुप् हो ॥ ५ ॥

द्वन्द्वाच्छः ॥ ६ ॥

नक्षत्रद्वन्द्वात्तृतीयासमर्थाद्युक्ते काले छः स्यात् विशेषे चाविशेषे । यथा-तिष्यपुनर्वसवीयमहः । राधानुराधीया-रात्रिः ॥

तृतीया समर्थ नक्षत्र द्वन्द्व से युक्त काल अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ ६ ॥

दृष्टं साम ॥ ७ ॥

तेनेति तृतीयासमर्थाद् दृष्टं सामेत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा--विश्वामित्रेण दृष्टं--वैश्वामित्रम् * ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपादिक से "दृष्ट साम" इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो॥

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ॥ ८ ॥

वामदेवशब्दात्तृतीयासर्थाद् दृष्ट सामेत्यस्मिन्नर्थे ड्यत् ड्यौस्याताम् । यथा -वामदेवेन दृष्टं साम-वामदेव्यंसाम ॥

तृतीयासमर्थ वामदेवशब्द से दृष्टसाम इसअर्थ में ड्यत् और ड्य प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

* (अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वाच्यः) उशनसा दृष्टम् - औशनसम् , । (कलेर्ढक्) कलिनादृष्टं साम, कालेयम् ॥

परिवृतो रथः ॥ ९ ॥

तेनेति तृतीया समर्थात्परिवृत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—वस्त्रेण परिवृतोरथः, वास्त्रोरथः ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से परिवृतरथ इस अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो॥ ९॥

पाण्डुकम्बलादिनिः ॥ १० ॥

पाण्डुकम्बलशब्दात् तृतीयासमर्थात् परिवृतोरथ इत्येतस्मिन्नर्थे इनिः स्यात् । यथा—पाण्डुकम्बलेन परिवृतोरथः—पाण्डुकम्बलीरथः। पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणस्य वर्णकम्बलस्य वाचकः ॥

तृतीयासमर्थ पाण्डुकम्बलशब्द से परिवृतरथ इस अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥१०॥

द्वैपवैयाघ्रादञ् ॥ ११ ॥

द्वीपिव्याघ्रयोर्विकारभूते चर्म्मणी द्वैपवैयाघ्रे, ताभ्यां तृतीया समर्थाभ्यां परिवृतोरथ इत्येतास्मिन्नर्थे अञ् स्यात् । यथा—द्वैपेन परिवृतोरथो द्वैपः । वैयाघ्रः ॥

तृतीयासमर्थ चर्म वाची द्वैप और वैयाघ्र शब्द से परिवृतरथ इस अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

कौमाराऽपूर्ववचने ॥ १२ ॥

कौमारमित्येतदण् प्रत्ययान्तं निपात्यते । यथा—अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः—कौमारः-पतिः-यद्वा अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना-कौमारी भार्य्या ॥

अपूर्व वचन द्योत्य होनेपर अण् प्रत्ययान्त कौमार शब्द निपातित है ॥१२॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ १३ ॥

तत्रेति सप्तमीसमर्थादमत्र वाचिनः शब्दा दुद्धृतमित्ये तस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा—स्थाले उद्धृतः-स्थालः-ओदनः । उद्धरतिरिह-उद्धरण पूर्वके निधाने वर्त्तते । तेन सप्तमी । उद्धृत्य निहित इत्यर्थः ॥

सप्तमी समर्थ अमत्र (पात्र) वाची प्रातिपदिकों से उद्धृत इस अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ १३ ॥

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ॥ १४ ॥

स्थण्डिलशब्दात् सप्तमी समर्थात् शयितर्यभिधेये यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, समुदायेन चेद् व्रतं गन्यते । व्रतमिति शास्त्रोक्तो नियम उच्यते यथा—स्थण्डिले शयितुं व्रतमस्य स्थाण्डिलो ब्रह्मचारी

यदि समुदाय से व्रत गम्यमान हो तो शयिता वाच्य होनेपर सप्तमी समर्थ स्थण्डिल शब्द से यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १४ ॥

संस्कृतम् भक्षाः ॥ १५ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे--यत् संस्कृतं भक्षाश्चेतेस्युः । यथा—भ्राष्ट्रे संस्कृताः--भ्राष्ट्राः- यवाः ॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो १५

शूलोखाद् यत् ॥ १६ ॥

शूलशब्दादुखाशब्दाच्च सप्तमी समर्थात् संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे यत् स्यात् । यथा—शूले संस्कृतं-शूल्यम्-मांसम् । उखायां संस्कृतम्--उख्यमोदनम् ॥

सप्तमी समर्थ शूल और उखा (हांडी) शब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १६ ॥

दध्नष्ठक् ॥ १७ ॥

दधिशब्दात् सप्तमीसमर्थात् संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् स्यात् । यथा—दध्नि संस्कृतं दाधिकम् ॥

सप्तमी समर्थ दधि शब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ॥ १८ ॥

उदश्वित्शब्दात् सप्तमीसमर्था त्संस्कृतं भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे वा ठक् स्यात् । पक्षेऽण् । यथा—उदकेन श्वयति वर्धते इति उदश्वित् । तस्मिन् संस्कृतम् औदश्वित्कम् (७ । ३ । ५१ इति ठस्येकः) । औदश्वित्तम् ॥

सप्तमी समर्थ उदश्वित् (मट्ठा) शब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में विकल्प से ठक् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

क्षीराड्ढञ् ॥ १९ ॥

क्षीरशब्दात् सप्तमी समर्थात् संस्कृत भक्षा इत्येतस्मिन्नर्थे ढञ् स्यात् । यथा—क्षीरेसंस्कृता क्षैरेयी यवागूः ॥

सप्तमी समर्थ क्षीरशब्द से संस्कृत भक्ष इस अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

सास्मिन् पौर्णमासीति ॥ २० ॥

सेति प्रथमा समर्था दस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत्प्रथमा समर्थं पौर्णमासी चेत्स्यात् । यथा—पौषी पौर्णमासी अस्मिन् पौषोमासः ॥

पुष्यनक्षत्र से युक्त पूर्णिमा जिसमास मे हो उसमासका नाम पौष है। प्रथमा समर्थ पौर्णमासी वाचीशब्द से सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो॥ २०॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्॥ २१॥

आग्रहायणी शब्दादश्वत्थशब्दाच्च प्रथमा समर्थात्पौर्णमास्युपाधिकादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे ठक् स्यात्। यथा–अग्रे हायनमास्या इति–आग्रहायणी। प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण्। पूर्वपदात् सञ्ज्ञामिति (८।४।३) णत्वम्। आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन् आग्रहायणिकोमासः। अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमासी–अश्वत्थः। निपानात् पौर्णमास्यामपि लुक्। आश्वत्थिकः॥

पौर्णमास्युपाधिक प्रथमा समर्थ आग्रहायणी और अश्वत्थ से सप्तम्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ २१॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः॥ २२॥

एभ्यष्ठग्वापक्षेऽण्। यथा–फाल्गुनिकः, फाल्गुनोमासः। श्रावणिकः, श्रावणः। कार्त्तिकिकः, कार्त्तिकः। चैत्रिकः, चैत्रः॥

प्रथमा समर्थ पौर्णमासीवाची फाल्गुनी, श्रवणा, कार्त्तिकी और चैत्रीशब्द से सप्तम्यर्थ में विकल्प से ठक् प्रत्यय हो॥ २२॥

सोऽस्य देवता॥ २३॥

सेति प्रथमा समर्था दस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत् तत् प्रथमा समर्थ देवता चेत् स्यात्। यथा–इन्द्रोदेवताऽस्येति–ऐन्द्रमृक्॥

प्रथमा समर्थ देवतावाची शब्द से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो॥ २३॥

कस्येत् ॥ २४ ॥

कशब्दस्य इदादेशः स्यात् प्रत्ययसन्नियोगेन। यथा—को ब्रह्मा देवताऽस्य कायं—हविः ॥

प्रथमासमर्थ देवतावाची कशब्द से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ २४ ॥

शुक्राद्घन् ॥ २५ ॥

यथा—शुक्रियम् (७ । १ । २ इतीयादेशः) ॥

प्रथमासमर्थ देवतावाची शुक्रशब्द से षष्ठ्यर्थ में घन् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

अपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यांघः ॥ २६ ॥

अपोनप्तृ अपान्नप्तृ इत्येताभ्यां घः स्यात् सास्यदेवतेत्यस्मिन् विषये। यथा—अपोनप्त्रियम्—हविः। अपान्नप्त्रियम् ॥

प्रथमासमर्थ देवतावाची अपोनप्तृ और अपान्नप्तृशब्दसे षष्ठ्यर्थमें घ प्रत्यय हो २६

छ च ॥ २७ ॥

योगविभागो यथा सङ्ख्यानिवृत्यर्थः। अपोनप्तृ अपान्नप्तृ इत्येताभ्यांछोपिऽस्यात् सास्यदेवतेत्यस्मिन् विषये । यथा—अपोनप्त्रीयम्—हविः। अपान्नप्त्रीयम् ॥

प्रथमा समर्थ देवतावाची अपोनप्तृ और अपान्नप्तृ शब्द से षष्ठ्यर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ २७ ॥

महेन्द्राद् घाणौ च ॥ २८ ॥

महेन्द्रशब्दाद् घाणौ स्यातां चाच्छश्च सास्यदेवतेत्यस्मिन्विषये। यथा—महेन्द्रो देवताऽस्य महेन्द्रियम्—हविः। माहेन्द्रम्। महेन्द्रीयम्॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची महेन्द्र शब्द से षष्ठ्यर्थ में घ, अण् और छ प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

सोमाट्ट्यण् ॥ २९ ॥

सोमशब्दाद् ट्यण् स्यात् सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये । यथा-सोमोदेवताऽस्य स्योम्यम् सूक्तम् । टित्वान्ङीप् सौमी ऋक् ॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची सोमशब्द से षष्ठ्यर्थ म ट्यण् प्रत्यय हो ॥ २९ ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ॥ ३० ॥

वाय्वादिभ्यः शब्देभ्यो यत् स्यात्-सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये । यथा-वायुर्देवतास्य वायव्यम्-सूक्तम् । ऋतव्यम् । (७ । ४ । २७)। इतिरीङादेशं कृत्वा-(६ । ४ । १४८ इति सू०) पित्र्यम् उषस्यम्-प्रत्यूषका ॥

सास्य देवता इस अर्थ में वायु आदि शब्दों से यत् प्रत्यय हो ॥ ३० ॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोम-वास्तोष्पतिगृहमेधात् छ च ॥ ३१ ॥

द्यावापृथिव्यादिभ्यश्छस्स्याच्चाद्यच्च । यथा-द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ देवतेऽस्य, द्यावापृथिवीयम् । द्यावापृथिव्यम् । सुनासीरीयम् ,सुनासीर्यम् । मरुत्वान् देवताऽस्य-मरुत्वीयम्,मरुत्वत्यम् । अग्नीषोमीयम् । अग्निसोम्यम् । वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्पत्यम् । गृहमेधीयम्, गृहमेध्यम् ॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची द्यावापृथिवी, सुनासीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति और गृहमेध शब्द से षष्ठ्यर्थ में छ और यत् प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

अग्नेः ढक् ॥ ३२ ॥

अग्नि शब्दाद् ढक् स्यात् सास्य देवतत्यस्मिन् विषये । यथा—अग्निर्देवताऽस्य-आग्नेयम् ।

प्रथमा समर्थ देवता वाची अग्नि शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ढक् प्रत्ययहो ॥ ३२ ॥

कालेभ्यो भववत् ॥ ३३ ॥

कालविशेषवाचिभ्यः शब्देभ्यो भववत् प्रत्ययाः स्युः, सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये । कालाट्ठञिति प्रकरणे भवे प्रत्यया विधास्यन्ते ते सास्यदेवतेत्यास्मिन् नर्थे तथैवेष्यन्ते । यथा—मासे भवम्—मासिकम् । सांवत्सरिकम् ॥

प्रथमा समर्थ देवता वाची काल विशेष वाचक शब्दों से षष्ठ्यर्थ में भववत् (भावाधिकारके तुल्य) प्रत्ययहों ॥ ३३ ॥

महाराजप्रोष्ठपदात् ठञ् ॥ ३४ ॥

आभ्यांठञ्स्यात् सास्य देवतेत्यस्मिन् विषये ॥ यथा—महाराजो देवताऽस्य—महाराजिकम् । प्रौष्ठपादिकम् * ॥

प्रथमासमर्थ देवता वाची महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ३५ ॥

पितृव्यादयश्शब्दा निपात्यन्ते । (पितुर्भ्रातरिव्यत्) । पितुर्भ्राता—पितृव्यः (मातुर्डुलच्) । मातुर्भ्राता—मातुलः । (मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्) । मातुः पिता—मातामहः। पितुः पिता—पितामहः (मातरिषिच्च) मातामही । पितामही * ॥

---

* (नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्) नावयज्ञिकः कालः । (पूर्णमासादण्) पूर्णमासोऽस्यां वर्त्तते-पौर्णमासी तिथिः) । * [अवेर्दुग्धे सोढ दूसमरीसचोवक्तव्याः) । अवेर्दुग्ध मविसोढम् । अविदूसम् । अविमरीसम् (तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ , निष्फलस्तिलस्तिलपिञ्जः । तिल पेजः । (पिञ्जश्छन्दसि डिच्च)। तिल—पिञ्जः ॥

पिता का भाई वाच्य होने में पितृ शब्दसे व्यत् प्रत्ययान्त पितृव्य, माता के भाई में मातृ शब्दसे डुलच् प्रत्ययान्त मातुल एवं उक्त दोनों के पिता वाच्य होने पर दोनों से डामहच् प्रत्ययान्त मातामह तथा पितामह शब्द निपातित हैं ॥३५॥

तस्य समूहः ॥ ३६ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थात्समूह इत्येतस्मिन्नर्थे यथा विहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा– काकानाँ समूहः–काकम् । वकम् * ॥

षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से समूह अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो ॥ ३६ ॥

भिक्षादिभ्योऽण् ॥ ३७ ॥

समूहार्थे भिक्षादिभ्योऽण स्यात् । यथा–भिक्षाणाम्–समूहः–भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहः–गार्भिणम्। युवतीनांसमूहः-यौवतम् ॥

षष्ठी समर्थ भिक्षादि शब्दों से समूह अर्थ में अण् प्रत्ययहो ॥ ३७ ॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ॥ ३८ ॥

समूहार्थे गोत्रादिभ्योवुञ् स्यात्। लौकिकमिह -गोत्रम्। तच्चापत्यमात्रम् (७। १। १ इत्यकादेशः) । यथा -औपगवानां समूहः--औपगवकम्। औक्षकम्। औष्ट्रकम-औरभ्रकम्। राजकम्, राजन्यकम्। राजपुत्रकम्।वात्सकम्। मानुष्यकम्। आजकम् * ॥

षष्ठी समर्थ गोत्र (अपत्यमात्र) उक्षन–उष्ट्र, उरभ्र, (भेड़) राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्द से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो॥ ३८॥

केदाराद् यञ् च ॥ ३९ ॥

* [गुणादिभ्यो ग्रामज्वाच्यः]। गुणग्रामः। करणग्राम.। इन्द्रियग्रामः। तत्व। शब्द। आकृतिगणः॥

* [वृद्धाच्चेति वाच्यम्] । वृद्धानां समूहः--वार्द्धकम्।

समूहार्थे केदारशब्दा द्यञ् चाद् वुञ् । यथा--केदाराणां समूहः-कैदार्यम्, कैदारकम्* ॥

षष्ठीसमर्थ केदारशब्द से समूहार्थ में यञ् और वुञ् प्रत्यय हो ॥ ३९ ॥

ठञ् कवचिनश्च ॥ ४० ॥

समूहार्थे कवचिन् शब्दाट्ठञ् । यथा--कवचिनांसमूहः--कावचिकम् । चात्केदारादपि-कैदारिकम् ॥

षष्ठीसमर्थ कवचिन् और केदारशब्द से समूह अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ४० ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ॥ ४१ ॥

समूहार्थे ब्राह्मणादिभ्यः शब्देभ्यो यन् स्यात् । नकारः स्वरार्थः । यथा--ब्राह्मणानां समूहः-ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् * ॥

ब्राह्मण, माणव (बालक) और वाडव (ब्राह्मण) शब्द से समूहार्थ में यन् प्रत्यय हो ॥ ४१ ॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥ ४२ ॥

समूहार्थे ग्रामादिभ्यस्तल् स्यात् । ग्रामाणां समूहः--ग्रामता । जनता । बन्धुता * ॥

षष्ठी समर्थ ग्राम, जन और बन्धु शब्दसे समूह अर्थ में तल् प्रत्ययहो ॥ ४२ ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ४३ ॥

समूहार्थेऽनुदात्तादेरञ् स्यात् । यथा--कपोतानां समूहः--कापोतम् । मायूरम् ॥

---

१ * (गणिकाया यञिति वाच्यम्] । गाणिक्यम् । २ * [पृष्ठादुपसङ्ख्यानम्] । प्रष्ठयम् ॥ (अहः खः क्रतौ] अह्नां समूहोऽहीनंक्रतुः । [वातादूलः] । वातानां समूहो वातूलः ॥

* गजसहायताभ्यां चेति वाच्यम् । गजानां सहूहः-गजता । सहायता ।

षष्ठी समर्थ अनुदात्तादि शब्दसे समूहार्थ में अञ् प्रत्ययहो ॥ ४३ ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ४४ ॥

समूहार्थे खण्डिकादिभ्योऽञ् स्यात् । यथा -खण्डिकानां समूहः-खाण्डिकम् । वाडवम् ॥

षष्ठी समर्थ खण्डिकादि शब्दों से समूहार्थ में अञ् प्रत्ययहो ॥ ४४ ॥

चरणेभ्यो धर्म्मवत् ॥ ४५ ॥

समूहार्थे चरणेभ्यो धर्म्मवत् प्रत्ययाः स्युः । कठानां धर्म्मः-काठकम् ॥

षष्ठीसमर्थ चरणवाची (कठकलापादि) शब्दों से समूहार्थ में धर्मवत् (धर्म-आम्नाय में कहे) प्रत्यय हों ॥ ४५ ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ४६ ॥

समूहार्थेऽचित्तार्थेभ्यो हस्तिधेनुशब्दाभ्यां च ठक् स्यात् । यथा-सक्तूनांसमूहः-साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ॥

षष्ठी समर्थ अचित्तार्थ हस्तिन् और धेनुशब्द से समूहार्थ में ठक् प्रत्यय हो ४६

केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ४७

समूहार्थे केश अश्व इत्येताभ्यां यथा सङ्ख्यं यञ् छौ स्याताम् । पक्षेऽठगणौ । यथा-केशानां समूहः-कैश्यम्, कैशिकम् । अश्वानां समूहः-आश्वम्, अश्वीयम् ॥

षष्ठीसमर्थ केश और अश्वशब्दों से समूहार्थ में विकल्प से यथासङ्ख्य यञ् और छ प्रत्यय हों ॥ ४७ ॥

पाशादिभ्यो यः ॥ ४८ ॥

समूहार्थे पाशादिभ्यो यः स्यात्। यथा—पाशानां समूहः-पाश्या ॥
षष्ठीसमर्थ पाशादिशब्दों से समूहार्थ में य प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

खलगोरथात् ॥ ४९ ॥

समूहार्थे खलगोरथशब्देभ्यो यः स्यात् । यथा—खलानांसमूहः-खल्या । गव्या । रथ्या ॥
षष्ठीसमर्थ खल, गो और रथ शब्द से समूहार्थ में य प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

इनित्रकट्यचश्च ॥ ५० ॥

समूहार्थे खल गोरथशब्देभ्यो यथासङ्ख्यमिनित्र कट्यच्. इत्येते प्रत्ययाः--स्युः । यथा—खलिनी । गोत्रा। रथकट्या * ॥
षष्ठीसमर्थ खल गो और रथ शब्दों से समूहार्थ मे यथाक्रम इनि, त्र और कट्यच् प्रत्यय हों ॥ ५० ॥

विषयो देशे ॥ ५१ ॥

षष्ठ्यन्तादणादयः स्युरत्यन्तपरिशीलितेऽर्थे स चेद्देशः। यथा-शिबीनां विषयोदेशः-शैबः। औष्ट्रः ॥
षष्ठीसमर्थ देशवाची प्रातिपदिक से विषय अर्थ में अण् आदि प्रत्यय हो ५१

राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ ५२ ॥

राजन्यानां विषयोदेशः-राजन्यकः । आकृति गणोऽयम् ॥
षष्ठीसमर्थ देश वाची राजन्यादि शब्दों से विषयार्थ में वुञ् प्रत्यय हो ५२

भौरिक्याद्यैषुकार्य्यादिभ्योविधल्भक्तलौ

* [खलादिभ्य इनिर्वाच्यः] । डाकिनी । कुटुम्बिनी । आकृति गणोऽयम् ॥

भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्य्यादिभ्यश्च यथासङ्ख्यं विधल् भक्तल् इतीमौ स्याताम् विषयोदेश इत्ये तस्मिन्विषये। यथा-भौरिकीणां विषयोदेशः--भौरिकिविधम् । इषुकारस्या ऽपत्यानि--ऐषुकारयो राजानः। तेषां जनपदः। ऐषुकारिभक्तम् ॥

षष्ठीसमर्थ देशवाची भौरिक्यादि और ऐषुकार्य्यादि प्रातिपदिकों से विषयार्थ में यथाक्रम विधल् और भक्तल् प्रत्यय हो ॥ ५३ ॥

सोऽस्यादिरिति छन्दसः प्रगाथेषु ५४

स इति प्रथमासमर्थादस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्याच्छन्दसः प्रगाथेषु । यथा-पङ्क्तिरादिरस्य-पाङ्क्तः--प्रगाथः * ॥

प्रगाथवाच्य हों तो समानादिकरण प्रथमासमर्थ छन्दोवाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

संग्रामेप्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ५५ ॥

संग्रामेऽभिधेये प्रयोजनवाचिभ्यो योद्धृवाचिभ्यश्च शब्देभ्यः प्रथमा समर्थेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात् । यथा-सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्येति-सौभद्रः संग्रामः। भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य-भारतः संग्रामः ॥

संग्राम वाच्य होतो प्रथमा समर्थ प्रयोजन वाची और योद्धृवाची शब्दों से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५५ ॥

तदस्यांप्रहरणमितिक्रीडायांणः ॥५६॥

तदिति प्रथमा समर्थादस्यामिति सप्तम्यर्थे णः स्यात्, यत्तदिति निर्दिष्टं प्रहरणंचेत्स्यात्, यदस्यामिति निर्दिष्टं क्रीडाचेत् स्यात्।

* [स्वार्थ उपसङ्ख्यानम्] त्रिष्टुबेव--त्रैष्टुभम् । जागतम् ।

यथा—दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायाम्—दाण्डा, मौष्टा ॥

क्रीडा वाच्य होतो प्रथमा समर्थ प्रहरण वाची प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

घञः साऽस्यां क्रियेतिञः ॥ ५७ ॥

घञन्तात् क्रियावाचिनः प्रथमा समर्था दस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञः स्यात्। घञ्इति कृद्ग्रहणम्। यथा—श्येनपातोऽस्यां वर्त्तते श्यैनंपाता (६। ३। ७१ इति मुमागमः)॥

प्रथमासमर्थ घञन्त क्रियावाची प्रातिपदिकसे सप्तम्यर्थ में ञ प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

तदधीते तद्वेद ॥ ५८ ॥

तदिति द्वितीयासमर्थादधीते वेदइत्येतयो रर्थयो यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—व्याकरणमधीते, वेदवा,—वैयाकरणः ॥

द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से अधीते (पढ़ने) और वेद (जानने) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ ५९ ॥

क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यस्सूत्रान्ताच्च ठक् स्यात् तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये। यथा—अग्निष्टोममधीते वेदवा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थादिभ्यः। औक्थिकः। सूत्रान्तात्। वार्त्तिकसूत्रिकः*।

* (मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाठ्ठगणोनेष्यते)। न्यायम्-नैयायिकः। वृत्तिम्—वार्त्तिकाः। लोकायतम्—लौकायतिकः ॥ (सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते)। सांग्रहसूत्रिकः ॥ (विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेतिवाच्यम्) वायसविधिकः। सार्पविद्यिकः। आश्वलक्षणिकः। मातृकल्पिक। पाण्शरकल्पिकः ॥ (अङ्गक्षत्रधर्म्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वाच्यम्)॥ अंगविद्यामधीते वेदवा-आङ्गविद्यः। क्षात्रविद्यः। धार्म्मविद्यः। त्रिविधा विद्या त्रिविद्यामधीते वेदवा—त्रैविद्यः ॥ (आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्चठक् वाच्यः) ॥ यवक्रीतमधिकृत्यकृतमाख्यनमुपचाराद्यवक्रीतिम्—तदधीते वेदवा—यावक्रीतिकः। वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिकावासवदत्ता। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थे वृद्धाच्छः। तस्य लुवाख्यायिकाभ्योबहुलमिति लुप्। ततोऽनेनठक्। वासवदत्तिकः। ऐतिहासिकः। पौराणिकः। [सर्वादेः सादेर्द्विगोश्च लुग्वाच्यः]। सर्ववेदानधीते वेत्तिवा-सर्ववेदः। सवार्त्तिकः। द्विवेदः ॥ [शतषष्टेः षिकन् पथः]। शतपथिकः। शतपथिकी। षष्ठिपथिकः। षष्टिपथिकी ॥ [इकत् पदोत्तरपदात्]। पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः ॥

द्वितीया समर्थ क्रतुवाची उक्थादि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अधीते और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५९ ॥

क्रमादिभ्यः वुन् ॥ ६० ॥

क्रम इत्येव मादिभ्यश्शब्देभ्यो वुन् स्यात् । तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये । यथा-क्रमकः ॥

द्वितीया समर्थ क्रमादि प्रातिपदिकों से अधीते और वेद अर्थ में वुन् प्रत्ययहो

अनुब्राह्मणादिनिः ॥ ६१ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे । यथा-ब्राह्मणसदृशोग्रन्थः-अनुब्राह्मणम् । तदधीते-अनुब्राह्मणी ॥

द्वितीया समर्थ अनुब्राह्मण शब्दसे अधीते और वेद अर्थ में इनि प्रत्ययहो॥

वसन्तादिभ्यः ष्ठक् ॥ ६२ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थे । यथा-वसन्तसहचारितोऽयंग्रन्थोवसन्तः-तमधीते-वासन्तिकः ॥

द्वितीया समर्थ वसन्तादि प्रातिपदिकोंसे अधीते और वेद अर्थमें ठक् प्रत्ययहो ॥

प्रोक्ताल्लुक् ॥ ६३ ॥

प्रोक्तार्थ प्रत्ययात्परस्याध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा पाणिनिनाप्रोक्तम्-पाणिनीयम्, तदधीते पाणिनीयः ॥

प्रोक्तार्थ प्रत्यय से परे अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में प्रत्ययका लुक्हो ॥ ६३ ॥

सूत्राच्च कोपधात् ॥ ६४ ॥

सूत्रवाचिनः ककारोपधादध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। अप्रोक्तार्थ आरम्भः। यथा—अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य-अष्टकम्—पाणिनेः सूत्रम्। तदधीयते, विदन्तिवा,अष्टकाः॥

ककारोपध सूत्रवाची प्रातिपदिक से अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो॥ ॥ ६४॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ६५

छन्दांसि ब्राह्मणाणि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाण्येव स्युः। यथा—कठेनप्रोक्तमधीयते, कठाःअध्येतृवेदितृ प्रत्ययेन विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः। ब्राह्मणानि खल्वापि। ऐतरेयिणः॥

प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण वाची शब्द अध्येतृवेदितृ विषयकहों ६९

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि॥ ६६॥

तदिति प्रथमासमर्थादस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्, यत्प्रथमासमर्थस्तिचेत्स्यात्. यदस्मिन् निति निर्दिष्टं देशश्चेत् स तन्नामास्यात्। यथा—पर्वता अस्मिन् देशे सन्ति—पार्वतः॥

प्रथमा समर्थ अस्ति समानाधिकरण प्रातिपदिक से तन्नाम वाच्य होतो अस्मिन्देशे इस अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो (चतुः सूत्रों में सम्बहोता है)॥६१॥

तेन निर्वृत्तम्॥ ६७॥

तेनेति तृतीया समर्थान्निर्वृत्तमित्यस्मिन् विषये यथा विहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा—सहस्रेणनिर्वृता--साहस्री परिखा॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से देशनाम वाच्य होतो निर्वृत्त अर्थ में यथाविहित प्रत्ययहो॥ ६७॥

तस्य निवासः॥ ६८॥

तस्येतिषष्ठी समर्थान्निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्याद्देशनामधेयेगम्ये। यथा-कुरूणां निवासोदेशः-कौरवः॥

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से निवास अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो देशनामधेय गम्यमान होनेपर ॥ ६८ ॥

अदूरभवश्च ॥ ६९ ॥

तस्येति षष्ठीसमर्थाददूरभव इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययःस्यात्। यथा-हिमालयस्याऽदूरभवो देशो हैमालयः॥

अदूरभव (समीप अर्थ में षष्ठी समर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित (अण्) प्रत्ययहो॥ इससूत्र से आगे चारों अर्थों में अनुवृत्ति (४।२।९२) सूत्रतक चलती है इस-लिये इसप्रकरण को चातुरर्थिक कहते हैं ॥ ६९ ॥

ओः अञ् ॥ ७० ॥

पूर्वोक्तचतुर्षु अर्थेषु उवर्णान्तात्प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा-अरडुः। आरडवम्-क्षत्रिय विशेषः। रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रुरूणां निवासो देशोऽदूरभवोवा रौरवः॥

उक्तचारों अर्थों में षष्ठीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकसे अञ्प्रत्यय हो॥ ७० ॥

मतोश्चबह्वज्ङ्गात् ॥ ७१ ॥

बह्वच् अङ्गं यस्य मतुपस्तदन्तादञ् नाऽण्। यथा-सैध्रकावतम्॥

बह्वजङ्ग मतुबन्त प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो॥ ७१ ॥

बह्वचः कूपेषु ॥ ७२ ॥

बह्वचः प्रातिपदिकाच्चातुरर्थिकोऽञ् स्यात् कूपेष्वभिधेयेषु। यथा-दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः दैर्घवरत्रः॥

कूप वाच्य हो तो बह्वच् प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

उदक् च विपाशः ॥ ७३ ॥

विपाश उत्तरेकूले ये कूपा स्तेष्वभिधेषु चातुरर्थिकोऽञ् स्यात् । अबह्वजर्थः--आरम्भः । यथा--दत्तेन निर्वृतः दात्तःऽकूपः ॥

विपाशा (व्यासा) नदीके उत्तरकूल के कूपवाच्य होंतो समर्थ विभक्ति युक्त प्रातिपादिकसे चातुरर्थिक अञ् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

सङ्कलादिभ्यश्च ॥ ७४ ॥

कूपेष्विति निवृत्तम् । यथा—सङ्कलेननिर्वृत्तम्—साङ्कलम् । पौष्कलम् ॥

सङ्कलादिप्रातिपपदिकों से अञ् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

स्त्रीषुसौवीरसाल्वप्राक्षु ॥ ७५ ॥

स्त्रीलिङ्गेषु एषु देशेषु वाच्येषु अञ् स्यात् । यथा—सौवीरेतावत्—दत्तामित्रेण निर्वृत्तानगरी—दात्तामित्री । साल्वे । विधूमाग्निना निर्वृत्ता नगरी—वैधूमाग्नी । प्राचि । ककन्देन निर्वृत्ता—काकन्दी । माकन्दी ॥

स्त्रीलिङ्ग सौवीर, साल्व और प्राक् वाच्य होंतो अञ् प्रत्यय हो ॥ ७५ ॥

सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥

यथा—सुवास्तोरदूरभवं नगरं—सौवास्तवम् ॥

सुवास्तु आदिशब्दो से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय हो ॥ ७६ ॥

रोणी ॥ ७७ ॥

रोणीशब्दात्तदन्ताच्चाण् स्यात् । रौणः । आजकरौणः ॥

रोणी शब्द से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

कोपधाच्च ॥ ७८ ॥

ककारोपधात्प्रातिपदिकाच्चातुरर्थिकोऽण् स्यात्। यथा—कृकवाकुना निर्वृत्तम्—कार्कवाकवम् ॥

ककारोपध प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकः, अरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ७९ ॥

सप्तदशभ्यः सप्तदश क्रमात्स्युश्चातुरर्थ्याम्। यथा-अरीहणादिभ्योवुञ्। अरीहरेण निर्वृत्तम्—आरीहणकम्। कृशाश्वादिभ्यश्छण्। कृशाश्वेननिर्वृत्तम्—कार्शाश्वीयम्। ऋष्यादिभ्यः कः। ऋष्या अत्रदेशेसन्ति, ऋश्यैर्निर्वृत्तं वा—ऋष्यकम्। कुमुदादिभ्यष्ठच्। कुमुदान्यत्रदेशे सन्ति—कुमुदिकम्। काशादिभ्यइलः। काशस्तृणविशेषः। काशा अत्र सन्ति—काशिलम्। तृणादिभ्यः सः। तृणान्यस्मिन्देशेसन्ति—तृणसानदी नगरीवा। प्रेक्षादिभ्य इनिः। प्रेक्षाबुद्धिः। तया हेतुना निर्वृत्तः। प्रेक्षीग्रामः। अथवा प्रेक्षा अत्र सन्ति-प्रेक्षीदेशः। अश्मादिभ्योरः। अश्मानोऽत्र देशे सन्ति—अश्मरम्। सख्यादिभ्यो ढञ्। सख्या पुरुष विशेषेण निर्वृतम्—साखेयं नगरं मण्डलं वा। सङ्काशादिभ्यो ण्यः। सङ्काशेन राज्ञा निर्वृत्तम्—सा-

ङ्काश्यम् । बलादिभ्यो यः । बलेन निर्वृत्ता—बल्यानामनगरी । पक्षादिभ्यःफक् । पक्षेण निर्वृत्तम्,पक्षस्य निवासोवा--पाक्षायणं नगरं राष्ट्रं वा । कर्णादिभ्यः फिञ् । कर्णेननिर्वृत्तः, कर्णस्य निवासोवा--कार्णायनिः--अर्कोगुल्मः स्फटिकश्च । सुतङ्गमादिभ्यइञ् । सुतङ्गमेन निर्वृत्तं सुतङ्गमस्य निवासो वा--सौतङ्गमिः । प्रगद्यादिभ्योञ्यः--प्रगाद्यम् । वराहादिभ्यः कक् । वराहा अत्रदेशेसन्ति--वाराहकम् । कुमुदादिभ्यष्ठक् । कौमुदिकम् ॥

अरीहणादि, कृशाश्वादि, ऋश्यादि, कुमुदादि, काशादि, तृणादि, प्रेक्षादि, अश्मादि, सख्यादि, सङ्काशादि, बलादि, पक्षादि, कर्णादि, सुतङ्गमादि , प्रगदिनादि, वराहादि, और कुमुदादि इन १७ प्रातिपदिकों से तथाक्रम वुञ्, छण्, क, ठच्, इल श, इनि, ढञ्, ण्य, य, फक्, फिञ् इञ्, ञ्य कक्, ठक् ये १७ चातुरर्थिक प्रत्यय हों ॥ ७९ ॥

जनपदे लुप् ॥ ८० ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य लुप्स्यात् । यथा--ग्रामसमुदायोजनपदः । पञ्चालानां निवासो जनपदः—पञ्चालाः । कुरवः ॥

जनपद (ज़िला) वाच्य हो तो उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो ॥ ८० ॥

वरणादिभ्यश्च ॥ ८१ ॥

वरण इत्येवमादिभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्यस्य लुप्स्यात् । यथा—वरणानामदूर भवं नगरं—वरणाः ॥

वरण आदि प्रातिपदिकों से उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो ॥ ८१ ॥

शर्करायां वा ॥ ८२ ॥

शर्करशब्दादुत्पन्नस्य चातुरर्थिकस्य प्रत्ययस्य वा लुप्स्यात् ।

कुमुदादौ, वराहादौ च पाठसामर्थ्यात्पक्षे ठच्ककौ । षड्रूपाणि । यथा-शर्करा, शार्करम्, शार्करिकम्, शर्करीयम्, शर्करिकम्, शार्कर्कम् ॥

शर्करा (चीनी) शब्द से उत्पन्न चातुरर्थिक प्रत्यय का विकल्प से लुप् हो ८२

ठक्छौ च ॥ ८३ ॥

शर्कराया इमौस्तः । शार्करिकम्, शर्करीयम् ॥

शर्कराशब्द से चातुरर्थिक ठक् और छ प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

नद्यां मतुप् ॥ ८४ ॥

नद्यामभिधेयायां चातुरर्थिको मतुप्प्रत्ययः स्यात् । यथा-इक्षवो यस्यां सन्ति-इक्षुमती ॥

नदीवाच्य हो तो सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो ८४

मध्वादिभ्यश्च ॥ ८५ ॥

चातुरर्थिको मतुप् स्यात् । यथा--मधून्यत्रदेशे सन्ति-मधुमान् ।

मधु आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ॥ ८६ ॥

यथा-कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् * ॥

कुमुद, नड और वेतस शब्दों से चातुरर्थिड्मतुप् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

नडशादाड्ड्वलच् ॥ ८७ ॥

* (महिषाच्चेति वाच्यम्) ॥ महिषमान् नामदेशः ॥

यथा—नड्वलः । शाद्वलः ॥

नड और शाद शब्द से चातुरर्थिक ड्वलच् प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

शिखायां वलच् ॥ ८८ ॥

यथा—शिखावलं नाम नगरम् ॥

शिखा शब्द से चातुरर्थिक वलच् प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

उत्करादिभ्यश्छः ॥ ८९ ॥

उत्करो ह्शतपांशु प्रचयः । सोऽस्यास्तीत्युत्करीयं नगरम् ॥

उत्कर आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक छ प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

नडादीनां कुक् च ॥ ९० ॥

नड इत्येवमादीनां कुगागमस्याच्चातुरर्थिकश्छश्चप्रत्ययः । यथा—नडकीयम् ॥

नड आदि शब्दों को कुक् का आगम हो और इनसे चातुरर्थिक छ प्रत्यय भी हो

शेषे ॥ ९१ ॥

शेष इत्यधिकारोऽयम् ॥

शेष अर्थों में (४ । ३ । १३१) सूत्र तक प्रत्यय विधान किया गया है यह अधिकार है ॥ ९१ ॥

राष्ट्रावारपाराद् घखौ ॥ ९२ ॥

आभ्यां शेषे क्रमाद् घखौ स्याताम् । यथा—राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः । अवारपारीणः । * ॥

राष्ट्र और अवारपार शब्दों से यथासङ्ख्य शैषिक घ और ख प्रत्यय हों ९२

* (विगृहीतादपि) । अवारीणः । पारीण । (विपरीताच्च) । पारावारीणः ।

ग्रामाद् यखञौ ॥ ९३ ॥

यथा-ग्रामे भवो जातःक्रीतोलब्धः कुशलो वा ग्राम्यः। ग्रामीणः॥

ग्राम शब्द से शैषिक य और खञ् प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ॥ ९४ ॥

यथा-कुत्सिताः त्रयः-कत्रयः। कत्त्रयाणां कत्रेर्वा गर्दभ्या इदम्-कात्रेयकम् ॥

कत्रि आदि शब्दों से शैषिक ढकञ् प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

कुलकुक्षि ग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु ९५

कुल कुक्षि ग्रीवा शब्देभ्यो यथासङ्ख्यं श्वन् असि अलङ्कार इत्येतेषु जातादिश्वर्थेषु ढकञ् स्यात्। यथा-कौलेयकः-श्वा। कौलोऽन्यः। कौक्षेयकः-असिः। कौक्षोऽन्यः। ग्रैवेयकः-अलङ्कारः। ग्रैवोऽन्यः ॥

यथाक्रम श्वन्, असि और अलङ्कार वाच्य हों तो कुल कुक्षि और ग्रीवा शब्द से शैषिक ढकञ् प्रत्यय हो ॥ ९५ ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ॥ ९६ ॥

यथा-नद्यां जातो भवोवा नादेयः ॥

नदी आदि प्राति पदिकों से शैषिक ढक् प्रत्ययहो ॥ ९६ ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥९७॥

दक्षिणा इत्यजन्त मव्ययम्। यथा-दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः॥

दक्षिणा, पश्चात् और पुरस शब्द से शैषिक त्यक् प्रत्ययहो ॥ ९७ ॥

कापिश्याः ष्फक् ॥ ९८ ॥

यथा—कापिश्यां जातादि—कापिशायनं-मधु। कापिशायनी-द्राक्षा॥
कापिशी शब्द से शैषिक ष्फक् प्रत्ययहो ॥ ९८ ॥

रङ्कोरमनुष्येऽण् च ॥ ९९ ॥

अमनुष्येऽभिधेयेरंकुशब्दाच्छैषिकोण् चात् ष्फक् स्यात्। यथा--
राङ्कवः गौः, राङ्कवायणः ॥
मनुष्य भिन्न वाच्य होतो रंकु शब्द से शैषिक अण् और ष्फक् प्रत्ययहो ९९

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ १०० ॥

यथा--दिविभवं--दिव्यम्।प्राच्यम्।अवाच्यम्।उदीच्यम्।प्रतीच्यम् ॥
दिव्, प्राच्,अवाच् उदच् और प्रत्यच शब्द से शैषिक यत् प्रत्ययहो ॥ १०० ॥

कन्थायाष्ठक् ॥ १०१ ॥

यथा--कान्थिकः ॥
कन्था (गुदडी) शब्द से शैषिक ठक् प्रत्ययहो ॥ १०१ ॥

वर्णौ वुक् ॥ १०२ ॥

वर्णुः—नदः तस्य समीपदेशः--वर्णुः। तद्विषयार्थ वाचिकन्था शब्दाद्वुक् स्यात्। यथा—तथाहि जातं हिमवत्सु कान्थकम् ॥
वर्णु देश में कन्था शब्दसे शैषिक वुक् प्रत्ययहो ॥ १०२ ॥

अव्ययात्त्यप् ॥ १०३ ॥

(अमेह क्वतसित्रेभ्य एव) । अमात्यः इह त्यः । क्वत्यः । तत्रत्यः । यत्रत्यम् * ॥

अव्ययों से शैषिक त्यप् प्रत्ययहो ॥ १०३ ॥

ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् १०४

एभ्यो वा त्यप् । ऐषमस्त्यम् । ऐषमस्तनम् । ह्यस्त्यम् । ह्यस्तनम्, श्वस्त्यम्, श्वस्तनम् ॥

ऐषमस, ह्यस् और श्वस् प्रातिपदिक से शैषिक विकल्पसे त्यप् हो ॥ १०४॥

तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ ॥ १०५॥

यथासंख्येन । यथा--पाल्वलतीरम् । वार्करूप्यम् ॥

तीरोत्तरपद और रूपोत्तरपद प्रातिपदिकों से यथाक्रम शैषिक अञ् और ञ प्रत्ययहो ॥ १०५ ॥

दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ॥१०६॥

यथा-- पौर्वशालः । दाक्षिणशालः ॥

असंज्ञाविषयक दिक्पूर्व पद प्रातिपदिक से शैषिक ञ प्रत्ययहो ॥ १०६ ॥

मद्रेभ्यो ऽञ् ॥ १०७ ॥

दिक् पूर्व पदान्मद्रशब्दाच्छैषिकोऽञ् स्यात् । यथा-पौर्वमाद्रः आपरमाद्रः (७ । ३ । १३ इति वृद्धिः) ॥

दिक् पूर्वपद मद्र शब्दसे शैषिक अञ् प्रत्ययहो ॥ १०७ ॥

* (त्यबने ध्रुंवे) ॥ नियत ध्रुवं--नित्यम् ॥ (निसो गते) ॥ निर्गतो वर्णा श्रमेभ्यो— निष्ट्यः चराडालादिः ॥ (आवि सछन्दासि ॥ आवि ष्टोयो वर्द्धते ॥ (अरण्याण्यः) ॥ आरण्याः सुमनसः ॥ (दूरादेत्यः) दूरेत्यः पथिकः ॥ (उत्तरा दादञ् । औत्तराहः ॥

उदीच्यग्रामांच्च बह्वचो ऽन्तोदात्तांत् ॥

अञ् स्यात् । यथा—शैवपुरम् । माण्डवपुरम् ॥

अन्तोदात्त बह्वच उदीच्यग्राम वाची प्रातिपदिकों से शैषिक अञ् प्रत्ययहो ॥

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥

माद्रीप्रस्थः । पलद्यां जातो भवो वा--पालदः । नैलीनकः ॥

प्रस्थोत्तरपद, पलद्यादि और ककारोपध प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्ययहो ॥

कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ ११० ॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्योऽण् स्यात् । यथा--काण्वः । (गर्गादिः) । कण्वस्यच्छात्राः- काण्वाः ॥

गोत्र प्रत्ययान्त कण्वादि प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्ययहो ॥ ११० ॥

इञश्च ॥ १११ ॥

गोत्रे य इञ् तदन्तादण् स्यात् । यथा—दाक्षाः ॥

गोत्रमें विहित जो इञ् तदन्त प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्ययहो ॥ १११ ॥

न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु ॥ ११२ ॥

यथा—पौष्कीयाः । काशीयाः ॥

प्राच्य भरत गोत्र में विहित जो इञ् तदन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्यय न हो ॥ ११२ ॥

वृद्धांच्छः ॥ ११३ ॥

यथा-शालीयः। मालीयः। तदीयः॥

वृद्ध संज्ञक प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्ययहो॥ ११३॥

भवतष्ठक्छसौ॥ ११४॥

वृद्धाद् भवत इमौ स्याताम्। यथा-भावत्कः। भवदीयः॥

वृद्ध संज्ञक भवतु शब्दसे शैषिक ठक् और छस् प्रत्ययहो॥ ११४॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ॥११५॥

काशयोजनपदाः। तेषु भवा जाता वा। यथा-काशिकी। काशिका। वैदिकी। वैदिका॥

वृद्ध संज्ञक काशि आदि प्रातिपदिकों से शैषिक ठञ् और ञिठ् प्रत्ययहों॥

वाहीकग्रामेभ्यश्च॥ ११६॥

वाहीक ग्रामवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ स्याताम्। यथा-कास्तीरं नाम-वाहीकग्रामः। कास्तीरिकी, कास्तीरिका॥

वृद्ध संज्ञक वाहीक ग्रामवाचीय प्रातिपदिकोंसे शैषिक ठञ् और ञिठ् प्रत्ययहो

विभाषोशीनरेषु॥ ११७॥

एषु ये ग्रामास्तदवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ वा स्याताम्। यथा--सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया॥

उशीनरों में वाहीक ग्राम वाचीय प्रातिपदिकों से विकल्प करके शैषिक ठञ् और ञिठ् प्रत्ययहो॥

ओर्देशे ठञ्॥ ११८॥

उवर्णान्ताद्देशवाचिनश्शैषिकष्ठञ् स्यात्। यथा-निषादकर्षुः—नैषादकर्षुकः ॥

देशवाचीय उवर्णान्त प्रातिपदिक से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

वृद्धात् प्राचाम् ॥ ११९ ॥

उवर्णान्ताद् वृद्धात् प्राग्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकष्ठञ् स्यात् । यथा—आढकजम्बुकः । शाकजम्बुकः ॥

प्राग्देशवाचीय वृद्ध उवर्णान्त प्रातिपदिक से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥

धन्वयोपधाद् वुञ् ॥ १२० ॥

धन्वाविशेषवाचिनोयकारोपधाच्च देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ् स्यात् । यथा—ऐरावतंधन्व ऐरावतकः । योपधात् । सांकाश्यकः । काम्पिल्यकः ॥

धन्व वाचीय और यकारोपध देश वाचीय वृद्ध प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

प्रस्थपुरवहान्ताच्च ॥ १२१ ॥

एतदन्ताद्वृद्धाद् देशवाचिनो वुञ् स्यात्। यथा—मालाप्रस्थकः । नान्दीपुरकः । पैलुवहकः ॥

देश वाचीय वृद्ध संज्ञक प्रस्थान्त पुरान्त और वहान्त प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥ १२२ ॥

रोपधात् ईकारान्तात्प्राग्देशवाचिनश्च वृद्धात् वुञ् स्यात् । यथा-पाटलिपुत्रकः । ईतः । काकन्दी, काकन्दकः ॥

प्राग्देश वाचीय वृद्ध संज्ञक रोपध और ईकारान्त प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

जनपदतदवध्योश्च ॥ १२३ ॥

जनपदवाचिनस्तदवधि वाचिनश्च वृद्धाच्छैषिको वुञ् स्यात् । यथा--आदर्शकः । त्रैगर्त्तकः ॥

वृद्ध संज्ञक जनपद वाचीय और तदवधिवाचीय प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्ययहो ॥ १२३ ॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् १२४

अवृद्धाद्वृद्धाच्च जनपदतदवधिवाचिनो बहुवचनविषयात् प्रातिपदिकाच्छैषिको वुञ् स्यात् । यथा--अवृद्धाज्जनपादात्--आङ्गकः । अवृद्धाज्जनपदावधेः--आजमीढकः । वृद्धाज्जनपदात्-दार्वकः । वृद्धाज्जनपदावधेः- कालञ्जरकः ॥

बहुवचनविषयक वृद्ध अवृद्ध संज्ञक जनपद वाचीय और तदवधिवाचीय प्रातिपदिक से शैषिक वुञ् प्रत्ययहो ॥ १२४ ॥

कच्छाग्निवक्त्रगर्त्तोत्तरपदात् ॥ १२५ ॥

देशवाचिनो वृद्धादवृद्धाच्च शैषिको वुञ् स्यात् । यथा–दारुकच्छकः । काण्डाग्नकः । सैन्धुवक्त्रकः । बाहुगर्त्तकः ॥

देशवाचीय वृद्ध अवृद्ध संज्ञक कच्छोत्तर पद अग्न्युत्तरपद वक्त्रोत्तरपद प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२५ ॥

धूमादिभ्यश्च ॥ १२६ ॥

देशवाचिभ्यो वुञ् स्यात् । यथा–धौमकः । दैपकः ॥

देशवाचीय धूमादि प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः ।१२७।

नगरशब्दाद् वुञ्स्यात् कुत्सनेप्रावीण्ये च गम्ये । यथा—कुत्सनम् निन्दनम् । प्रावीण्यम् नैपुण्यम् । नागरकः चौरः, शिल्पी वा

कुत्सन और प्रावीण्य गम्यमान हो तो नगरशब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥

अरण्यान् मनुष्ये ॥ १२८ ॥

वुञ्स्यात् । यथा—आरण्यको मनुष्यः * ॥

मनुष्यवाच्य हो तो अरण्य शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ॥ १२९ ॥

वुञ् स्यात् । यथा—कौरवकः । कौरवः । यौगन्धरकः । यौगन्धरः ॥

देशवाचीय कुरु और युगन्धर शब्द से विकल्प करके शैषिक वुञ् प्रत्यय हो ॥

मद्रवृज्योः कन् ॥ १३० ॥

यथा--मद्रेषु जातः—मद्रकः । वृजिकः ॥

देशवाचीय मद्र और वृजि शब्द से शैषिक कन् प्रत्यय हो ॥ १३० ॥

कोपधादण् ॥ १३१ ॥

यथा--माहिषिकः ॥

देशवाचीय ककारोपध प्रातिपदिक से शैषिक अण् प्रत्यय हो ॥ १३१ ॥

* (पथ्यध्यायन्याय विहारहस्तिष्विति वाच्यम्) ॥ आरण्यकः पन्थाः । आरण्यकोऽध्यायः । आरण्यको न्यायः । आरण्यको विहारः । आरण्यको हस्ती । (गोमयेषु वा) ।आरण्यकाः, आरण्या वा–गोमयाः ॥

कच्छादिभ्यश्च ॥ १३२ ॥

कच्छ इत्येवमादिभ्योदेशवाचिभ्योऽण् स्यात्। यथा-कच्छे भवः-काच्छः। सैन्धवः। काश्मीरः-कुङ्कुमः॥

देशवाचीय कच्छ आदि प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय हो॥ १३२॥

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ॥ १३३ ॥

मनुष्ये मनुष्यस्थे च जातादौ प्रत्ययार्थे कच्छादिभ्योवुञ् स्यात्। यथा-काच्छको-मनुष्यः। काच्छकं हसितम्॥

मनुष्य वा मनुष्यस्थ प्रत्ययार्थ हो तो कच्छादि प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो॥ १३३॥

अपदातौ साल्वात् ॥ १३४ ॥

साल्वशब्दस्य कच्छादित्वाद् वुञिसिद्धे नियमार्थमिदम्। अपदातावेवोति। यथा--साल्वको मनुष्यः॥

अपदाति (पैदल) मनुष्यार्थ में देशवाचीय साल्वशब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो॥ १३४॥

गोयवाग्वोश्च ॥ १३५ ॥

आभ्यां वुञ् स्यात्। यथा-साल्वको गौः। साल्विका यवागूः॥

गौ और यवागू प्रत्ययार्थ हों तो देशवाचीय साल्व शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय हो॥ १३५॥

गर्त्तोत्तरपदाच्छः ॥ १३६ ॥

गर्त्तोत्तरपदाद्देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छैषिकश्छः स्यात्। यथा-वृकगर्त्तीयम्॥

देशवाचीय गर्तोत्तरपद प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १३६ ॥

गहादिभ्यश्च ॥ १३७ ॥

यथा-गहे भवो जातोवा गहीयः * ॥

गहादि प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १३७ ॥

प्राचां कटादेः ॥ १३८ ॥

प्राग्देशवाचिनः कटादेश्शैपिकश्छः स्यात् । यथा-कटनगरीयम् । कटघोषीयम् । कटपल्वलीयम् ॥

प्राग्देश वाचीय कटादि प्रातिपदिकों से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

राज्ञः क च ॥ १३९ ॥

राज्ञः ककारश्चान्तादेशश्छश्च प्रत्ययः स्यात् । यथा-राजकीयम् ॥

राजन् शब्द को ककारान्त आदेश हो औ राजन् शब्द से छ प्रत्यय हो ॥ १६६ ॥

वृद्धादकेकान्तखोपधात् ॥ १४० ॥

अक इक एतदन्तात् खोपधाच्च,-वृद्धाद्देशवाचिनःप्रातिपदिकाच्छः स्यात् । यथा-ब्राह्मणको नाम जनपदः-यत्रब्राह्मणाआयुधजीविनः-तत्र जातोभवोवा-ब्राह्मणकीयः । शाल्मलिकीयः। अयोमुखीयः॥

वृद्धसंज्ञक देशवाचीय अकान्त, इकान्त और खकारोपध प्रातिपदिक से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

* (मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च) ॥ मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । (कुग्जनस्यपरस्यच) ॥ जनकीयम् । परकीयम् । (देवस्यच) ॥ देवकीयम् । (स्वस्यच) । स्वकीयम् । (वेणुकादिभ्यश्छण् वाच्यः) ॥ वेणुकीयम् । वैत्रकीयम् ॥

कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् ॥ १४१

कन्थादि पञ्चकोत्तरपदाद्देशवाचिनोवृद्धाच्छः स्यात् । यथा–दाक्षिकन्थीयम् । दाक्षिपलदीयम् । दाक्षिनगरीयम् । दाक्षिग्रामीयम् । दाक्षिह्रदीयम् ॥

देशवाचीय वृद्धसंज्ञक कन्थोत्तरपद, पलदोत्तरपद, नगरोत्तरपद, ग्रामोत्तरपद, और ह्रदोत्तरपद प्रातिपदिकों से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १४१ ॥ ॥

पर्वताच्च ॥ १४२ ॥

यथा–पर्वतीयो मनुष्यः ॥

पर्वत शब्दसे शैषिक छ प्रत्ययहो ॥ १४२ ॥

विभाषाऽमनुष्ये ॥ १४३ ॥

मनुष्यभिन्नार्थे पर्वताच्छो वा स्यात्। पक्षेऽण् । पर्वतीयानि, पार्वतानि वा, फलानि ॥

मनुष्य से भिन्न वाच्य होतो पर्वत शब्दसे शैषिक छ प्रत्यय विकल्प से हो ॥

कृकणपर्णाद् भारद्वाजे ॥ १४४ ॥

भारद्वाजे देशवाचिभ्यामाभ्यां छस्स्यात्। यथा–कृकणीयम् । पर्णीयम् ॥

भारद्वाज देशवाचीय कृकण और पर्ण शब्द से शैषिक छ प्रत्यय हो ॥ १४४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयःपादः ॥

अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ॥ १ ॥

चाच्छः । यथा—युष्माकमयम्—यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द से शैषिक खञ् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १ ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्यातां खञि, अणि च । यथा—यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

खञ् और अण् प्रत्ययपरे हों तो युष्मद् और अस्मद् शब्दको यथासङ्ख्य युष्माक और अस्माक आदेश हों ॥ २ ॥

तवकममकावेकवचने ॥ ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मस्मदोस्तवकममकौ स्यातां खञि, अणि च । यथा—तावकीनः, तावकः । मामकीनः, मामकः ॥

खञ् और अण् प्रत्ययपरे होंतो एकवचन में युष्मद् और अष्मद् शब्दकोयथा सङ्ख्य तवक और ममक आदेश हो ॥ ३ ॥

अर्द्धाद् यत् ॥ ४ ॥

यथा—अर्द्ध्यम् ॥

अर्द्धशब्द से शैशिक यत् प्रत्यय हो ॥ ४ ॥

पराऽवराऽधमोत्तमपूर्वाच्च ॥ ५ ॥

यथा—परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । अधमार्द्ध्यम् । उत्तमार्द्ध्यम् ॥

पर, अपर, अधम और उत्तमशब्द जिसके पूर्वहो ऐसे अर्धशब्द से शैषिक यत् प्रत्यय हो ॥ ५ ॥

दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च ॥ ६ ॥

चाद्यत् । यथा-पौर्वार्द्धिकम्, पूर्वार्द्ध्यम् । दाक्षिणार्द्धिकम्, दक्षिणार्द्ध्यम् ॥

दिशावाचीय शब्द जिसके पूर्वहो ऐसे अर्द्धशब्दसे शैषिक ठञ् और यत्प्रत्ययहो। ६।

ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ॥ ७ ॥

ग्रामैकदेशवाचिनः, जनपदैक देशवाचिनश्च,-दिक्पूर्वपदाद-र्द्धान्तादञ् ठञौ स्याताम् । यथा--इमेऽस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य-वा,-पौर्वार्द्धाः, पौर्वार्द्धिकाः ॥

ग्रामैकदेश देशवाचीय तथा जनपदैक देशवाचीय दिक्पूर्वपद अर्द्धान्त प्रातिपदिक से शैषिक अञ् और ठञ् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

मध्यान्मः ॥ ८ ॥

यथा-मध्यमः । * ॥

मध्यम शब्दसे शैषिक म प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

असाम्प्रतिके ॥ ९ ॥

मध्यशब्दादकार प्रत्ययः स्यात्साम्प्रतिकेऽर्थे । यथा-उत्कर्षापकर्षहीनः-मध्यः-वैयाकरणः।मध्यदारु । नातिह्रस्वंनातिदीर्घमित्यर्थः॥

साम्प्रतिक अर्थमें मध्यशब्द से अ प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

द्वीपादनुसमुद्रंयञ् ॥ १० ॥

* (आदेश्चेतिवाच्यम्) ॥ आदिमः (अवोधसोर्लोपश्च] । अवमम् । अधमम् ॥

समुद्रस्य समीपे योद्वीपस्तस्माद्यञ् स्यात् । यथा-द्वैप्यं भवन्तोऽनुचरन्ति चक्रम् ॥

समुद्रसमीपीय द्वीपशब्द से शैषिक यञ् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

कालाट्ठञ् ॥ ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् । यथा-मासिकम् । सांवत्सरिकम् । सायम्प्रातिकः । पौनःपुनिकः ॥

कालवाचीय शब्दों से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ ११

श्राद्धे शरदः ॥ १२ ॥

शरच्छब्दात् ठञ् स्यात् श्राद्धेऽभिधेये । यथा-शारदिकं-श्राद्धम् ॥

श्राद्धवाच्य होतो शरद्शब्दसे शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ १२ ॥

विभाषारोगातपयोः ॥ १३ ॥

रोगे आतपे चाभिधेये शरच्छब्दाट्ठञ् वा स्यात् । यथा-शारदिकः, शारदोवा-रोगः । आतपोवा ॥

रोग और आतपवाच्य होतो शरद् शब्द से शैषिक ठञ्प्रत्यय विकल्पसे हो ।१३।

निशाप्रदोषाभ्यांच ॥ १४ ॥

वाठञ् स्यात् । यथा-नैशिकम्, नैशम् । प्रादोषिकम्, प्रादोषम् ॥

निशा (रात्रि) और प्रदोष (रात्रिका पूर्वभाग) से शैषिक ठञ् प्रत्यय विकल्प से हो ॥ १४ ॥

श्वसस्तुट्च ॥ १५ ॥

श्वस्शब्दाट्ठञ् वा स्यात् तस्यचतुडागमः। यथा—शौवस्तिकम् (७।३।४। इत्यैजागमः)। श्वस्त्यम् ॥

श्वस् (आनेवालाकल) शब्द से शैषिक ठञ् प्रत्यय विकल्प से हो और श्वस् को तुट् आगम भी हो ॥ १५॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्यः, ऋतुभ्यः, नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् स्यात्। यथा—सन्धिवेलायां भवम्—सान्धिवेलम्। ग्रैष्मम्। तैषम् *॥

कालवृत्ति सन्धिवेलादि (सन्धिकालादि) ऋतु और नक्षत्रों से शैषिक अण् प्रत्यय हो॥ १६ ॥

प्रावृष एण्यः ॥ १७ ॥

यथा—प्रावृषेण्यो बलाहकः ॥

कालवाचीय प्रावृष् (वर्षाकाल) शब्द से शैषिक एण्य प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

वर्षाभ्यष्ठक् ॥ १८ ॥

यथा—वर्षासुसाधु--वार्षिकंवासः ॥

कालवाचीत वर्षाशब्द से शैषिक ठक् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

छन्दसि ठञ् ॥ १९ ॥

वर्षाशब्दाच्छन्दसि विषये ठञ् स्यात्। स्वरेभेदः। यथा—नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू ॥

छन्दोविषय में कालवाचीय वर्षा शब्द से शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ १९ ॥

* [संवत्सरात् फलपर्वणोः]। सांवत्सरफलम्] सांवत्सरंपर्व ॥

वसन्ताच्च ॥ २० ॥

वसन्तशब्दाच्छन्दसि ठञ् स्यात् । यथा—मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ॥

वासन्त शब्द से छन्दसिविषय में शैषिक ठञ् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

हेमन्ताच्च ॥ २१ ॥

हेमन्तशब्दाच्छन्दसिविषये ठञ् स्यात् । यथा—सहश्च सहस्यश्च-हैमन्तिकावृतू ॥

हेमन्त शब्द से छन्दो विषय में ठञ् प्रत्यय हो ॥ २१ ॥

सर्वत्राऽण् च तलोपश्च ॥ २२ ॥

हेमन्तशब्दादण् स्यात् तलोपश्च वेदलोकयोः चात्पक्षे ऋत्वण् । यथा—हैमनम्, हैमन्तम् * ॥

हेमन्त शब्द से सर्वत्र (वेद और लोक में) शैषिक अण् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

सायंचिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ॥ २३ ॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्यः, अव्ययेभ्यश्च, कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्याताम्,तयोस्तुट् च । यथा—सायंभवम्-सायन्तनम्।चिरन्तनम्। प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् । दिवातनम् * ॥

कालवाचीय सायम् चिरम् प्राह्णे प्रगे और अव्यय शब्दों से शैषिक ट्यु और ट्युल प्रत्यय हों और ट्यु और ट्युल को तुडागम हो ॥ २३ ॥

* (चिरपरुत् परारिभ्यस्त्नो वाच्यः) ॥ चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् ॥ (अग्रादिभ्यश्चाडिमच्) ॥ आग्रिमम् । आदिमम् । पश्चिमम् । (अन्ताच्च) ॥ अन्तिमः ॥

विभाषा पूर्वाह्णाऽपराह्णाभ्याम्॥२४॥

आभ्यां वा ट्युट्युलौ स्याताम्, तयोस्तुट् च पक्षे ठञ्। यथा-पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम्। अपराह्णेतनम्,आपराह्णिकम्। घकालतनेषु (६ । ३ । १७) इत्यलुक् ॥

कालवाचीय पूर्वाह्ण और पराह्ण शब्दों से विकल्प से शैषिक ट्यु और ट्युल प्रत्यय हों ॥ २४ ॥

तत्र जातः ॥ २५ ॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थे यथाविहितं (अणादयः घादयश्च) प्रत्ययाः स्युः। यथा-स्रुघ्ने जातः-स्रौघ्नः। माथुरः। राष्ट्रियः। अवारपारीणः। इत्यादि ॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से जात अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय हों २५

प्रावृषष्ठप् ॥ २६ ॥

यथा--प्रावृषि जातः-प्रावृषिकः ॥

सप्तमीसमर्थ प्रावृष् शब्द से जात अर्थ में ठप् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

सञ्ज्ञायां शरदो वुञ् ॥ २७ ॥

यथा--शारदकाः-दर्भविशेषाः, मुद्गविशेषाश्च ॥

सप्तमीसमर्थ शरद् शब्द से जात अर्थ में संज्ञा गम्यमान होनेपर वुञ् प्रत्यय हो

पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करात् वुन् ॥ २८ ॥

यथा--पूर्वाह्णकः । अपराह्णकः । आर्द्रकः । मूलकः । प्रदोषकः। अवस्करकः ॥

संज्ञागम्यमान हो तो सप्तमी समर्थ पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष और अवस्कर शब्द से जात अर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ २८ ॥

पथः पन्थ च ॥ २९ ॥

यथा--पथिजातः--पन्थकः ॥

सप्तमी समर्थ पथिन् शब्द से जात अर्थ में वुन् प्रत्यय और पथिन् शब्दको पन्थ आदेशहो ॥ २९ ॥

अमावास्याया वा ॥ ३० ॥

यथा--अमावास्यकः । आमावास्यः ॥

सप्तमी समर्थ अमावास्या शब्दसे जात अर्थ में विकल्प करके वुन् प्रत्ययहो ॥

अ च ॥ ३१ ॥

यथा -अमावास्यः ॥

सप्तमी समर्थ अमावास्या शब्द से जात अर्थ में अ प्रत्ययहो ॥ ३१ ॥

सिन्ध्वपकराभ्याम् कन् ॥ ३२ ॥

यथा--सिन्धौ जातः--सिन्धुकः । अपकरकः ॥

सप्तमी समर्थ सिन्धु और अपकर शब्दों से जात अर्थ में कन् प्रत्ययहो ३२

अणञौ च ॥ ३३ ॥

क्रमात् स्याताम् । यथा--सैन्धवः । आपकरः ॥

सप्तमी समर्थ सिन्धु और अपकर शब्दों से जात अर्थ में यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय हों ॥ ३३ ॥

श्रविष्ठाफलगुन्यनुराधा स्वातितिष्य पुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक् ॥

एभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यः परस्य जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा -श्रविष्ठासु जातः--श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिस्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। अषाढः। बहुलः * ॥

सप्तमी समर्थ श्रविष्ठादि नक्षत्र वाचीय शब्दों से जात अर्थ में प्रत्ययका लुक् हो॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ।३५।

एभ्यो जातार्थ प्रत्यस्य लुक् स्यात् । यथा–गोस्थाने जातः–गोस्थानः। गोशालः। खरशालः ॥

सप्तमी समर्थ स्थानान्त, गोशाल और खरशाल प्रातिपदिकों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्ययका लुक् हो ॥ ३५ ॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्शतभिषजोवा

एभ्यो जातार्थस्य लुग्वा स्यात् । यथा–वत्साशाले जातः--वत्सशालः। वात्स शालः। अभिजित्। आभिजितः। अश्वयुक्। आश्वयुजः। शतभिक्। शातभिषजः ॥

सप्तमी समर्थ वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुज और शतभिषज् शब्दों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्ययका लुक् विकल्प करके हो ॥ ३६ ॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥ ३७ ॥

* [चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्] ॥ चित्रायांजातः—चित्रा । रेवतीरोहिणीआभ्यां [लुक् तद्धितलुकि] इति लुकिकृतेपि पिप्पल्यादेराकृति गणत्वात्पुनर्ङीष् ॥ [फल्गुन्यषाढाभ्यां टा नौ वक्तव्यौ] स्त्रियामित्ये वा फल्गुनी । अषाढा ॥

जातार्थ प्रत्ययस्य बहुलं लुक् स्यात्। यथा–रोहिणः। रौहिणः। मृगशिरः। मार्गशीर्षः॥

सप्तमीसमर्थ नक्षत्र वाचीय शब्दों से जातार्थ में उत्पन्न प्रत्यय का बाहुल्य से लुक् हो॥ ३७॥

कृतलब्धक्रीतकुशलाः ॥ ३८ ॥

तत्रेत्येव। यथा–स्रुघ्ने कृतः,लब्धः,क्रीतः,कुशलो वा–स्रौघ्नः।माथुरः॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से कृत, लब्ध, क्रीत और कुशल इन चारो अर्थों में यथा विहित प्रत्ययहो॥ ३८॥

प्रायभवः ॥ ३९ ॥

तत्रेत्येव। यथा–स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति–स्रौघ्नः।काश्मीरः॥

सप्तमी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिक से प्राय भव अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो॥ ३९॥

उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ॥४०॥

उपजान्वादिभ्यः शब्देभ्यः सप्तमी समर्थेभ्यः प्रायभव इत्यस्मिन् विषये ठक् स्यात्। यथा–औपजानुकः।औपकर्णिकः। औपनीविकः॥

सप्तमी समर्थ उपजानु, उपकर्ण और उपनीवि शब्दों से प्रायभव अर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ ४०॥

सम्भूते ॥ ४१ ॥

यथा–स्रुघ्ने सम्भवति–स्रौघ्नः॥

सप्तमी समर्थ ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से सम्भूत अर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो॥ ४१॥

(श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण वाच्यः)॥ श्राविष्ठीयः। आषाढीयः॥

कोशाड्ढञ् ॥ ४२ ॥

यथा–कौशेयं वस्त्रम् ॥

सप्तमी समर्थ कोश (रेशम) शब्द से सम्भूत अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ४२ ॥

कालात् साधुपुष्प्यत् पच्यमानेषु ॥४३॥

यथा–हेमन्ते साधुः-हैमन्तः--प्राकारः। वसन्ते पुष्यन्ति-वासन्त्यः-कुन्दलताः। शरदि पच्यन्ते--शारदाः शालयः ॥

सप्तमी समर्थ कालवचीय प्रातिपदिक से साधु, पुष्प्यत् और पच्यमान अर्थों में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ४३ ॥

उप्ते च ॥ ४४ ॥

यथा–ग्रीष्मे उपयन्ते–ग्रैष्मा व्रीहयः ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से उप्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ४४ ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥ ४५ ॥

यथा–आश्वयुज्यामुप्ताः–आश्वयुजकाः–माषाः ॥

सप्तमीसमर्थ आश्वयुजी (अश्विनी) शब्दसे उप्तार्थ (बोना) में वुञ्प्रत्यय हो ४५

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ॥ ४६ ॥

पक्षेऋत्वण। यथा–ग्रैष्मकम्, ग्रैष्मम्। वासन्तकम्, वासन्तम् ॥

सप्तमी समर्थ ग्रीष्म और वसन्त शब्दों से उप्तार्थ मे विकल्प से वुञ्प्रत्ययहो ४६

देयमृणे ॥ ४७ ॥

कालादित्येव । यथा—मासेदेयमृणं मासिकम् । सांवत्सरिकम् ॥

सप्तमीसमर्थ कालवाचीय प्रातिपदिकसे देय ऋण इसअर्थ में यथा विहित प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन् ॥ ४८ ॥

यस्मिन् कालेमयूराःकलापिनो भवन्ति स उपचारात् कलापी । तत्रेदेयमृणं कलापकम् । अश्वत्थस्यफलम्—अश्वत्थः । तद्युक्तः कालः—अश्वत्थः । यस्मिन्कालेऽश्वत्थाः फलन्ति तत्रेदेयम्—अश्वत्थकम् । यस्मिन् यवबुसमुत्पद्यते तत्रेदेयं यवबुसकम् ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय कलापि, अश्वत्थ और यवबुस शब्दसे देय ऋण इसअर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

ग्रीष्माऽवरसमाद् वुञ् ॥ ४९ ॥

यथा—ग्रीष्मेदेय मृणं—ग्रैष्मकम् । आवरसमकम् ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय ग्रीष्म और अवरसम शब्द से देय ऋण इस अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

संवत्सराग्रहायणीभ्यांठञ्च ॥ ५० ॥

चाद्वुञ् । यथा—संवत्सरेदेयमृणम्—सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम् । आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम् ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय संवत्सर और आग्रहायणी शब्दों से देय ऋण इस अर्थ में ठञ् और वुञ् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

व्याहरतिमृगः ॥ ५१ ॥

कालवाचिनः सप्तम्यन्ताद् व्याहरति मृग इत्येतस्मिन् विषये

यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा-निशायां व्याहरति-नैशः-मृगः, नैशिकः । प्रादोषः, प्रादोषिकः ॥

सप्तमी समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से व्याहरति मृग इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ५१ ॥

तदस्यसोढम् ॥ ५२ ॥

कालादित्येव । यथा--निशासहचरितमध्ययनं निशा । तत्सोढमस्यच्छात्रस्य--नैशिकः नैशः ॥

सोढ समानाधि करण प्रथमा समर्थ कालवाचीय प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थमें यथा वि हित प्रत्यय हो। ॥ ५२ ॥

तत्रभवः ॥ ५३ ॥

यथा -स्रुघ्नेभवः--स्रौघ्नः । माथुरः ॥

सप्तमी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिकसे भव अर्थ मेंयथाविहितप्रत्ययहो ५३

दिगादिभ्यो यत् ॥ ५४ ॥

यथा-दिशिभवम्-दिश्यम् । वर्ग्यम् ॥

सप्तमीसमर्थ दिगादि प्रातिपदिकों से भव अर्म में यत् प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

शरीरावयवाच्च ॥ ५५ ॥

यथा-दन्तेषु भवम्-दन्त्यम् । कर्ण्यम् । ओष्ठ्यम् ॥

सप्तमीसमर्थ शरीर अवयव वाचीय प्रातिपदिकों से भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ५५॥

दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ५६

यथा—दृतौभवम्—दार्त्तेयम्। कौक्षेयम्। कालशेयम्। वास्तेयम्। आस्तेयम्। आहेयमजरं विषम्॥

सप्तमीसमर्थ दृति, कुक्षि, कलशि, बस्ति, अस्ति, और अहि प्रातिपदिक से भव अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो॥ ५६॥

ग्रीवाभ्योऽण् च॥ ५७॥

चात् ढञ्। यथा—ग्रीवासुभवम्—ग्रैवेयम्। ग्रैवम्॥

सप्तमीसमर्थ ग्रीवा शब्द से भव अर्थ में अण् तथा ढञ् प्रत्यय हो॥ ५७॥

गम्भीराञ्ञ्यः॥ ५८

यथा—गम्भीरे भवम्—गाम्भीर्यम् *॥

सप्तमीसमर्थ गम्भीर शब्द से भव अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो॥ ५८॥

अव्ययीभावाच्च॥ ५९॥

यथा—परिमुखं भवम्—पारिमुख्यम्॥

सप्तमीसमर्थ अव्ययीभाव संज्ञक प्रातिपदिकों से भव अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो॥

अन्तःपूर्वपदात् ठञ्॥ ६०॥

अव्ययीभावादित्येव। यथा-वेश्मनि--अन्तः--अन्तर्वेश्मम्। तत्र भवम्--आन्तर्वेश्मिकम्। आन्तर्गेहिकम् ¶॥

सप्तमी समर्थ अव्ययी भाव संज्ञक अन्तःपूर्वपद प्रातिपदिक से भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो॥ ६०॥

---

* (बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्चेति वाच्यम्)। बाह्यम्। दैव्यम्। पाञ्चजन्यम्॥

¶ (समान शब्दाट्ठञ् वाच्यः)॥ समाने भवम्—सामानिकम्॥ (तदादेश्च)॥ सामानग्रामिकम्॥ (अध्यात्मादिभ्यश्च)॥ अध्यात्मं भवम्—आध्यात्मिकम्। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्॥ ७। ३। २० इत्युभयपदवृद्धिः॥

ग्रामात् पर्यनुपूर्वात् ॥ ६१ ॥

अव्ययीभावाट्ठञ् स्यात् । यथा–पारिग्रामिकः । आनुग्रामिकः॥

सप्तमी समर्थ अव्ययी भाव संज्ञक परि अनु पूर्वक ग्राम शब्दान्त प्रातिपदिक से भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ॥ ६१ ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ६२ ॥

यथा–जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥

सप्तमी समर्थ जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्दसे भव अर्थ में छ प्रत्ययहो ६२

वर्गान्ताच्च ॥ ६३ ॥

यथा -कवर्गीयम् । चवर्गीयम् । टवर्गीयम् । तवर्गीयम् ॥

सप्तमी समर्थ वर्गान्त प्रातिपदिक से छ प्रत्ययहो ॥ ६३ ॥

अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ६४

पक्षे छः । यथा–मद्वर्ग्यः । मद्वर्गीणः । मद्वर्गीयः ॥

शब्दसे भिन्न प्रत्ययार्थ हो तो सप्तमी समर्थ वर्गान्त प्राति पदिक से भव अर्थ में विकल्प से यत् और ख प्रत्ययहो ॥ ६४ ॥

कर्णललाटात् कनलङ्कारे ॥ ६५ ॥

यथा–कर्णिका । ललाटिका ॥

अलङ्कार (भूषण) वाच्य होतो सप्तमी समर्थ कर्ण और ललाट शब्दसे भव अर्थ में कन् प्रत्ययहो ॥ ६५ ॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥ ६६ ॥

यथा—सुपां व्याख्यानः-सौपो ग्रन्थः। तैङः। कार्त्तः। सुप्सु भवम्--सौपम्। तैङ्गम्। कार्त्तम्॥

षष्ठी तथा सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से यथाभिधेय व्याख्यान और भव अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो॥ ६६॥

बह्वचो ऽन्तोदात्ताट्ठञ्॥ ६७॥

यथा—षत्वणत्वयोर्विधायकं शास्त्रम्-षत्वणत्वम्। तस्य व्याख्यानः, तत्र भवो वा षात्वणत्विकम्॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ बह्वच अंतोदात्त व्याख्यातव्य नाम प्रातिपदिक से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो॥ ६७॥

क्रतुयज्ञेभ्यश्च॥ ६८॥

क्रतुभ्यो यज्ञेभ्यश्च व्याख्यातव्यनामभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोष्ठञ् स्यात्। यथा--क्रतुभ्यः। अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भवः--आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। यज्ञेभ्यः। पाकयज्ञिकः। नावयज्ञिकः॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ क्रतुवाचीय और यज्ञ वाचीय व्याख्यातव्य नाम प्रातिपदिकों से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो॥ ६८॥

अध्यायेषु एव ऋषेः॥ ६९॥

ऋषिशब्देभ्यो लक्षणया व्याख्येयग्रन्थवृत्तिभ्यो भवे व्याख्याने चाध्याये ठञ् स्यात्। यथा—वसिष्ठस्य व्याख्यानस्तत्रभवो वा—वासिष्ठिकोऽध्यायः॥

अध्याय वाच्य हो तो षष्ठी और सप्तमी समर्थ ऋषिवाचीय शब्दों से यथासङ्ख्य व्याख्यान और भव अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो॥ ६९॥

पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ॥ ७० ॥

यथा-पुरोडाशसहचरितो मन्त्रः-पुरोडाशः । स एव पौरोडाशः । ततः ष्ठन् पौरोडाशिकः । पौरोडाशिकी ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ पौरोडाश और पुरोडाश शब्द से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ ७० ॥

छन्दसो यदणौ ॥ ७१ ॥

यथा-छन्दस्यः । छान्दसः ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ छन्दस् शब्द से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में यत् और अण् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरण-नामाख्याताट्ठक् ॥ ७२ ॥

यथा-ऐष्टिकः । पाशुकः । चातुर्होतृकः । ब्राह्मणिकः । आर्चिकः । प्राथमिकः । आध्वरिकः । पौरश्चरणिकः । नामिकः । आख्यातिकः । नामाख्यातिकः ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ द्व्यच् ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋच् प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम, आख्यात इन शब्दों से यथाक्रम व्याख्यान और भव अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

अणृगयनादिभ्यः ॥ ७३ ॥

यथा--ऋचामयनम्--ऋगयनम् । नक्षुभ्नादीरत्यनेनणत्वाभावः । तस्य व्याख्यानस्तत्र भवोवा--आर्गयणः । रत्वनिमित्तंतु णत्वभवत्वेव । आर्गयनइत्यन्ये । औपनिषदः । वैयाकरणः ॥

षष्ठी और सप्तमी समर्थ ऋगयनादि प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

ततआगतः ॥ ७४ ॥

तत इति पञ्चमीसमर्थादागत इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यात्। यथा--स्रुघ्नादागतः- स्रौघ्नः। माथुरः ॥

पञ्चमी समर्थ प्रातिपदिक से आगत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

ठगायस्थानेभ्यः ॥ ७५ ॥

यथा शुल्कशालाया आगतः--शौल्कशालिकः। आकरिकम्। नागरिकम्।

पञ्चमीसमर्थ आयस्थानवाचीय प्रातिपदिकों से आगतअर्थ में ठक् प्रत्यय हो ।७५।

शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ ७६ ॥

आयस्थानठकोऽपवादः। यथा- शुण्डिकादागतः--शौण्डिकः। भौमः॥

पञ्चमी समर्थ शुण्डिकादि प्रातिपदिकोंसे आगतअर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ७६ ॥

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ॥ ७७ ॥

विद्यायोनिकृतः सम्बन्धो येषां ते विद्यायोनिसम्बन्धाः। तद्वाचिभ्यः शब्देभ्यो वुञ् स्यात् तत आगत इत्येतस्मिन् विषये। यथा—उपाध्यायादागतम्—औपाध्यायकम्। शैष्यकम्। मातामहकः। पैतामहकः॥

पञ्चमीसमर्थ विद्या सम्बन्धीय और योनि सम्बन्धीय प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो॥ ७७ ॥

ऋतष्ठञ् ॥ ७८ ॥

यथा-होतुरागतम्-हौतृकम् । पौतृकम् । योनिसम्बन्धवाचिभ्यः । भ्रातृकम् । मातृकम् ॥

पञ्चमीसमर्थ विद्यायोनि सम्बन्ध वाचीय ऋकारान्त प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

पितुर्यच्च ॥ ७९ ॥

चाट्ठञ् । रीङृतः । यस्येतिलोपः । यथा-पितुरागतम्-पित्र्यम्, पैतृकम् ॥

पञ्चमी समर्थ पितृशब्द से आगत अर्थ में यत् तथा ठञ् प्रत्यय हो ॥ ७९ ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥ ८० ॥

अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रमपत्यमात्रं गृह्यते । अङ्कग्रहणेन तस्येदमर्थ सामान्यं लक्ष्यते । यथा-विदेभ्यआगतम्-वैदम् । गार्गम् । दाक्षम् । औपगवकम् ॥

पञ्चमीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकसे आगतअर्थमें अङ्कवत् प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यांरूप्यः ॥ ८१ ॥

हेतुभ्यो मनुष्येभ्यश्च वा रूप्यः स्यात्तत आगतइत्येतस्मिन् विषये । यथा-हेतुभ्यः । समादागतम्-समरूप्यम् । समीयम् । विषमरूप्यम् विषमीयम् । गहादित्वाच्छः । मनुष्येभ्यः । देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम् ॥

पञ्चमी समर्थ हेतु और मनुष्य वाचीय प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में विकल्पसे रूप्य प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

मयट् च ॥ ८२ ॥

यथा—सममयम् विषममयम्। देवदत्तमयम् । यज्ञदत्तमयम् ॥

पञ्चमी समर्थ हेतु और मनुष्य वाचीय प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में मयट् प्रत्यय भी हो ॥ ८२ ॥

प्रभवति ॥ ८३ ॥

तत इत्येव । यथा—हिमवतः प्रभवति—हैमवतीगङ्गा ॥

पञ्चमी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से प्रभवति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

विदूराञ्ञ्यः ॥ ८४ ॥

यथा—विदूरात्प्रभवति—वैदूर्योमणिः ॥

पञ्चमी समर्थ विदूरशब्द से प्रभवति अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ८४ ॥

तद् गच्छति पथिदूतयोः ॥ ८५ ॥

यथा—स्रुघ्नंगच्छति—स्रौघ्नः—पन्थाः, दूतोवा ॥

पन्था और दूतवाच्य होतो द्वितीया समर्थ शब्द से गच्छति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥ ८६ ॥

तादित्येव । यथा—स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति—स्रौघ्नंकान्यकुब्जद्वारम् ॥

द्वारवाच्य होतो द्वितीया समर्थ शब्द से अभिनिष्क्रामति अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

अधिकृत्यकृते ग्रन्थे ॥ ८७ ॥

तदित्येव। यथा-कारकमधिकृत्यकृतोग्रन्थः कारकीयः ॥

ग्रन्थवाच्य होतो द्वितीय समर्थ प्रातिपदिक से अधिकृत्य कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजनना-दिभ्यश्छः ॥ ८८ ॥

यथा-शिशूनांक्रन्दनम्-शिशुक्रन्दः। तमधिकृत्य कृतोग्रन्थः-शिशुक्रन्दीयः। यमस्यसभा-यमसभम्--यमसभीयः। किरातार्जुनीयम्। इन्द्रजननीयम् ॥

ग्रन्थवाच्य होतो द्वितीया समर्थ शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्व और इन्द्रजननादि प्रातिपदिकों से अधिकृत्यकृत अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

सोऽस्यनिवासः ॥ ८९ ॥

यथा -वाराणसी निवासोऽस्य--वाराणसेयः। ग्राम्यः। ग्रामीणयः ॥

निवास समानाधिकरण प्रथमा समर्थसे षष्ठ्यर्थमें यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ८९ ॥

अभिजनश्च ॥ ९० ॥

यथा--इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य--ऐन्द्रप्रस्थः। माथुरः ॥

अभिजन (जन्मभूमि बापदादे के रहने का स्थान) समानाधिकरण प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ९० ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ९१ ॥

पर्वतवाचिनः प्रथमान्तादभिजनशब्दादस्येत्यर्थे छः स्यात् । यथा-हृद्गोलः पर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविनां ते हृद्गोलीयः ॥

आयुध जीवि (शस्त्रास्त्र विद्यासे जीविका करने वाले) वाच्य हों तो प्रथमा समर्थ पर्वतवाचीय प्रातिपदिक से अभि जन अर्थ मे छ प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ॥ ९२ ॥

शण्डिकोऽभिजनोऽस्य—सः शाण्डिक्यः ॥

अभिजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शाण्डिकादि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में ञ्य प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ ९३ ॥

सिन्ध्वादिभ्योऽण् । तक्षशिलादिभ्योऽञ् स्यादुक्तेऽर्थे । यथा-सैन्धवः । तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य-ताक्षशिलः ॥

अभिजन समानाधिकरण प्रथमा समर्थ सिन्ध्वादि और तक्ष शिलादि प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय हों ॥ ९३ ॥

तूदीशलातुरवर्म्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः ॥ ९४ ॥

तूद्यादिभ्यश्चतुर्भ्यश्शब्देभ्यो यथाक्रमं चत्वारो ढगादयः स्युः । यथा-तूदी अभिजनोऽस्य-तौदेयः । शालातुरीयः । वार्मतेयः । कौचवार्यः ॥

अभिजन समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तूदी, शलातुर, वर्मती, कूचवार इन चार शब्दों से षष्ठ्यर्थ में यथाक्रम ढक्, छण, ढञ, यक् ये चार प्रत्यय हों ॥ ९४ ॥

भक्तिः ॥ ९५ ॥

सोऽस्येत्यनुवर्त्तते । भज्यते सेव्यते इति भक्तिः । स्रुघ्नो भक्तिरस्य-स्रौघ्नः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो

अचित्ताददेशकालाट्ठक् ॥ ९६ ॥

देशकाल व्यतिरिक्तादचित्तवाचिनः प्रातिपदिकाट्ठक् स्यात् सोऽस्य भक्तिरित्येतस्मिन्विषये । यथा-अपूपाः भक्तिरस्य-आपूपिकः । शाष्कुलिकः । पायसिकः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ देशकाल व्यतिरिक्त अचित्तवाचीय प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ९६ ॥

महाराजाट्ठञ् ॥ ९७ ॥

यथा-महाराजो भक्तिरस्य--माहाराजिकः ॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ महाराज प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय हो

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ॥ ९८ ॥

यथा-वासुदेवो भक्तिरस्य--वासुदेवकः । अर्जुनकः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ वसुदेव और अर्जुन शब्द से षष्ठ्यर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् ।९९।

यथा-ग्लुचुकायनि भक्तिरस्य--ग्लौचुकायनकः । औपगवकः । क्षत्रियाख्येभ्यः । नाकुलकः । साहदेवकः । बहुलग्रहणान्नेह--पाणिनो भक्तिरस्य--पाणिनीयः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ गोत्राख्य और क्षत्रियाख्य प्रातिपदिकों से बहुलता से षष्ठ्यर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

जनपदिनां जनपदवत् सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥ १०० ॥

जनपद स्वामिवाचिनां बहुवचने जनपदवाचिनां समानश्रुतीनां जनपदवत् सर्वं स्यात्, प्रकृतिः प्रत्ययश्च । (जनपद तदवध्योश्च ४ । २ । १२४) इति प्रकरणे ये प्रत्यया उक्ता स्तेऽत्रादिश्यन्ते । यथा–अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य-आङ्गकः । अङ्गाः क्षत्रिया भक्तिरस्य -आङ्गकः ॥

भक्ति समानाधिकरण प्रथमासमर्थ बहुवचन में जनपद के समान शब्दवाले जनपदियों को जनपद के तुल्य कार्य्य हों ॥ १०० ॥

तेन प्रोक्तम् ॥ १०१ ॥

यथा–पाणिनिना प्रोक्तम्--पाणिनीयम् ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से प्रोक्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् १०२

यथा–तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते--तैत्तिरीयाः । वारतन्तवीयाः । खाण्डिकीयाः । औखीयाः ॥

तृतीयासमर्थ तित्तिर, वरतन्तु, खण्डिका और खा शब्द से प्रोक्त में छण् प्रत्यत हो

काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः १०३

काश्यपेन प्रोक्तमधीयते–काश्यपिनः । शौनकादिभ्यश्छन्दसि

त्यत्रानुवृत्तेश्छन्दोधिकारविहितानां च तत्र तद् विषयतेश्यते ॥

तृतीयासमर्थ ऋषिप्राचीय कश्यप और कौशिक प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय हो

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च १०४

कलाप्यन्ते वासिनां वैशम्पायनान्ते वासिनां च ये वाचकाश्शब्दा स्तेभ्यो णिनिः स्यात् । यथा-हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते--हारिद्रविणः । वैशम्पायनान्ते वासिभ्यः । आलम्बिनः ॥

तृतीया समर्थ कलाप्यन्ते वासी तथा वैशम्पायनान्ते वसियों के वाचक शब्दों से प्रोक्त अर्थ मे णिनि प्रत्यय हो ॥ १०४ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।१०५॥

तृतीयान्तात् प्रोक्तार्थे णिनिः स्यात् । यत्प्रोक्तं पुराणप्रोक्ताश्चेद् ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति । यथा-पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना भल्लुना प्रोक्ताः-भाल्लविनः । शाट्यायनिनः । ऐतरेयिणः । कल्पेषु । पिङ्गेन प्रोक्तः-पैङ्गी कल्पः ॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और कल्पवाच्य हों तो तृतीया समर्थ प्रातिपतिक से णिनि प्रत्यय हो ॥ १०५ ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ १०६ ॥

छन्दस्यभिधेये एभ्यो णिनिः स्यात् यथा-शौनकेन प्रोक्त मधीयते-शौनकिनः ॥

तृतीया समर्थ शौनकादि प्राति पादिकों से छन्दो विषय में णिनि प्रत्यय हो १०६

कठचरकाल्लुक् ॥ १०७ ॥

आभ्यां प्रोक्तप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। यथा—कठेन प्रोक्तमधीयेत कठाः। चरकाः॥

तृतीय समर्थ कठ और चरक शब्दसे प्रोक्त अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो॥

कलापिनोऽण्[1] ॥ १०८ ॥

यथा—कलापिनाप्रोक्तमधीयते—कालापाः॥

तृतीया समर्थ कलापिन् शब्दसे प्रोक्त अर्थ में अण् प्रत्ययहो॥ १०८॥

छगलिनोढिनुक् ॥ १०९ ॥

छगलिना प्रोक्तमधीयते—छागलेयिनः॥

तृतीया समर्थ छगलिन् शब्द से प्रोक्त अर्थ में ढिनुक् प्रत्यय हो १०९॥

पाराशर्यशिलालिभ्याम्भिक्षुनटसूत्रयोः

यथा--पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते -पाराशरीणो--भिक्षवः। शैलालिनो--नटाः॥

भिक्षुसूत्र और नटसूत्र वाच्यहोंतो तृतीया समर्थ पाराशर्य और शिलालिन् शब्द से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय हो॥ ११०॥

कर्म्मन्दकृशाश्वादिनिः ॥ १११ ॥

भिक्षुनटसूत्रयोरित्येव। यथा--कर्म्मन्देन प्रोक्तमधीयते--कर्मन्दिनः—भिक्षवः। कृशाश्विनः- नटाः॥

भिक्षुसूत्र और नटसूत्र वाच्यहोंतो तृतीया समर्थ कर्मन्द और कृशाश्व शब्द से प्रोक्त अर्थ में इनि प्रत्यय हो॥ १११॥

१ इन ण्यन पत्ये इति प्रकृति भावे प्राप्ते, नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पि कलापि कौथुमि तैतिल जाजलि लाङ्गलि शिलालि शिखण्डि सूकर सद्म सुपर्वणामुपसङ्ख्यानम्। इति टिलोपः॥

तेनैकदिक् ॥ ११२ ॥

यथा--वाराणस्या एकदिक्–वाराणसेयोग्रामः। सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक्-सौदामनी विद्युत् ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से एकदिक् अर्थमें यथा प्राप्त प्रत्यय हो ॥

तसिश्च ॥ ११३ ॥

स्वरादिपाठा दव्ययत्वम्। यथा–इन्द्र प्रस्थेन एकदिक्-इन्द्रप्रस्थतः। हिमवतः। मुरादाबादतः ॥

तृतीया समर्थ प्राति पदिक से एकदिक् अर्थ में तसि प्रत्यय हो ॥ ११३ ॥

उरसो यच्च ॥ ११४ ॥

चात्तसिः। अणोऽपवादः। यथा–उरसा एकदिक्–उरस्यः। उरस्तः॥

तृतीया समर्थ उरस् शब्द से एकदिक् अर्थ म यत् और तसि प्रत्यय हो। ११४

उपज्ञाते ॥ ११५ ॥

तेनेत्येव। पाणिनोपज्ञातम्-पाणिनीयं व्याकरणम्। पातञ्जलं योगशास्त्रम् ॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से उपज्ञात (उपदेशक्रियेविना अपने आपही समझ लेना) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

कृते ग्रन्थे ॥ ११६ ॥

यथा--वररुचिना कृतावाररुचा श्लोकाः। मानवोग्रन्थः ॥

यदि ग्रन्थवाच्य होतो तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ ११६ ॥

सञ्ज्ञायाम् ॥ ११७ ॥

तेनेत्यत्र । अग्रन्थार्थमिदम् । यथा--मक्षिकाभिःकृतम्--माक्षिकंमधु ॥

यदि सञ्ज्ञा गम्यमान होतो तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से कृत अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो । ११७ ॥

कुलालादिभ्योवुञ् ॥ ११८ ॥

तेनकृतेसञ्ज्ञायाम् । यथा--कुलालेनकृतम् -कौलालकम् ॥

यदि सञ्ज्ञा गम्यमान होतो तृतीया समर्थ कुलालादि प्रातिपदिकों से कृतार्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ॥ ११९ ॥

तेनकृते सञ्ज्ञायाम् । यथा--क्षुद्राभिःकृतम् -क्षौद्रम् । भ्रामरम् । वाटरम् । पादपम् ॥

संज्ञागम्यमान होतो तृतीया समर्थ क्षुद्रा (मक्खी) भ्रमर (भौंरा) वटर (कुक्कुट) और पादप (वृक्ष) प्रातिपदिक से कृतअर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

तस्येदम् ॥ १२० ॥

यथा--राज्ञः इदम् -राजकीयम् । उपगोरिदम्-औपगवम् * ॥

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

रथाद्यत् ॥ १२१ ॥

* (वहेस्तु रणिट् च) ॥ संवोढुः स्वं सांवहित्रम् ॥ (अग्नीध्रः शरणे रण् भं च) ॥ अग्निमिन्धे अग्नीत्, तस्य स्थान मामीध्रम् । तात् स्थ्यात् सोऽप्याग्नीध्रः । (समिधा माधाने षेण्यण्) सामिधेन्यो मन्त्रः । सामिधेनी ऋक् ॥

यथा-रथस्येदम्--रथ्यं चक्रम् ॥

षष्ठीसमर्थ रथ शब्द से इदम् अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

पत्रपूर्वादञ् ॥ १२२ ॥

पत्रंवाहनम् । यथा--अश्वरथस्येदम्-आश्वरथम् ॥

पत्र (सवारी) पूर्वक रथ शब्द से इदम् अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

पत्राध्वर्युपरिषदश्च ॥ १२३ ॥

अञ् (पत्राद् वाह्ये) ॥ अश्वस्येदं वहनीयम्-आश्वम् । आ-ध्वर्यवम् । पारिषदम् ॥

षष्ठी समर्थ पत्र वाचीय प्रातिपदिक अध्वर्यु (ऋत्विज्) और परिषद् (सभा शब्द से इदम् अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १२३ ॥

हलसीराट्ठक् ॥ १२४ ॥

यथा-हलस्येदम्--हालिकम् । सैरिकम् ॥

षष्ठीसमर्थ हल और सीर (हल) शब्द से इदम् अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥ १२५ ॥

यथा-अहिनकुलिका । काकोलूकिका । गर्गकुशिकिका । अत्रिभरद्वाजिका ॥

वैर और मैथुनिक अभिधेय हो तो षष्ठी समर्थ द्वन्द्व प्रातिपदिक मे इदम् अर्थ में वुन् प्रत्यय हो ॥ १२५ ॥

गोत्रचरणाद् वुञ् ॥ १२६ ॥

यथा—औपगवकम् (चरणाद्धर्म्माम्नाययो रितिवाच्यम्) ॥ औपगवकम् । काठकम् ॥

षष्ठीसमर्थ गोत्रवाचीय और चरणवाचीय प्रातिपदिकों से इदम् अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥ १२७ ॥

(घोषग्रहणमपि कर्त्तव्यम्) ॥ अञ्--बैदः-सङ्घः, अङ्कः, घोषो लक्षणं वा । यञ्--गार्गः--सङ्घः, अङ्कः, घोषो लक्षणं वा । इञ्—दाक्षः-सङ्घः, अङ्कः, घोषो लक्षणं वा ॥

सङ्घ, अङ्क, (परम्परासम्बन्ध) लक्षण और घोष वाच्य हों तो षष्ठीसमर्थ अञन्त, यञन्त और इञन्त प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ १२७ ॥

शाकलाद्वा ॥ १२८ ॥

अण् वा, इदमर्थे पक्षे चरणाद् वुञ् । यथा—शाकलस्य--सङ्घः, अङ्कः, घोषः, लक्षणंवेति--शाकलः, शाकलकः ॥

षष्ठीसमर्थ शकल शब्द से इदम् अर्थ में सङ्घादि वाच्य हों तो विकल्प से अण् प्रत्यय हो ॥ १२८ ॥

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः

यथा--छन्दोगानाम्--धर्म्मः, आम्नायो वा--छान्दोग्यम् । औक्थिक्यम् । याज्ञिक्यम् । बाह्वृच्यम् । नाट्यम् ॥

षष्ठीसमर्थ छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, और नट शब्द से इदम् अर्थ में ञ्य प्रत्यय हो

न दण्डमाणवान्तेवासिषु ॥ १३० ॥

दण्ड प्रधाना माणवा दण्डमाणवाः, अन्ते वासिनः तेषु शिष्येषु

च, वुञ् न स्यात् । यथा-गौ कक्षाः दण्डमाणवा अन्तेवासिनो वा दाक्षः । माहकः ॥

दण्डमाणव तथा अन्तेवासी वाच्य होतो षष्ठी समर्थ गोत्र वाचीय प्रातिपदिक से इदम् अर्थ में वुञ् प्रत्यय न हो ॥ १३० ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ १३१ ॥

तस्येदम्-इत्यर्थे । यथा- रैवतिकीयः । वैजवापीयः + ॥

षष्ठी समर्थ रैवतिक आदि प्रातिपदिकों से इदम् अर्थ में छ प्रत्यय हो ॥१३१॥

तस्य विकारः ॥१३२॥

(अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः)॥ यथा -अश्मनो विकारः आश्मः । भास्मनः । मार्त्तिकः ॥

षष्ठी समर्थ इन्नन्त आनन्त और प्रातिपदिक से विकार अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो ॥ १३२ ॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ॥१३३॥

चाद्धिकारे । मयूरस्य-अवयवो विकारोवा-मायूरः । कापोतः । मौर्वम्-काण्डम्, भस्म । कारीरम्-काण्डम्, भस्मवा ॥

षष्ठी समर्थ प्राणी, ओषधि और वृक्ष वाचीय प्रातिपदिक स अवयव और विकार अर्थ में यथा विहित प्रत्ययहो ॥ १३३ ॥

विल्वादिभ्यो ऽण् ॥१३४॥

विल्वस्याऽवयवो विकारो वा—वैल्वः ॥

षष्ठी समर्थ विल्वादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण प्रत्ययहो ॥

+ (कौपिंजल हास्तिपदादण्वाच्यः) ॥ कुपिंजलस्याऽपत्यम् । इहैव निपातनादण् । तदन्तात्युनरण्-कौपिंजलः । हस्तिपादस्याऽपत्यम् —हास्तिपादः । तस्यायम् —हास्तिपादः ॥ [आथर्वणिकस्येकलोपश्च] ॥ अण् स्यात् आथर्वणिकस्यायम्-आथर्वणः —धर्मः, आम्नायोवा ॥

कोपधाच्च ॥ १३५ ॥

अण् । यथा—तर्कु—तार्कवम् । माण्डूकम् ॥

षष्ठी समर्थ ककारोपध प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ मे अण प्रत्यय हो ॥ १३५ ॥

त्रपुजतुनोः षुक् ॥ १३६ ॥

आभ्यामण् स्याद् विकारे एतयोःषुगागमश्च । यथा--त्रपुणो विकारः--त्रापुषम् । जातुषम् ॥

षष्ठी समर्थ त्रपु (रांगा) और जतु (लाख) शब्द से विकार अर्थ में अण प्रत्यय और दोनों शब्दों को षुक् का आगम हो ॥ १३६ ॥

ओरञ् ॥ १३७ ॥

विकाराऽवयवयोरर्थयोरुवर्णान्तात् प्रातिपदिकादञ् स्यात् । यथा--दैवदारवम् । भाद्रदारवम् ॥

षष्ठी समर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकसे विकार और अवयव अर्थमें अञ् प्रत्यय हो १३७

अनुदात्तादेश्च ॥ १३८ ॥

अञ् । यथा—दाधित्थम् । कापित्थम् ॥

षष्ठी समर्थ अनुदात्तादि प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १३८ ॥

पलाशादिभ्योवा ॥ १३९ ॥

यथा--पालाशम् । खादिरम् ॥

षष्ठी समर्थ पलाशादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से अञ् प्रत्यय हो ॥ १३९ ॥

शम्याष्ट्लञ् ॥ १४० ॥

यथा -शामीलम्--भस्म । षित्वान्ङीष् । शामीलीस्रुक् ॥
षष्ठी समर्थ शमीशब्द से विकार और अवयव अर्थ में ट्लञ् प्रत्यय हो ॥ १४० ॥

मयड् वा एतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥ १४१ ॥

प्रकृतिमात्रान् मयड्वा स्याद् विकाराऽवयवयोः । यथा-अश्ममयम्, आश्मनम् ॥
षष्ठी समर्थ प्रकृति मात्र से भक्ष्य और आच्छादन अर्थको छोड़कर विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से लोक में मयट् प्रत्ययहो ॥ १४१ ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः १४२

यथा-आम्रमयम् । शरमयम् * ॥
षष्ठी समर्थ वृद्धादि और शरादि प्रातिपदिकों से भक्ष्य और आच्छादन वर्जित विकार और अवयव अर्थ में लोक विषयक प्रयोग होने पर नित्य मयट् प्रत्ययहो

गोश्च पुरीषे ॥ १४३ ॥

यथा--गोःपुरीषम्--गोमयम् ॥
षष्ठी समर्थ गो शब्दसे पुरीष वाच्य होतो इदम् अर्थ में मयट् प्रत्ययहो ॥ १४३

पिष्टाच्च ॥ १४४ ॥

मयट् स्याद् विकारे । यथा--पिष्टमयम् भस्म ॥
षष्ठी समर्थ पिष्ट (सीसा) शब्दसे विकार अर्थ में मयट् प्रत्ययहो ॥ १४४ ॥

* [एकाचो नित्यम्] । त्वङ्मयम्, वाङ्मयम् ॥

सञ्ज्ञायां कन् ॥१४५॥

पिष्टादित्येव । यथा--पिष्टस्य विकार विशेषः–पिष्टकः । पूपोऽपूपी पिष्टकः स्यात् ॥

षष्ठी समर्थ पिष्ट शब्दसे सञ्ज्ञा विषय होतो विकार अर्थ में कन् प्रत्ययहो ॥

व्रीहेः पुरोडाशे ॥१४६॥

मयट् स्यात् । यथा- व्राहिमयः पुरोडाशः । व्रैहमन्यत् ॥

यदि व्रीहि (चावल) का विकार पुरोडाश होतो षष्ठी समर्थ व्रीहि शब्द से मयट् प्रत्यय हो ॥ १४६ ॥

असञ्ज्ञायाँ तिलयवाभ्याम् ॥ १४७॥

यथा–तिलमयम् । यवमयम् । संज्ञायां तु -तैलम् । यावकः ॥

असंज्ञा विषय में षष्ठी समर्थ तिल और यव शब्द से विकार और अवयवअर्थ में मयट् प्रत्यय हो ॥ १४७ ॥

द्व्यचश्छन्दसि ॥ १४८ ॥

यथा शरमयं वर्हिः ॥

षष्ठी समर्थ द्व्यच् प्रातिपदिक से छन्दो विषय में विकार और अवयव अर्थ होनेपर मयट् प्रत्यय हो ॥ १४८ ॥

न उत्वद्वर्ध्रबिल्वावित् ॥ १४९ ॥

उत्वत॰ प्रातिपदिकाद् वर्ध्रविल्वशब्दाभ्यां चच्छन्दसि विषये मयण् न स्यात् । यथा–मौञ्जं शिक्यम् । वर्ध्रं चर्म्म । वैल्वो यूपः ॥

षष्ठी समर्थ द्व्यच् उकारवान् वर्ध्र और विल्व प्रातिपदिक से छन्दोविषय में विकार और अवयव अर्थ होनेपर मयट् प्रत्यय न हो ॥ १४९ ॥

तालादिभ्योऽण् ॥ १५० ॥

(तालाद् धनुषि)॥ तालम्-धनुः ॥ तालमयमन्यत् ॥
षष्ठीसमर्थ तालादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय हो।

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥ १५१ ॥

अण् स्यात्। बहुवचननिर्देशात्तद् वाचिनो विश्वे गृह्यन्ते। यथा-हाटकः तापनीयः सौपर्णो वा निष्कः ॥
षष्ठीसमर्थ जातरू (सुवर्ण) वाचीय प्रातिपदिकों से परिमाण गम्यमान होनेपर विकार अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ १५२ ॥

यथा-मायूरम्। शौकम्। राजतीमुद्रा ॥
षष्ठीसमर्थ प्राणि वाचीय और रजतादि प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ १५२ ॥

ञितश्च तत्प्रत्ययात् ॥ १५३ ॥

ञितोविकारावयव प्रत्ययस्तदन्तादञ् स्याद् विकारावयवार्थे। यथा-दैवदारवस्य विकारोऽवयवो वा-दैवदारवम्। पालाशस्य-पालाशम् ॥
विकार और अवयव अर्थ में विहित ञित् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में ही अञ् प्रत्यय हो ॥ १५३ ॥

क्रीतवत् परिमाणात् ॥ १५४ ॥

(प्राग्वतेष्ठञ् ५। १। १८) इत्यारभ्यक्रीतार्थे ये प्रत्यया विहिता येनोपाधिना परिमाणाद् विहितास्ते तथैव विकारेऽतिदि-

श्यन्ते । यथा—निष्केणक्रीतम्-नैष्किकम् । एवं निष्कस्य विकारो ऽपि-नैष्किः । शतस्यविकारः-शत्यः, शतिकः ॥

षष्ठीसमर्थ परिमाण वाचीय प्रातिपदिक से विकार अर्थ में क्रीत वत् प्रत्यय हो ॥

उष्ट्राद् वुञ् ॥ १५५ ॥

यथा—उष्ट्रस्य विकारोऽवयवो वा-औष्ट्रकः ॥

षष्ठीसमर्थ उष्ट्र शब्द से विकार और अवयव अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो ॥ १५१ ॥

उमोर्णयोर्वा ॥ १५६ ॥

यथा—उमाया विकारोऽवयवो वा-औमम् । औमकम् । ऊर्णाया-विकारोऽवयवो वा-और्णम्, और्णकम् ॥

षष्ठीसमर्थ उमा (हरिद्रा) और ऊर्णा (मेषादिलोम) शब्द से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से वुञ् प्रत्यय हो ॥ १५६ ॥

एण्या ढञ् ॥ १५७ ॥

एण्या विकारोऽवयवो वा--ऐणेयम् ॥

षष्ठीसमर्थ एणी (हरिणी) शब्द से विकार और अवयव अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो

गोपयसोर्यत् ॥ १५८ ॥

यथा—गोर्विकारोऽवयवो वा गव्यम् । पयस्यम् ॥

षष्ठीसमर्थ गो और पयस् शब्द से विकार और अवयव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥

द्रोश्च ॥ १५९ ॥

यथा—द्रुः-वृक्षः तस्य विकारोऽवयवो वा--द्रव्यम् ॥

षष्ठीसमर्थ द्रु शब्द से विकार और अवयव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १५९ ॥

मानेवयः ॥ १६० ॥

द्रुशब्दान्माने विकारविशेषे वयः स्यात् । यथा-द्रुवयम् ॥

षष्ठी समर्थ द्रुशब्दसे मान विकार अर्थ में वय प्रत्यय हो ॥ १६० ॥

फलेलुक् ॥ १६१ ॥

विकारावयव प्रत्ययस्य लुक् स्यात् । यथा-आमलक्याः फलम्-आमलकम् ॥

फलविवक्षित होते षष्ठी समर्थ ङ्यन्त आबन्त और प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो ॥ १६१ ॥

प्लक्षादिभ्योऽण् ॥ १६२ ॥

विधान सामर्थ्यान्नलुक् । यथा-प्लाक्षम् ॥

षष्ठी समर्थ प्लक्षादि प्रातिपदिकों से विकारावयवता से फल विवक्षित होनेपर अण् प्रत्यय हो ॥ १६२ ॥

जम्ब्वा वा ॥ १६३ ॥

जम्बूशब्दात् फले वाण् स्यात् । यथा-जाम्बवम् । पक्षे (ओरञ्) तस्यलुक्-जम्बु ॥

षष्ठी समर्थ जम्बू (जामुन) शब्द से फलवाच्य होते विकल्प से अण् प्रत्यत हो ॥ १६१ ॥

लुप् च ॥ १६४ ॥

जम्ब्वा फलप्रत्ययस्य लुब् वा स्यात् । यथा-लुपियुक्तवत्-जम्ब्वाः फलम्-जम्बूः * ॥

षष्ठीसमर्थ जम्बूशब्दसे फलवाच्य होते उत्पन्न प्रत्यय विकल्पसे लुक् हो ॥ १६४ ॥

* (फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम्] ॥ व्रीहयः । मुद्गाः ॥ [पुष्पमूलेषु बहुलम्] मल्लिकायाः पुष्पंमल्लिका । जात्याः पुष्पम्—जाती । विदार्या मूलम्—विदारी । बहुलग्रहणान्नेह--पाटलानि पुष्पाणि साल्वानिमूलानि ।

हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ १६५ ॥

एभ्यःफल प्रत्ययस्य लुप् स्यात् । हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत् । यथा—हरीतक्याः फलानि—हरीतक्यः ॥

षष्ठीसमर्थ हरीतकीआदि प्रातिपदिकोंसे फलवाच्य होतो उत्पन्न प्रत्यय का लुप् हो ॥ १६५ ॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्च ॥ १६६ ॥

कंसीयपरशव्यशब्दाभ्यांयञञौस्याताम्, छयतोश्च लुक् । यथा—कंसायहितम्--कंसीयम् । तस्यविकारः--कांस्यम् । परशवेहितम्--परशव्यम् । तस्यविकारः--पारशवः ॥

षष्ठी समर्थ कंसीय और परशव्य शब्दसे विकार अर्थ में यथाक्रम यञ् और अञ् प्रत्यय और छ और यत् प्रत्यय का लुक् हो ॥ १६६ ॥

इति चतुर्थाऽध्यायस्य तृतीयःपादः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायस्य चतुर्थः पादारम्भः ॥

प्राक् वहतेष्ठक् ॥ १ ॥

(तद्वहति ४ । ४ । ७६) इत्यतः प्राक्ठगधिक्रियते * ॥

तद् वहति रथयुग प्रासङ्गम् ' इस सूत्र तक ठक् प्रत्ययका अधिकार है ॥ १ ॥

तेन दीव्यतिखनतिजयति जितम् ॥ २ ॥

* (तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्] ॥ माशब्दः कारि इतिय अहस --म शाब्दिकः ॥ [आहौ प्रभूतादिभ्यः] । प्रभूतमाह—,प्राभूतिकः । पार्याप्तिकः ॥ [पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः] सुस्नानं पृच्छतिसौस्नातिकः, सौखशायनिकः ॥ [गच्छतौ परदारादिभ्यः] परदारान् गच्छति पारदारिकः, गौरुतल्पिकः ॥

यथा-अक्षैर्दीव्यति-आक्षिकः। अभ्र्या खनति-आभ्रिकः। अक्षै-र्जयति--आक्षिकः। अक्षैर्जितम्-आक्षिकम्॥

तृतीया समर्थ इगन्त आबन्त और प्रातिपदिक से दीव्यति खनति जयति और जित अर्थ में ठक् प्रत्ययहो॥ २॥

संस्कृतम्॥ ३॥

यथा-दध्ना संस्कृतम्-दाधिकम्। मारीचिकम्॥

तृतीया समर्थ प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में ठक् प्रत्ययहो॥ ३॥

कुलत्थकोपधादण्॥ ४॥

यथा-कुलत्थैः संस्कृतम्-कौलत्थम्। तैत्तिडीकम्॥

तृतीया समर्थ कुलत्थ (खुर्थी) और ककारोपध प्रातिपदिक से संस्कृत अर्थ में अण् प्रत्ययहो॥ ४॥

तरति॥ ५॥

तेनेतितृतीयासमर्थात् तरतीत्येतस्मिन् नर्थेठक् स्यात्। उडुपेन तरति-औडुपिकः॥

तृतीया समर्थ शब्द से तरति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो॥ ५॥

गोपुच्छाट् ठञ्॥ ६॥

तरतीत्येतस्मिन्नर्थे। यथा-गोपुच्छेनतरति-गौपुच्छिकः॥

तृतीया समर्थ गोपुच्छ शब्द से तरति इस अर्थ में ठञ् प्रत्ययहो॥ ६॥

नौद्व्यचष्ठन्॥ ७॥

नौशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात्तरत्यर्थे ठन् स्यात् । यथा—नावा तरति—नाविकः । घटिकः । बाहुभ्यां तरति—बाहुकः ॥

तृतीया समर्थ नौ (नाव) और द्व्यच् प्रातिपदिक से तरति अर्थ में ठन् प्रत्यय हो ॥ ७ ॥

कि॰ चरति ॥ ८ ॥

तृतीयान्ताद् गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोः ठक् स्यात् । हस्तिना चरति—हास्तिकः । शाकटिकः । दध्ना भक्षयति—दाधिकः ॥

तृतीया समर्थ शब्द से चरति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ८ ॥

आकर्षात् ष्ठल् ॥ ९ ॥

यथा—आकर्षेण चरति—आकर्षिकः । षित्वान्ङीष् । आकर्षिकी ॥

तृतीया समर्थ आकर्ष (कसौटी) शब्द से चरति अर्थ में ष्ठल् प्रत्यय हो ॥ ९ ॥

पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥ १० ॥

यथा—पर्पेण चरति—पर्पिकः । पर्पिकी । येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति सः—पर्पः । अश्विकः । रथिकः ॥

तृतीया समर्थ पर्पादि प्रातिपदिकों से चरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ १० ॥

श्वगणाट्ठञ् ॥ ११ ॥

चात्ष्ठन् । यथा—श्वगणेन चरति—श्वागणिकः । श्वागणिकी । श्वगणिकः । श्वगणिकी ॥

तृतीया समर्थ श्वगण शब्द से चरति अर्थ में ठञ् और ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ ११ ॥

कि॰ वेतनादिभ्यो जीवति ॥ १२ ॥

यथा-वेतनेनजीवति--वैतनिकः कर्म्मकरः। उपदेशेनजीवन्ति--औपदेशिकाः॥

तृतीया समर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से जीवति इस अर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ १२॥

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्॥ १३॥

यथा-वस्नेन-मूल्येनजीवति- वस्निकः। क्रयविक्रय ग्रहणं संघातविगृहीतार्थम्। क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः॥

तृतीया समर्थ वस्न (मूल्य) क्रयविक्रय (खरीदना और बेचना) वा क्रय और विक्रय शब्दसे जीवति अर्थ में ठन् प्रत्यय हो॥ १३॥

आयुधाच्छ च॥ १४॥

चाट्ठन्। यथा- आयुधेनजीवति-आयुधीयः। आयुधिकः॥

तृतीया समर्थ आयुध (हथियार) शब्द से जीवति अर्थ में छ और ठन् प्रत्यय हो॥ १४॥

हरति उत्सङ्गादिभ्यः॥ १५॥

यथा-उत्सङ्गेन हरति-औत्साङ्गिकः॥

तृतीया समर्थ उत्सङ्ग (गोद) आदि प्रातिपदिकों से हरति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्॥ १६॥

यथा-भस्त्रया हरति--भस्त्रिकः। भस्त्रिकी॥

तृतीयासमर्थ भस्त्रा (फूंकनी) आदि प्रातिपदिकों से हरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय हो॥

विभाषा विवधात्॥ १७॥

यथा--विवधेन हरति- विवधिकः । पक्षे ठक्-वैवधिकः । एकदेश विकृतस्याऽनन्यत्वाद्-वीवधादपि ष्ठन् वीवधिकः । वीवधिकी ॥

तृतीयासमर्थ विवध (डोली, पीनस) शब्द से हरति अर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ १७ ॥

अण् कुटिलिकायाः ॥ १८ ॥

यथा--कुटिलिकाया हरति-मृगान्, अङ्गारान् वा-कौटिलिकः--व्याधः, कर्म्मारश्च ॥

तृतीयासमर्थ कुटिलिका (वक्र) शब्द से हरति अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ १८ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ १९ ॥

यथा—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्--आक्षद्यूतिकंवैरम् ॥

तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से निर्वृत्त (विराम) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो

त्रेर्मम् नित्यम् ॥ २० ॥

त्रिप्रत्ययान्तप्रकृतिकात्तृतीयान्तात्-निर्वृत्तेऽर्थे नित्यं मप् स्यात्। यथा—कृत्यानिर्वृत्तम्-कृत्रिमम् । पक्त्रिमम् ॥ (भावप्रत्ययान्तादिमब्वाच्यः) ॥ पाकेन निर्वृत्तम्-पाकिमम् । त्यागिमम् ॥

तृतीया समर्थ क्रयन्त प्रातिपदिकसे निर्वृत्त अर्थ में नित्य मप् प्रत्यय हो ॥ २० ॥

अपमित्ययाचिताभ्यांकक्कनौ ॥ २१ ॥

अपमित्य याचितशब्दाभ्यां यथाक्रमं कक् कन् प्रत्ययौ स्यातां निर्वृत्तेऽर्थे । अपमित्येतिल्यबन्तम् । यथा--अपमित्य निर्वृत्तम्--आपमित्यकम् । याचितेन निर्वृत्तम -याचितकम् ॥

तृतीया समर्थ अपमित्य (ऋण) और याचित शब्द से निर्वृत्त अर्थ में यथाक्रम कक् और कन् प्रत्यय हों ॥ २१ ॥

संसृष्टे ॥ २२ ॥

यथा--दध्नासंसृष्टम्--दाधिकम् ॥

तृतीया समर्थ शब्द से संसृष्ट (मिश्रत) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २२ ॥

चूर्णादिनिः ॥ २३ ॥

यथा--चूर्णैः संसृष्टाः--चूर्णिनः अपूपाः ॥

तृतीया समर्थ चूर्ण (चून) शब्दसे संसृष्ट अर्थ में इनि प्रत्यय हो ॥ २३ ॥

लवणाल्लुक् ॥ २४ ॥

यथा-लवणेन संसृष्टः-लवणःसूपः । लवणंशाकम् ॥

तृतीया समर्थ लवणशब्दसे संसृष्ट अर्थ में उत्पन्न ठक् प्रत्यय का लुक् हो ॥ २४ ॥

मुद्गादण् ॥ २५ ॥

यथा-मुद्गेनसंसृष्टः-मौद्गः-ओदनः । मौद्गीयवागूः ॥

तृतीया समर्थ मुद्ग (मूग) शब्दसे संसृष्ट अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ २५ ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ २६ ॥

ठक् स्यात् । यथा-दध्ना उपसिक्तम्-दाधिकम् ॥

तृतीया समर्थ व्यञ्जन (भोजनोपकरण) वाचीय प्रातिपदिकों से उपसिक्त (सेचन) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ २६ ॥

ओजःसहोऽम्भसांवर्त्तते ॥ २७ ॥

ठक् स्यात्। यथा—ओजसावर्त्तते—औजसिकः शूरः। साहसिकश्चौरः। आम्भसिको मत्स्यः॥

तृतीया समर्थ ओजस् (बल) सहस् (ज़ोर) और अम्भस् (जल) शब्द से वर्त्तत अर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ २७॥

तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्॥ २८॥

द्वितीयान्तादस्माद् वर्त्तते इत्यस्मिन्नर्थे ठक् स्यात्। क्रियाविशेषण मकर्म्मकाणामपि कर्म्मत्वम्। यथा—प्रतीपं वर्त्तते—प्रातीपिकः। आन्वीपिकः। प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः। प्रातिकूलिकः। आनुकूलिकः॥

द्वितीया समर्थ प्रति अनुपूर्वक ईप लोम और कूल शब्द से वर्त्तत अर्थमें ठक् प्रत्यय हो॥ २८॥

परिमुखं च॥ २९॥

यथा—परिमुखम् वर्त्तते—पारिमुखिकः। चात्। पारिपार्श्विकः॥

द्वितीया समर्थ परिमुख शब्द से वर्त्तत अर्थ में ठक् प्रत्यय हो॥ २९॥

प्रयच्छति गर्ह्यम्॥ ३०॥

यथा—द्विगुणार्थं द्विगुणम्। तत् प्रयच्छति—द्वैगुणिकः। त्रैगुणिकः॥ *

गर्ह्य समानाधिकरण द्वितीया समर्थ शब्द से प्रयच्छति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ३०॥

कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ॥ ३१॥

गर्ह्यार्थाभ्यामाभ्यामेतौ स्याताम् प्रयच्छत्यस्मिन्नर्थे। कुसीदं वृद्धिः।

* (वृद्धेर्वृधुषि भावो वाच्यः)॥ वार्धुषिकः।

तदर्थंद्रव्यम्-कुसीदम् । तत्प्रयच्छतीति-कुसीदिकः । कुसीदिकी । एकादशार्थत्वादेकादश । तेचते वस्तुतोदशचेति विग्रहेऽकारःसमासान्त इहैवसूत्रे निपात्यते । दशैकादशिकः । दशैकादशिकी ॥

यहां समानाधिकरण द्वितीया समर्थ कुसीद और दशैकादश शब्दसे प्रयच्छति अर्थ में यथाक्रम ष्ठन् और ष्ठच प्रत्यय हो ॥ ३१ ॥

उञ्छति ॥ ३२ ॥

यथा--बदराण्युञ्छति--बादरिकः । कणानुञ्छति--काणिकः ॥

द्वितीया समर्थ शब्दसे उञ्छति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ३२ ॥

रक्षति ॥ ३३ ॥

समाजंरक्षति- सामाजिकः । सामाजिकी ॥

द्वितीया समर्थ शब्दसे रक्षति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ३३ ॥

शब्ददर्दुरंकरोति ॥ ३४ ॥

शब्ददर्दुरशब्दाभ्यां द्वितीयासमर्थाभ्यां करोत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा--शब्दंकरोति--शाब्दिको वैयाकरणः । दार्दुरिकः कुम्भकारः ॥

द्वितीया समर्थ शब्द और दर्दुर शब्दसे करोति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ३४ ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥ ३५ ॥

स्वरूपस्य पर्यायाणम्, विशेषाणां च-ग्रहणम् । यथा-पक्षिणो हन्ति-पाक्षिकः । शाकुनिकः । मायूरिकः । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाफरिकः । मार्गिकः । हारिणिकः । सारङ्गिकः ॥

द्वितीया समर्थ पक्षिन् मत्स्य और मृग शब्दसे हन्ति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ३५

परिपन्थं च तिष्ठति ॥ ३६ ॥

अस्माद् द्वितीयान्तात्तिष्ठति हन्तिचेत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा—परिपन्थं तिष्ठति—पारिपन्थिकश्चौरः । परिपन्थं हन्ति—पारिपन्थिकः उत्कोचः ॥

द्वितीया समर्थ परिपन्थ शब्द से तिष्ठति और हन्ति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ३७

यथा—विद्यामाथं धावति—वैद्यामाथिकः । धर्म्ममाथिकः । पदवीं धावति—पादविकः । आनुपदिकः ॥

द्वितीया समर्थ माथ (मार्ग) उत्तरपद, पदवी और अनुपद प्रातिपदिक से धावति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ३७ ॥

आक्रन्दाट् ठञ् च ॥ ३८ ॥

अस्माच्छब्दा ठञ् स्यात्, चाट्ठक् धावतीत्यर्थे । यथा—आक्रन्दं दुःखिनां रोदनस्थानं धावति—आक्रन्दिकः । आक्रन्दिकी । स्वरेविशेषः ॥

द्वितीया समर्थ आक्रन्द (ऊंच स्वर मे रोदन) शब्द से धावति अर्थ में ठञ् और ठक् प्रत्ययहो ॥ ३८ ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ३९ ॥

यथा—पूर्वपदं गृह्णाति—पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः ॥

द्वितीया समर्थ पदोत्तर पद प्रातिपदिक से गृह्णाति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो ३९.

प्रतिकण्ठार्थललामंम च ॥ ४० ॥

एभ्योगृह्णात्यर्थे ठक् स्यात्। यथा-प्रतिकण्ठंगृह्णाति-प्रातिकण्ठिकः। आर्थिकः। लालामिकः॥

द्वितीया समर्थ प्रतिकण्ठ, अर्थ और ललाम शब्दसे गृ० अर्थ में ठक् प्रत्ययहो

धर्मं चरति॥४१॥

यथा-धर्मं चरति--धार्म्मिकः॥ (अधर्म्माच्चेति वक्तव्यम्)॥ अधर्म्मं चरति -आधर्म्मिकः॥

द्वितीया समर्थ धर्म शब्दसे चरति अर्थ में ठक् प्रत्ययहो॥ ४१॥

प्रतिपथमेति ठञ्च॥४२॥

चाट्ठक्। यथा-प्रतिपथमेति--प्रातिपथिकः। प्रातिपथिकः॥

द्वितीया समर्थ प्रतिपथ शब्दसे एति अर्थ में ठन् और ठक् प्रत्ययहो॥ ४२॥

समवायान् समवैति॥४३॥

समवायः समूह उच्यते। समवायवाचिभ्यःशब्देभ्यस्तदिति द्वितीया समर्थेभ्यः समवैतीत्यर्थे ठक् स्यात्। समवैति आगत्य तदेकदेशी भवतीत्यर्थः। यथा--समवायान् समवैति--सामवायिकः। सामाजिकः। सामूहिकः॥

द्वितीया समर्थ समवाय वाचीय शब्दों से समवैति अर्थों में ठक् प्रत्ययहो ४३

परिषदोण्यः॥४४॥

यथा--परिषदं समवैति--पारिषद्यः॥

द्वितीया समर्थ परिष (सभा) शब्दसे समवैति अर्थ में ण्य प्रत्ययहो ४४

सेनाया वा॥४५॥

ण्यः पक्षे ठक् स्यात् । यथा--सेनांसमवैति -सैन्यः । सैनिकः ॥
द्वितीया समर्थ सेनाशब्द से समवैति अर्थ में विकल्प से ण्य प्रत्यय हो ॥ ४५ ॥

सञ्ज्ञायांललाटकुक्कुट्यौपश्यति ॥ ४६ ॥

आभ्यां सञ्ज्ञागम्यमानायां पश्यत्यर्थे ठक् स्यात् । यथा--ललाटंपश्यति--लालाटिकः--सेवकः । कौक्कुटिकोभिक्षुः । कुक्कुटीशब्देनात्र कुक्कुटीपातो लक्ष्यते ॥
संज्ञा गम्यमान होतो द्वितीया समर्थ ललाट और कुक्कुटी शब्द से पश्यति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ४६ ॥

तस्य धर्म्यम् ॥ ४७ ॥

यथा--आपणस्यधर्म्यम्--आपणिकम् ॥
षष्ठी समर्थ से धर्म्य (न्याय, आचार युक्त) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ४७ ॥

अण् महिष्यादिभ्यः ॥ ४८ ॥

यथा--महिष्याधर्म्यम्--माहिषम् । होतुर्धर्म्यम्--हौत्रम् ॥
षष्ठी समर्थ महिषी (रानी) आदि शब्दोंसे धर्म्य अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ४८ ॥

ऋतोऽञ् ॥ ४९ ॥

यथा--यातुर्धर्म्यम्--यात्रम् * ॥
षष्ठी समर्थ ऋकारान्त शब्दसे धर्म्य अर्थ में अञ् प्रत्यय हो ॥ ४९ ॥

अवक्रयः ॥ ५० ॥

* (नराच्चेति वक्तव्यम्) ॥ नरस्य धर्म्या--नारी ॥ (विशसितुरिड्लोपश्चाऽञ्चवाच्यः) ॥ विशसितुः धर्म्यम्--वैशस्त्रम् ॥ (विभाजयितुर्णिलोपश्चाऽञ्चवाच्यः) ॥ विभाजयतुर्धर्म्यम्--वैभाजित्रम् ॥

षष्ठ्यन्ताट्ठक् स्यादवक्रयेऽर्थे यथा-आपणस्य अवक्रयः-आपाणिकः॥
षष्ठी समर्थ शब्द से अवक्रय (राजग्राह्यद्रव्य) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५० ॥

तदस्य पण्यम् ॥ ५१ ॥

यथा शष्कुल्यः पण्यमस्य-शाष्कुलिकः । मौदकिकः ॥
पण्य (विक्रय) समानाधिकरण प्रथमा समर्थ से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ५१

लवणाट्ठञ् ॥ ५२ ॥

यथा-लवणं पण्यमस्य--लावणिकः । लावणिकी ॥
पण्य समानाधि करण प्रथमा समर्थ लवण शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्ययहो ५२

किशरादिभ्यष्ठन् ॥ ५३ ॥

किशरादयो गन्ध विशेषवचनाः । यथा किशराः पण्यमस्य-किशरिकः । किशरिकी ॥
पण्य समानाधि करण प्रथमा समर्थ किशरादि शब्दो से षष्ठ्यर्थ में ष्ठन्प्रत्ययहो

शलालुनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५४ ॥

ष्ठन् पक्षेठक् स्यात् । यथा-शलालुकः।शलालुकी । शालालुकः । शालालुकी ॥
पण्यसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ शलालु (सुगन्धिद्रव्य) शब्द से षष्ठ्यर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय हो ॥ ५४ ॥

शिल्पम् ॥ ५५ ॥

यथा--मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य--मार्दङ्गिकः । पाणविकः ॥
शिल्पसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५५

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥

यथा--मड्डुकवादनं शिल्पमस्य--माड्डुकः । माड्डुकिकः । झार्झरः । झार्झरिकः ॥

शिल्प समानाधिकरण प्रथमा समर्थ मड्डुक (डमरू) और झर्झर (झांज) शब्द से षष्ठ्यर्थ में विकल्पसे अण् प्रत्यय हो ॥ ५६ ॥

प्रहरणम् ॥ ५७ ॥

तदस्येत्येव । यथा--असिःप्रहरणमस्य--आसिकः । धानुष्कः ॥

प्रहरण (ताडनकरना) समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ५७ ॥

परश्वधाट्ठञ्च ॥ ५८ ॥

यथा--परश्वधः प्रहरणमस्य--पारश्वधिकः ॥

प्रहरणसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ परश्वध (कुल्हाड़ा) शब्दसे ठञ् और ठक् प्रत्यय हो ॥ ५८ ॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ५९ ॥

यथा--शक्तिः प्रहरणस्य-शाक्तीकः । याष्टीकः ॥

प्रहरण समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शक्ति (बर्छी) और यष्टि (लाठी) शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ईकक् प्रत्ययहो ॥ ५९ ॥

अस्तिनास्तिदिष्टम् मतिः ॥ ६० ॥

यथा--अस्ति जगदीश्वरो जीवः परलोको वा--इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः । नास्तीति मतिर्यस्य सः--नास्तिकः ॥ प्रमाणानुपातिनी मतिर्यस्य स दैष्टिकः ॥

मति समानाधिकरण प्रथमा समर्थ अस्ति, नास्ति और दिष्ट शब्द से षष्ठयर्थ में ठक् प्रत्ययहो ॥ ६० ॥

शीलम् ॥ ६१ ॥

यथा मोदक भक्षणं शीलमस्य-- मौदाकिकः । शाष्कुलिकः ॥
शील समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठयर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६१ ॥

छत्रादिभ्योणः ॥ ६२ ॥

यथा–छत्रं गुरुस्तत्सेवन शीलमस्य--असौ छात्रः ॥
शील समानाधि करण प्रथमा समर्थ छत्र (गुरु) आदि शब्दों से षष्ठयर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ६२ ॥

कर्म्माऽध्ययने वृत्तम् ॥ ६३ ॥

तदितिप्रथमा समर्थादस्येति षष्ठयर्थे ठक् स्यात्, यत्तत्प्रथमा समर्थकर्म चेद्वृत्तमध्ययनविषयं स्यात् । यथा–एकमन्यदध्ययने कर्म्म वृत्तमस्य–ऐकान्यिकः । द्वैयन्यिकः । यस्याऽध्ययने प्रवृत्तस्यपरीक्षा काले विपरीतोच्चारणरूपं स्खलितमेकं जातमसावुच्यते ॥
वृत्ताऽध्ययन विषयक कर्म्म समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठयर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६३ ॥

बह्वच्पूर्वपदाट्ठच् ॥ ६४ ॥

प्राग् विषये । यथा–द्वादशान्यानि कर्म्माणि अध्ययने वृत्तान्यस्य–द्वादशान्यिकः । द्वादशाऽपपाठा अस्यजाता इत्यर्थः ॥
वृत्ताऽध्ययन विषयक कर्म समानाधिकरण प्रथमा समर्थ बह्वच् पूर्वपद प्रातिपदिकसे षष्ठयर्थमें ठच् प्रत्यय हो ॥ ६४ ॥

हितम् भक्षाः ॥ ६५ ॥

यथा-अपूपभक्षणंहितमस्मै-आपूपिकः ॥

हितभक्ष समानाधिकरण प्रथमा समर्थ शब्दसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६५ ॥

तदस्मै दीयते नियुक्तम् ॥ ६६ ॥

यथा--अग्रभोजनं नियुक्तमस्मै दीयते-आग्रभोजनिकः। केचित्तु नियुक्तं नित्यमाहुः ॥

दीयते नियुक्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ से चतुर्थ्यर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥

श्राणामांसौदनाट्टिठन् ॥ ६७ ॥

यथा-श्राणानियुक्तमस्मै दीयते-श्राणिकः। श्राणिकी। मांसौदनग्रहणं सङ्घातविग्रहीतार्थम्-मांसौदनिकः। मांसिकः।औदनिकः॥

दीयते नियुक्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ श्राणा (खिचड़ी) और मांसौदन शब्दसे चतुर्थ्यर्थ में टिठन् प्रत्यय हो ॥ ६७॥

भक्तादणन्यतरस्याम् ॥ ६८ ॥

पक्षे ठक् स्यात्। यथा-भक्तं नियुक्तमस्मै दीयते-भाक्तः।भाक्तिकः॥

दीयते नियुक्त समानाधिकरण प्रथमा समर्थ भक्त (भात) शब्द से चतुर्थ्यर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय हो ॥ ६८ ॥

तत्र नियुक्तः ॥ ६९ ॥

तत्रेति सप्तमी समर्थान्नियुक्त इत्यर्थे ठक् स्यात्। यथा-शुल्कशालायां नियुक्तः-शौल्कशालिकः। दौवारिकः॥

सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से नियुक्त (अधिकृत) अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ६९ ॥

अगारान्ताट्ठन् ॥ ७० ॥

यथा–धनागारे नियुक्तः–धनागारिकः । अश्वागारिकः ॥

सप्तमी समर्थ अगारान्त (गृहान्त) प्रातिपदिक से नियुक्त अर्थ में ठन् प्रत्यय हो॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ७१ ॥

निषिद्ध देशकालवाचकाट्ठक् स्यादध्येतरि । यथा--चतुष्पथेऽधीते–चातुष्पथिकः । सन्धिवेलायामधीते--सान्धिवेलिकः ॥

सप्तमी समर्थ अदेश और अकालवाचीय प्रातिपदिक से अध्यायी (पढ़नेवाला) वाच्य हो तो ठक् प्रत्यय हो ॥ ७१ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति क्रि०

यथा--कुलकठिने व्यवहरति–कौलकठिनिकः।प्रस्तारे व्यवहरति–प्रास्तारिकः । सांस्थानिकः ॥

सप्तमी समर्थ कठिनान्त, प्रस्तार (फैलाव) और संस्थान शब्द से व्यवहरति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ७२ ॥

निकटे वसति क्रि० ॥७३॥

यथा–निकटे वसति–नैकटिकः ॥

सप्तमीसमर्थ निकट शब्द से वसति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ७३ ॥

आवसथात् ष्ठल् ॥ ७४ ॥

यथा–आवसथे वसति--आवसथिकः । आवसथिकी ॥

सप्तमी समर्थ आवसथ (घर) शब्दसे वसति अर्थ में ष्ठल् प्रत्यय हो ॥ ७४ ॥

प्राग्घिताद् यत् ॥ ७५ ॥

तस्मैहितम् (५।[illegible]शवमाणव[illegible] ... [illegible]यत ॥
तस्मैहितम्, इस सूत्रतक य[illegible] ... [illegible] ६ ॥ ७५ ॥

तद्वहतिरथयुगप्रासङ्गम् ॥ ७६ ॥

तदिति द्वितीया समर्थेभ्योरथयुगप्रासङ्गेभ्यो वहतीत्यर्थे यत् स्यात् । यथा--रथं वहति--रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः ॥

द्वितीया समर्थ रथ, युग (जुआ) और प्रासङ्ग (काष्ठ विशेष जिस के द्वारा आरम्भ में बैलादि सिखाये जाते हैं) शब्दसे वहति अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥

धुरो यड्ढकौ ॥ ७७ ॥

यथा--धुरं वहति--धुर्यः । धौरेयः ॥

द्वितीया समर्थ धुर् (रथादि के आगे का भाग) शब्दसे वहति अर्थ में यत् और ढक् प्रत्यय हो ॥ ७७ ॥

खः सर्वधुरात् ॥ ७८ ॥

यथा--सर्वधुरंवहतीति--सर्वधुरीणः ॥

द्वितीया समर्थ सर्वधुर शब्दसे उक्तार्थ में ख प्रत्यय हो ॥ ७८ ॥

एकधुराल्लुक्च ॥ ७९ ॥

यथा--एकधुरं वहतीति--एकधुरीणः । एकधुरः ॥

द्वितीया समर्थ एकधुर शब्द से वहति अर्थ में विधीयमान ख प्रत्यय का लुक् भी हो ॥ ७८ ॥

शकटादण् ॥ ८० ॥

यथा--शकटंवहतः--शाकटौ गावौ ॥

द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से नियुक्त (अधिकृत) अर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ८० ॥

हलसीराट्ठक् ॥ ८१ ॥

यथा-हलंवहति-हालिकः । सैरिकः ॥

द्वितीया समर्थ हल और सीर (हल) शब्दसे वहति अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ ८१ ॥

संज्ञायांजन्याः ॥ ८२ ॥

यथा-जनी-वधूः । तांवहन्ति ये ते जन्याः ॥

यदि संज्ञावाच्य होतो द्वितीया समर्थ जनी शब्दसे यत् प्रत्यय निपातित है ॥ ८२ ॥

विध्यत्यधनुषा ॥ ८३ ॥

द्वितीयान्ताद्विध्यतीत्यर्थेयत् स्यात् नचेत्तत्रधनुष्करणम् । यथा-पादौ विध्यति-पद्यादूर्वा । कण्ठंविध्यति-कण्ठ्योरसः ॥

यदि धनुष् करण नहो तो द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से विध्यति अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८३ ॥

धनगणंलब्धा ॥ ८४ ॥

धनगणशब्दाभ्यां द्वितीया समर्थाभ्यां लब्धे इत्यर्थे यत् स्यात् । तृन्नन्तमेतत् । यथा-धनंलब्धा-धन्यः । गणंलब्धा-गण्यः ॥

द्वितीया समर्थ धन और गण शब्दसे लब्धार्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८४ ॥

अन्नाण्णः ॥ ८५ ॥

लब्धे इत्यर्थे । यथा-अन्नंलब्धा-आन्नः ॥

द्वितीया समर्थ अन्नशब्द से लब्धार्थ में ण प्रत्यय हो ॥ ८५ ॥

वशंगतः ॥ ८६ ॥

वशशब्दाद् द्विती[illegible] ॥ [illegible]—वशं-गतः--वश्यः--परेच्छानु[illegible]

द्वितीया समर्थ वश शब्दसे गत अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८६ ॥

पदमस्मिन् दृश्यम् ॥ ८७ ॥

यथा- पदंदृश्यमस्मिन्--पद्यः--कर्दमः । नास्तिशुष्क इत्यर्थः ॥

दृश्यसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ पद शब्दसे सप्तम्यर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८७ ॥

मूलमस्याऽऽबर्हि ॥ ८८ ॥

आबर्हणमाबर्हः--उत्पाठनम् । तदस्यातीति आबर्हि । मूलमाबर्हियेषां ते मूल्यामाषाः ॥

आबर्हिसमानाधिकरण प्रथमा समर्थ मूल शब्दसे षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ८८ ॥

सञ्ज्ञायांधेनुष्या ॥ ८९ ॥

धेनुशब्दस्य षुगागमो यप्रत्ययश्चस्वार्थे निपात्यते सञ्ज्ञायाम् । या धेनुरुत्तमर्णाय ऋणप्रदानाद्दोहनार्थं दीयते सा धेनुष्योच्यते । धेनुष्याबन्धकेस्थिता ॥

संज्ञा विषय में षुगागम युक्त य प्रत्ययान्त धेनुष्या निपातित है ॥ ८९ ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ ९० ॥

यथा—गृहपतिना संयुक्तः--गार्हपत्यः-- अग्निः ॥

तृतीया समर्थ गृहपति शब्द से संयुक्त अर्थ में ञ्यप्रत्ययहो ॥ ९० ॥

नौवयो धर्मविषमूलसीतातुलाभ्यः

ताय[र्यतु] र्थ प्रातिपदिक से नियुक्त (अधिकृत) अर्थ समसमित

सम्मितेषु ॥ ९१ ॥

नावादिभ्योऽष्टभ्योऽष्टस्वेव तार्यादिष्वर्थेषु यत् स्यात् । यथा—नावा तार्यम् नाव्यमुदकम् । वयसा तुल्यः-वयस्यः सखा । धर्म्मेण प्राप्यः-धर्म्मोऽपवर्गः । विषेण वध्यः-विष्यः पापी । मूलेन आनाम्यम्-मूल्यम् । मूलेन समः-मूल्यः पटः । सीतया समितम्- सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया सम्मितम्-तुल्यम् धान्यम् ॥

तृतीया समर्थ नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, (नवरा) मूल (सम) सीता (पटेला) और तुला (तराजू) इन शब्दों से तार्य्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, आनाम्य, सम, समित और सम्मित अर्थों में यत् प्रत्यय हो ॥ ९१ ॥

धर्म्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ९२ ॥

यथा धर्म्मादनपेतम्-धर्म्यं कार्य्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् ॥

पञ्चमी समर्थ धर्म्म पथिन् अर्थ और न्याय शब्द से अनपेत (युक्त) अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९२ ॥

छन्दसो निर्म्मिते ॥ ९३ ॥

यथा—छन्दसा निर्मितम्-छन्दस्यम् । इच्छया कृतमित्यर्थः ॥

तृतीया समर्थ छन्दस् शब्द से निर्मित अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९३ ॥

उरसोऽण् च ॥ ९४ ॥

चाद्यत् । यथा- उरसा निर्मितः पुत्रः-औरसः । उरस्यः ॥

तृतीया समर्थ उरस् (छाती) शब्द से निर्मित अर्थ में अण् और यत् प्रत्यय हो ॥ ९४ ॥

आश्वमा[illegible] ॥

हृद[illegible]

[illegible]

हृदयशब्दात्षष्ठीसमर्थात्प्रिय इत्यर्थे यत् स्यात् । यथा--हृद्यं व-नम् । हृदयस्य हृल्लेखेति (६ । ३ । ५०) हृदादेशः ॥

षष्ठी समर्थ हृदय शब्दसे प्रिय अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

बन्धने चर्षौ ॥ ९६ ॥

हृदयशब्दात् षष्ठ्यन्ताद् बन्धने यत् स्याद् वेदेऽभिधेये । यथा--हृदयस्य बन्धनम्--हृद्यो मन्त्रः ॥

षष्ठी समर्थ हृदयशब्द से ऋषि (वेद) वाच्यहोतो बन्धन अर्थ में यत् प्रत्यय हो ९६

मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु ॥ ९७ ॥

मतादिभ्यस्त्रिशब्देभ्यस्त्रिष्वेव करणादिष्वर्थेषु यथासङ्ख्यं यत् स्यात् । यथा--मतम्--ज्ञानम् । तस्य करणं भावः, साधनं वा मत्यम् । जनस्य जल्पः-- जन्यः । हलस्य कर्षः-हल्यः ॥

षष्ठी समर्थ मत जन और हल शब्द से यथाक्रम करण जल्प और कर्ष अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९७ ॥

तत्र साधुः ॥ ९८ ॥

तत्रेति सप्तमी समर्थात् साधुरित्यर्थे यत् स्यात् । यथा--अग्रेसाधुः-- अग्र्यः । सामसुसाधुः-- सामन्यः । योग्य इत्यर्थः ॥

सप्तमी समर्थ शब्द से साधु (योग्य) अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ९८ ॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ ९९ ॥

यथा--जनं जनं प्रति-प्रतिजनम् । तत्र साधुः प्रातिजनीनः । जने जने साधुरित्यर्थः ॥

...समर्थ प्रातिपदिक से नियुक्त (अधिकृत) अर्थ में ... प्रत्यय हो ॥ ९९ ॥

भक्ताण्णः ॥ १०० ॥

यथा--भक्तेसाधवः भाक्ताः शालयः ॥

सप्तमी समर्थ भक्त (भात) शब्द से साधु अर्थ में ण प्रत्यय हो ॥ १०० ॥

परिषदोण्यः ॥ १०१ ॥

यथा--परिषदि साधुः-पारिषद्यः । परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि । पारिषदः ॥

सप्तमी समर्थ परिषद शब्द से साधु अर्थ में ण्य प्रत्यय हो ॥ १०१ ॥

कथादिभ्यष्ठक् ॥ १०२ ॥

यथा--कथायां साधुः-काथिकः ॥

सप्तमी समर्थ कथादि प्रातिपादिकों से साधु अर्थ में ठक् प्रत्यय हो ॥ १०२ ॥

गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ १०३ ॥

यथा--गुडे साधुः- गौडिकः- इक्षुः ॥

सप्तमी समर्थ गुडादि प्रादिपादिकों से साधु अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ॥ १०३ ॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ॥ १०४ ॥

यथा--पथि साधु-पाथेयम् । आतिथेयम् । वसनम्-वसातिः । तत्र साधुः-वासतेयी रात्रिः । स्वापतेयं धनम् ॥

सप्तमी समर्थ पथिन्, अतिथि, वसति और स्वपति शब्द से साधु अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो ॥ १०४ ॥

१ निष्फली कृता इत्यर्थः ॥

आश्वमाणि [illegible] ॥

सभे [illegible]

[illegible] मो [illegible]

यथा—सभायां साधुः— सभ्यः ॥

सप्तमी समर्थ सभा शब्द से साधु अर्थ में य प्रत्ययहो ॥१०९॥

ढ श्छन्दसि ॥ १०६ ॥

यथा--सभेयो ऽस्य युवा यजमानस्य वीरोजायताम् ॥

सप्तमी समर्थ सभा शब्द से छन्दो विषयमें साधु अर्थ होतो ढ प्रत्यय हो॥ १०६

समानतीर्थे वासी ॥१०७॥

साधुरिति निवृत्तम् । यथा--वसतीति--वासी । समानेतीर्थे गुरौ वसतीति--सतीर्थ्यः -सहपाठीत्यर्थः । (६ । ३ । ८७) इति समानस्य स आदेशः ॥

सप्तमी समर्थ समानतीर्थ शब्द से वासी अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १०७ ॥

समानोदरे शयित ओ च उदात्तः॥१०८॥

यथा--समाने उदरेशयितः स्थितः—समानोदर्य्यः—भ्रातोच्यते ॥

सप्तमी समर्थ समानोदर शब्द से शयित अर्थ में यत् प्रत्यय हो। और ओकार उदात्त हो ॥ १०८॥

सोदराद्यः॥१०९॥

यथा-सोदर्यः । (६ । ३ । ८८) इतिसमानस्य स आदेशः॥

सप्तमी समर्थ सोदर शब्दसे शयित अर्थ में यत् प्रत्यय हो॥ १०९॥

भवे छन्दसि॥११०॥

समर्थ प्रातिपदिक से नियुक्त (अधिकृत) अर्थ ...

सप्तम्य... यथा-मेध्याय च विद्युत्यायच नमः ॥

छन्दो विषय में सप्तमी समर्थ शब्द से भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो (इहां से लेकर छन्दोऽधिकार पादकी समाप्ति तक है ॥ ११० ॥

पाथोनदीभ्यां ड्यण् ॥१११॥

यथा -पाथसि भवः-पाथ्यः । नद्यांभवः-नाद्यः ॥

सप्तमी समर्थ पाथस् और नदी शब्द से भव अर्थमें ड्यण् प्रत्ययहो ॥ १११ ॥

वेशन्तहिमवद्भ्यामण् ॥ ११२ ॥

भवे । यथा--वैशन्तीभ्यः स्वाहा । हैमवतीभ्यः स्वाहा ।

सप्तमी समर्थ वेशन्त (अग्नि) और हिमवत् (हिमालय) शब्द से भव अर्थ में अण् प्रत्यय हो ॥ ११२ ॥

स्रोतसो विभाषा ड्यड्ड्यौ ॥ ११३॥

पक्षेयत् । ड्यड्ड्योस्तु स्वरे भेदः । यथा--स्रोतसिभवः-स्रोत्यः । स्रोतस्यः ॥

सप्तमी समर्थ स्रोतस् (स्वयंपानी का वेग से चलना) शब्द से भव अर्थ में विकल्प से ड्यत् और ड्य प्रत्यय हो । ११३ ॥

सगर्भसयूथसनुताद् यन् ॥ ११४ ॥

यथा--अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः ।योनः सनुत्यः ॥

सप्तमी समर्थ सगर्भ, सयूथ और सनुत शब्द से भव अर्थ में यन् प्रत्यय हो ११४

तुग्राद् घन् ॥ ११५ ॥

भवेऽर्थे । आश्वमानण् ॥ ...॥

षु तुग्रशब्दः ॥

सप्तमी समर्थ तुग्र शब्द से भव अर्थ में घन् प्रत्यय हो ॥ ११५ ॥

अग्राद्यत् ॥ ११६ ॥

यथा–अग्रेभवम्–अग्र्यम् ॥

सप्तमी समर्थ अग्रशब्दसे भव अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

घच्छौच ॥ ११७ ॥

चाद्यत् । यथा–अग्रेभवः–अग्र्यः । अग्रियः । अग्रीयः ॥

सप्तमी समर्थ अग्रशब्दसे भव अर्थ में घ छ और यत् प्रत्यय हो ॥ ११७ ॥

समुद्राभ्राद्घः ॥ ११८ ॥

यथा–समुद्रियाणां नदीनाम् । अभ्रियस्येवघोषाः ॥

सप्तमी समर्थ समुद्र और अभ्रशब्दसे भव अर्थ में घ प्रत्यय हो ॥ ११८ ॥

बर्हिषिदत्तम् ॥ ११९ ॥

दत्तमित्यर्थे यत् स्यात् । यथा–बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ॥

सप्तमी समर्थ बर्हिष् शब्दसे दत्त अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ ११९ ॥

दूतस्यभागकर्मणी ॥ १२० ॥

दूतशब्दाद्भागेकर्म्मणिचाभिधेयेयत् स्यात् । भागोंऽशः । दूत्यम् ॥

षष्ठी समर्थ दूत शब्दसे भाग और कर्म्म वाच्य होनेपर यत् प्रत्यय हो ॥ १२० ॥

रक्षोयातूनांहननी ॥ १२१ ॥

...नियुक्त (अधिकृत) अर्थ ... यथा-मेध्या... । यातव्या ॥
षष्ठी समर्थ रक्ष... और ... प्रत्यय हो ॥ १२१ ॥

रेवतीजगतीहविष्याभ्यः प्रशस्ये ॥ १२२ ॥

एभ्यः प्रशंसने यत् स्यात् । यथा- रेवत्यादीनां प्रशंसनं रेवत्यम् । जगत्यम् । हविष्यम् ॥

प्रशंस्य वाच्य होतो षष्ठी समर्थ रेवती जगती और हविष्या शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ १२२ ॥

असुरस्यस्वम् ॥ १२३ ॥

असुरशब्दात् स्वमित्यर्थे यत् स्यात् । यथा--असुर्यम् ॥

षष्ठी समर्थ असुर शब्दसे स्व अर्थ में यत् प्रत्यय हो ॥ १२३ ॥

मायायामण् ॥ १२४ ॥

असुरशब्दान्मायायां स्वविशेषेऽण् स्यात् । यथा--आसुरीमाया ।

षष्ठी समर्थ असुर शब्दसे स्व विशेषमाया अर्थमें अण् प्रत्यय हो ॥ १२४ ॥

तद्वानासामुपधानोमन्त्रइतीष्टकासुलुक् चमतोः ॥ १२५ ॥

मतुवन्तात् प्रातिपतिकात् प्रथमासमर्था दासामिति षष्ठ्यर्थे यत् स्यात्, यत् प्रथमा समर्थमुपधानो मन्त्रश्चेत् स्यात् । यथा-वर्चः शब्दो यास्मिन् मन्त्रेऽस्ति स वर्चस्वान् मन्त्रः । उपधीयते येनस उपधानः। वर्चस्वानुपधानोमन्त्र आसामिष्टकानां वर्चस्याः। ऋतव्याः॥

आश्विमानण् ॥ [illegible] ॥

अश्विशब्दो यस्मिन् मन्त्रेऽस्ति सोऽश्विमान् । तस्मादण् स्यात् । आश्विमानुपधानो मन्त्र आसामिष्टकानामिति विगृह्याण् विधीयते । यथा--आश्विनीरुपदधाति ॥

पूर्व सूत्र विषयमें आश्विमान् शब्दसे अण् प्रत्यय हो ॥ १२६ ॥

वयस्यासुमूर्ध्नोमतुप् ॥ १२७ ॥

वयस्वानुपधानो मन्त्रो यासां तावयस्यास्तास्वभिधेयासु मूर्ध्नो मतुप् स्यात् । यथा—यस्मिन् मन्त्रे वयः शब्दः, मूर्ध्नन् शब्दश्च विद्यते ऽसौ वयस्वान् मन्त्रः । मूर्ध्नन्वान् मन्त्रः । मूर्द्धन्वती रुपदधाति ॥

वयस्या (समानवयस्क) वाच्य होतो मूर्द्धन् शब्द सेमतुप्प्रत्यय हो ॥ १२७ ॥

मत्वर्थेमासतन्वोः ॥ १२८ ॥

नभोऽभ्रम् । तदस्मिन्नस्तीति नभस्योमासः । ओजस्या तनूः ॥

प्रथमा समर्थ शब्द से मास और तनु प्रत्ययार्थ विशेषण होतो मत्वर्थ में यत् प्रत्ययहो ॥ १२८ ॥

मधोर्ञ च ॥ १२९ ॥

यथा--मत्वर्थे चाद्यत् । माधवः । मधव्यः ॥

प्रथमा समर्थ मधुशब्द से मत्वर्थ ञ और यत् प्रत्यय हो ॥ १२९ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

...यासमर्थादिति गतोऽर्थे यत् स्यात् । ग...

...गी ॥